कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों का परिशीलन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

पर्यवेक्षक :
डॉ० हरिदत्त शर्मा
उपाचार्य, संस्कृत-पालि-प्राकृत
एवं प्राच्यभाषा-विभाग

अनुसन्धाता :
तरुण कुमार शर्मा
एम०ए०(संस्कृत), नैट (यू०जी०सी०)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

2003

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि *तरुण कुमार शर्मा* शोध-छात्र, संस्कृत-विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने *''कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों का परिशीलन''* विषय पर मेरे निर्देशन में शोध कार्य किया है। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद द्वारा निर्धारित सभी नियमों एवं शर्तों का पालन किया है।

यह शोध-प्रबन्ध इनके मौलिक चिन्तन एवं अध्ययन का परिणाम है। मैं इसे डी0 फिल्0उपाधि हेतु अग्रसारित करता हूँ।

दिनाङ्क 10-06-2003

पर्यवेक्षक

हरिदत्त शर्मा
उपाचार्य, संस्कृत-पालि-प्राकृत
एवं प्राच्यभाषा-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

मङ्गलाचरणम्

देवो जयति हेरम्बः स्वदन्तबिसखेलनैः।
यस्योच्चैस्तत्प्रभा शुभ्रा हसन्तीव दिशो दश।।
-देशोपदेश 1/1

श्रीलाभसुभगः सत्यासक्तः स्वर्गापवर्गदः।
जयतात् त्रिजगत्पूज्यः सदाचार इवाच्युतः।।
-चारुचर्या, पद्य 1

प्रशान्तशेषविघ्नाय दर्पसर्पापसर्पणात् ।
सत्यामृतनिधानाय स्वप्रकाशविकासिने।।
- दर्पदलन 1/1

संसारव्यतिरेकाय हृतोत्सेकाय चेतसः।
प्रशमामृतसेकाय विवेकाय नमो नमः।।
- दर्पदलन 1/2

सत्यस्कन्धस्तरुणापूतपीयूषसिक्तः।
क्षान्तिच्छायः शुभमतिलतालङ्कृतः शीलमूलः।
भूयात् सत्त्वप्रसवविलसत्पल्लवः पुण्यभाजां
धर्मः प्रोद्यत्कुशलकुसुमः श्रीफलो मङ्गलाय।।
- चतुर्वर्गसंग्रह 1/1

समर्पणम्

सावित्रीं मातरं पूज्यां,
स्वर्गस्थं पितरं शिवम्।
गुरुवर्यं हरिं नत्वा,
चाग्रजं राजनामकम् ।।

समर्पये प्रबन्धं स्वं,
क्षेमेन्द्रालोचनैर्युतम् ।
सर्वेषामाशिषः सन्तु,
मम मार्गप्रदर्शिकाः।।

तरुणकुमारशर्मा

'ॐ'

स्वानुभूति

बाल्यकाल से ही पूर्वजन्म के संस्कारवश देववाणी **संस्कृत-भाषा** के प्रति मेरे मन में एक विचित्र आकर्षण था। पाठ्य विषयों में संस्कृत के चयन का कारण संस्कार ही था, इसके साथ ही गुरुजनों के सान्निध्य और प्रेरणा ने भी संस्कृत-भाषा के प्रति प्रेम को दृढ़ता प्रदान की। क्रमशः प्रेम घनीभूत होता रहा। बारहवीं कक्षा से तो संस्कृत-साहित्य के प्रति जिज्ञासा और भी प्रबल हो गयी थी, जिसका श्रेय **गुरुवर्य चित्रपाल शर्मा** (प्रवक्ता संस्कृत, श्री राधा कृष्ण इण्टर कालिज हसनपुर, मथुरा) को जाता है जिनका संस्कृत-सम्बन्धी ज्ञान मुझे सर्वदा संस्कृत पढ़ने की प्रेरणा देता रहा। इसके पश्चात् गुरुवर्य **डॉ0 द्वारिका नाथ त्रिपाठी** (रीडर, संस्कृत विभाग, धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़) महोदय से निरन्तर संस्कृत अध्ययन की प्रेरणा प्राप्त होती रही। इसके उपरान्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम0ए0 करने के बाद इस विश्वविद्यालय के परमादरणीय, सत्यनिष्ठ **डॉ0 रुद्रकान्त मिश्र** (रीडर, संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के कुशल निर्देशन में **''कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों का परिशीलन''** शीर्षक पर मुझे अनुसन्धान कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्रारम्भ में कई प्रयासों के बाद प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्धित पुस्तकें ही नहीं मिलीं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय गया, वहाँ भी पुस्तकों का अभाव मिला, जिसके कारण निराशा हुई। किन्तु कुछ समयान्तराल बाद एक दिन भगवत् कृपा से संयोगवश पुस्तकों के ही विषय में **गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद** में गया जहाँ **'क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रह'** मिला जो बहुत ही उपादेय सिद्ध हुआ। इससे मन में

किञ्चित् प्रसन्नता का प्रादुर्भाव हुआ। तत्पश्चात् **हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय, प्रयाग** में जाकर प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त की तथा वाराणसी स्थित तीन विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में शोध-विषयक पुस्तकें प्राप्त कर मैं शोध कार्य में तत्पर हुआ। वैसे इनसे सम्बन्धित अन्य सहायक ग्रन्थों को न पाकर मैं मूल ग्रन्थों पर ही आश्रित रहा।

इसी बीच एक वर्ष के उपरान्त गुरुवर्य डॉ0 मिश्र जी के आकस्मिक निधन हो जाने के कारण संयोगवश **अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त**, प्रातः स्मरणीय, विद्वद्वरेण्य, सत्यनिष्ठ, सूक्ष्म अन्वेषक, परम समादरणीय, पूज्यपाद, पिता-तुल्य गुरुवर्य **डॉ0 हरिदत्त शर्मा** (रीडर, संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) महोदय के निर्देशन में शोध कार्य करने का सौभाग्य मिला और उन्होंने उक्त शीर्षक पर ही कार्य कराने का निश्चय किया। वे अपनी विद्वत्ता के लिए तथा सरस भाषा, यथार्थ चित्रण एवं दार्शनिक चिन्तनयुक्त कवित्व के लिए देश एवं विदेशों में जाने जाते हैं। विभिन्न कार्यों में व्यस्त होने पर भी उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर तथा यथासमय अपनी नींद का परित्याग कर मुझे निर्देशन प्रदान किया। उनके प्रति आभार क्या? इनसे तो जीवन पर्यन्त उऋण होने का प्रश्न ही नहीं उठता। उन्हीं के कुशल निर्देशन में आज "**कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों का परिशीलन**" नामक शीर्षक प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का रूप धारण कर सका है। इसी सन्दर्भ में पूज्यपाद माताजी **श्रीमती मधुलिका शर्मा** के चरणों के प्रति भी मैं विनम्र भाव से नतमस्तक हूँ जिन्होंने समय-समय पर अपनी वात्सल्यमयी एवं सुस्नेहमयी वाणी द्वारा अनुसन्धान कार्य के प्रति मनोबल और उत्साह को सम्बल प्रदान किया।

परम सम्माननीय गुरुवर्य **प्रो0 सुरेश चन्द्र पाण्डेय** (भूतपूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), जिनकी मृदु एवं मित भाषायुक्त वाणी द्वारा प्रतिपाद्य विषय के प्रति रुचि एवं जिज्ञासा का प्रादुर्भाव

हुआ, के प्रति विनम्र भाव से अनुगृहीत हूँ। इसी सन्दर्भ में परम श्रद्धेय गुरुवर्य **प्रो0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल** (भूतपूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) का भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर कविवर क्षेमेन्द्र-सम्बन्धी शोध-सामग्री की सत्प्रेरणाऐं देकर मुझे उपकृत किया है। तत्पश्चात् मैं उन सभी पूज्य गुरुजनों, जिनसे किञ्चिदपि ज्ञान प्राप्त हुआ है, को साञ्जलि नमन करता हूँ। साथ ही मैं उन विद्वान् लेखकों का आभारी हूँ जिनके ग्रन्थों से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में सहायता मिली है। अन्य पूज्यजनों, मित्रों एवं सहयोगियों, जिनसे यथा समय किसी न किसी रूप में सहयोग मिला है, का मैं हृदय से आभारी हूँ। पूजनीय, एवं प्रातः स्मरणीय माताजी **श्रीमती सावित्री देवी** को भी मैं साञ्जलि नमन करता हूँ, जिनकी सत्प्रेरणाओं एवं आशीर्वाद से यह शोध कार्य पूर्ण हुआ। परिवार के सभी अन्य सदस्य जिनसे सदैव शोध-प्रबन्ध को शीघ्र पूरा करने के लिए आर्थिक सहायता एवं सत्प्रेरणायें मिलती रही हैं, वे सभी कृतज्ञता भाव के पात्र हैं।

विभिन्न **पुस्तकालयों**, विशेषकर **'गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, आजाद पार्क, इलाहाबाद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय,** इलाहाबाद, **सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय पुस्तकालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी** एवं **इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, इलाहाबाद** तथा उनमें कार्यरत कर्मचारीगणों का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर पुस्तकें प्राप्त कराने एवं शोध कार्य को प्रगति के पथ पर अग्रसारित कराने में सहायता प्रदान की। शोध-प्रबन्ध के टङ्कण कार्य के लिए मैं टङ्कक **श्री विनोद कुमार द्विवेदी** को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने शुद्ध एवं स्पष्ट टङ्कण कार्य किया।

''कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों का परिशीलन'' विषय पर गवेषणात्मक यह अभिनव प्रयास विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत है। इसमें कहाँ तक

सफलता मिली है, इसका निश्चय विज्ञ समीक्षक ही करेंगे क्योंकि साफल्य का निकष वस्तुतः उन्हीं का परितोष है। मैं कवि-शिरोमणि कालिदास के शब्दों में यही कहना चाहूँगा -

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥

बुधपूर्णिमा
16 मई, 2003
'रामाशीष'
178, एलनगंज
प्रयाग

विद्वदनुग्रहाभिलाषी
तरुण कुमार शर्मा
तरुण कुमार शर्मा

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

व्यक्तित्व-परिचय

प्रस्तावना : संस्कृत की पृष्ठभूमि में क्षेमेन्द्र

भारतीयों के लिए 'संस्कृत' एक ऐसा महत्त्वपूर्ण शब्द है, जिसके बिना इस देश के सांस्कृतिक एवं भाषायी इतिहास की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। इसी के उपादानों से इस देश की संस्कृति एवं भाषाओं का विकास हुआ है। इतना ही नहीं, इस महाद्वीप की विभिन्न भाषाओं एवं संस्कृतियों के उपादानों का समीकरण करते रहने के कारण यह उन सभी भाषाओं और संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करती है, जो कि इसके इस प्रदेश में पहुँचने से पूर्व यहाँ विद्यमान थीं तथा जो बाद में समय-समय पर यहाँ आकर स्थिर होती रहीं। संस्कृत में अपने अतीत से ही विभिन्न विजातीय तत्त्वों के आत्मसात् करने की अद्भुत शक्ति थी, जिसके फलस्वरूप वह अपने भारत देश के बाद भी इस द्वीप की अन्य किरात, द्रविड़, निषाद आदि पुरातन जातियों की भाषाओं और संस्कृतियों में उपलब्ध तत्त्वों का निरंतर समीकरण करती रही है।

भाषायी इतिहास की दृष्टि से संस्कृत का इतिहास बहुत प्राचीन तथा इसकी ऐतिहासिक परम्परा विश्व की सभी भाषाओं से अधिक दीर्घकालीन है। अपने वैदिक काल के स्वरूप को प्राप्त करने से पूर्व यह भाषा अपने इतिहास का एक लम्बा रास्ता तय कर चुकी थी। इसका यह वैदिककालीन रूप सैकड़ों वर्षों से निरन्तर किन्तु शनैः-शनैः होने वाले विविध प्रकार के सम्मिश्रण एवं परिवर्तनों का परिणाम था। अनुसंधान के पश्चगामी क्रम से खोज करने पर पता चलता है कि संस्कृत की विकास परम्परा का यह इतिहास सैकड़ों नहीं अपितु हजारों वर्ष पुराना है। स्वयं भारतवर्ष में हमें इसका लगभग 3500 वर्ष पुराना इतिहास अपने अविच्छिन्न रूप में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त ईरानी मूल के रूप में इसके पूर्व में लगभग 1000 वर्ष का इतिहास भी हमें इस रूप में उपलब्ध हो जाता है कि उसके प्रकाश में हम इसके वैदिक पूर्वकालीन रूप की

झाँकी स्पष्टतः प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे समक्ष इसका 4500 वर्षों का इतिहास लगभग अपने क्रमबद्ध विकास के रूप में आ जाता है, परन्तु भाषाशास्त्रीय दृष्टि से संस्कृत का वास्तविक इतिहास इससे भी बहुत पुराना हैं भाषातत्त्वविदों की सूक्ष्मेक्षिका ने इसके मूल रूप तक को देखा है, जो अपने आज से हजारों वर्ष पूर्व इस उपमहाद्वीप से हजारों मील की दूरी पर प्रचलित रहा होगा।

सामान्यतः संस्कृत से अभिप्राय इस पूर्व विकसित भाषायी रूप से हैं जो संस्कृत-साहित्य के सर्जन के लिए पाणिनि तथा उसके बाद के युग में इस देश में प्रयुक्त होता रहा है किन्तु इसके भाषायी इतिहास को समझने तथा इसके विकास क्रम को देखने के लिए इसका प्रयोग उस विस्तृत अर्थ में किया जाता है, जिसके अन्तर्गत इसके पूर्ववर्ती रूपों, विशेषकर वैदिक संस्कृत का भी समावेश हो जाता है।

संस्कृत-भाषा के मूल रूप की उत्पत्ति एशिया या यूरोप चाहे जहाँ भी हुई हो, किन्तु 'संस्कृत' शब्द से जिस भाषा का बोध होता है, उसका विकास भारत की इसी भूमि में हुआ है। प्राचीन वैदिक-साहित्य में भाषा की दृष्टि से मध्य देशीय भाषा को बड़ा महत्त्व दिया गया है। शतपथब्राह्मण (3.2.3.15.) में कुरु, पाञ्चाल, प्रदेश की भाषा को आदर्श भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार कौषीतकि ब्राह्मण (7.6) में भी एक स्थान पर कहा गया है कि जो भाषा सीखना चाहता है उसे उत्तर की ओर जाना चाहिए या फिर जो उस दिशा से आता है उससे भाषा सीखनी चाहिए। भाषा विषयक इन प्राचीन उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृत-भाषा के विकास का प्रारम्भिक भारतीय केन्द्र मध्य प्रदेश तथा आर्यावर्त प्रदेश था। केन्द्र प्रदेश की भाषा होने के कारण इसने मानक भाषा का रूप ग्रहण कर लिया तथा साहित्य एवं विज्ञान की माध्यम बनकर महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। अतः प्राचीन

भारत में धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त गणित, राजनीति, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, दर्शनशास्त्र, शिल्प, रसायन आदि सभी विषयों का प्रणयन भी इसी भाषा के माध्यम से हुआ। संस्कृत ही उस काल की विशिष्ट भाषा थी।

यद्यपि आधुनिक भाषावैज्ञानिकों के अनुसन्धानों के आधार पर संस्कृत का उद्‌गम भारोपीय मूल स्रोत से सिद्ध किया जा चुका है किन्तु इससे पूर्व भारतीय परम्परा में इसका उद्‌गम वैदिक भाषा से ही माना जाता है।[1] स्वयं ऋग्वेद में और काव्यादर्श में इसे "दैवी वाग्" कहा है।[2] भाषा के अर्थ में 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण में पाया जाता है।[3]

भारत आर्य भाषा की जननी के रूप में 'संस्कृत' का प्राचीनतम रूप हमें ऋग्वेद में देखने को प्राप्त होता है। वैदिक-साहित्य के उत्तरवर्ती रूपों में हमें शनैः-शनैः विकसित होते हुए रूपों के दर्शन होते हैं तथा हम देखते हैं कि निरुक्तकार यास्क के समय तक आते-आते इसका यह वैदिक रूप काफी बदल चुका था। इसके बाद हम देखते हैं कि आचार्य पाणिनि के समय में वैदिक एवं लौकिक भाषा में अन्तर आ चुका था और इन्हें दो पृथक्-पृथक् नामों से पुकारा जाने लगा था। स्वयं पाणिनि ही छन्दस् (वैदिक) एवं भाषा (लौकिक) के रूप में इन दोनों की संरचना के अन्तर का स्पष्ट निर्देश करते हैं। कात्यायन और

---

[1] अनादि-निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वा प्रवृत्तयः।।
- महाभारत शान्तिपर्व 231.56

[2] क. देवीं वाचमजनयंत देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
- ऋग्वेद viii,100.11

ख. संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।
- काव्यादर्श 1.33

[3] वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ।
- वाल्मीकिरामायण, सुन्दरकाण्ड 30.17

पतञ्जलि के समय तक तो दोनों में भेद और भी अधिक बढ़ गया था। हम देखते हैं कि महाभाष्य के प्रारम्भ में ही "अथ शब्दानुशासनम् " उल्लिखित किया गया है।[1] वैदिक तथा लौकिक दोनों भाषाओं की तुलना करने पर देखा जाता है कि इन दोनों में ही ध्वनि प्रक्रिया, रूप रचना, वाक्य रचना एवं शब्दार्थों की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर आ चुका था।

संस्कृत के भाषायी विकास को देखने से पता चलता है कि पाणिनि के बाद भी इसमें प्राकृत एवं द्रविड़ भाषाओं के अनेक तत्त्वों का सम्मिश्रण होता रहा। इसलिए कात्यायन को संस्कृत में आगत इन नये शब्दों एवं प्रयोगों की सिद्धि के लिए पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक लिखकर उन्हें प्रामाणिकता प्रदान करनी पड़ी, परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, शुद्धतावादियों के कारण 'संस्कृत' की ग्रहण शक्ति का ह्रास होता गया और गुप्त काल में आकर इसका रूप लगभग स्थिर सा हो गया। तब से आज तक इसका यही रूप चलता आया है और इसी में अनेकानेक काव्यों का प्रणयन हुआ। इसी संस्कृत-भाषा की परिधि में प्रकृत कवि के काव्य भी आते हैं।

महाकवि क्षेमेन्द्र संस्कृत-वाङ्मय की उन अमर विभूतियों में अग्रगण्य हैं, जिन्होंने सुरभारती के कोश को समृद्ध बनाने के लिए विपुल कृतियों की रचना की है। वस्तुतः क्षेमेन्द्र संस्कृत-साहित्याकाश के जाज्वल्यमान मार्तण्ड हैं, जिनकी अनल्प प्रतिभा की किरणों ने साहित्य के अनेक क्षेत्रों को आलोकित किया है। क्या काव्य, क्या नाटक, क्या अलङ्कारशास्त्र आदि सभी क्षेत्रों में इन्होंने अपनी प्रौढ़ लेखनी का चमत्कार प्रदर्शित किया है। क्षेमेन्द्र की प्रकाशित कृतियों का, प्रधान रूप से उपदेशात्मक कृतियों का, अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि जीवन को सही दिशा प्रदान करने में ये कृतियाँ बड़ी ही उपयोगी हैं। क्षेमेन्द्र का

---

[1] "केषां शब्दानाम्" लौकिकानां वैदिकानां च।

- महाभाष्य वार्तिक

लोकाचार परिज्ञान अगाध हैं। इनकी उपदेशात्मक कृतियों के अध्ययन से काव्य के प्रमुख प्रयोजन "रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवत्" की साकल्येन पूर्ति होती है। इसी महनीय उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने अपने उपदेशात्मक लघुकाव्यों का प्रणयन किया हैं। ये कृतियाँ मनुष्य के दैनिक जीवन से सम्बन्धित आचार-विचार का माप-दण्ड प्रस्तुत करतीं हैं और मनुष्य के कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय ज्ञान करातीं हैं।

संस्कृत-वाङ्मय के जिज्ञासुओं के लिए यह सौभाग्य का विषय है कि विद्वानों का ध्यान क्षेमेन्द्र की ओर आकृष्ट हुआ है। डॉ० आर्येन्द्र शर्मा ने स्वसम्पादित 'क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रह' में क्षेमेन्द्र की ग्यारह कृतियों को संकलित करके क्षेमेन्द्र के जिज्ञासुओं का उपकार किया हैं। श्री मधुसूदन कौल ने 'देशोपदेश' एवं 'नर्ममाला' तथा डॉ० वी०पी० महाजन ने 'नीतिकल्पतरु' का सम्पादन कर क्षेमेन्द्र-विषयक अध्ययन की दिशा में प्रगति प्रदर्शित की हैं। डॉ० सूर्यकान्त ने 'Ksemendrastudies' में क्षेमेन्द्र के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की है। डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत भूमिका सहित 'औचित्यविचारचर्चा' का सम्पादन किया हैं। डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'समयमातृका' तथा डॉ० ब्रह्ममित्र अवस्थी द्वारा सम्पादित 'दर्पदलन' आदि ग्रन्थ क्षेमेन्द्र के उपदेशात्मक साहित्य को जनसामान्य तक पहुँचाने के महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

कविवर क्षेमेन्द्र ऐसे बहु-आयामी कर्तृत्व के कवि हैं, जिन्होंने भारतीय वाङ्मय का कोई भी कोना अछूता नहीं छोड़ा। ये महाकवि, नाटककार, अलंकारशास्त्री, शब्दकोषकार व इतिहासकार आदि विविध रूपों में हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। सम्भवतः सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में इतना विस्तृत क्षेत्र किसी अन्य कवि का नहीं। न केवल विस्तार की दृष्टि से ही, अपितु काव्योत्कर्ष की दृष्टि से भी हम कह सकते हैं कि कविवर क्षेमेन्द्र संस्कृत-काव्य के प्रमुख स्तम्भों

में से हैं। उनके गद्य और पद्य दोनों में ही अलौकिक ज्ञान एवं चिन्तन की गहन साधना निहित है, जिसके सहारे उन्होंने अपनी कृतियों में जीवन की नीरसता को चीरकर मधुमास के नवरंग बिखेर दिये हैं। घटनाओं का चित्रण करते हुए उनकी दृष्टि सदा मनोवैज्ञानिक रही है। वास्तव में क्षेमेन्द्र का राग ही निराला है। उनकी सूक्ष्म दृष्टि व मौलिकता अलग ही दिखलाई पड़ती है। अपनी विशुद्ध सरस शैली, स्पष्टतः ग्राह्य व रोचक वर्णन, व्यङ्ग्यात्मक उपदेश तथा साहित्य में समालोचनापूर्ण सूक्ष्म निरीक्षण इत्यादि कुछ प्रमुख विशेषताओं के कारण ही आचार्य क्षेमेन्द्र महाकवियों की पंक्ति में उन्नत स्थान प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

क्षेमेन्द्र : जीवन-वृत्त

ग्यारहवीं ईसवी शती में जन्मे कविवर क्षेमेन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इनकी गणना उन कतिपय काश्मीर के संस्कृत-कवियों में की जाती है जिन्होंने अपने जीवन-वृत्त के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचना अपने ग्रन्थों में सूचित की है। महाकवि क्षेमेन्द्र अपनी कृतियों के अन्त में अपना विरद और ग्रन्थ-समाप्ति-समय देना नहीं भूलते हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि वह अपने आश्रयदाता का भी नाम बड़े सम्मानपूर्वक उल्लिखित करते हैं। यद्यपि उन्होंने आत्मकथा सम्बन्धी कोई ग्रन्थ नहीं लिखा है, फिर भी उनके सभी ग्रन्थों के परिशिष्टाँकों से उनके सम्बन्ध में प्रर्याप्त जानकारी प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त 'बौद्धावदानकल्पलता' में उनके पुत्र सोमेन्द्र द्वारा रचित भूमिका तथा कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' भी इनके सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी देने में समर्थ हैं।

महाराजा अनन्त और कलश काश्मीर पर कब शासन कर रहे थे? अनन्त और कलश के बीच क्या सम्बन्ध था? इसके परिज्ञान के लिए तत्कालीन कृति 'राजतरङ्गिणी' का अनुशीलन आवश्यक हो जाता हैं 'राजतरङ्गिणी' के अनुसार

अनन्त राजा कलश के पिता थे।[1] अनन्त के पिता संग्रामराज ने अपने ज्येष्ठ पुत्र हरिराज[2] को लौकिक सम्वत् अथवा सप्तर्षि सम्वत् चार में राज्याभिषिक्ति किया, किन्तु यह 22 दिन तक ही शासन करने के बाद दिवंगत हो गये।[3] तदनन्तर अनन्त को राजा बनाया गया।[4] चूँकि राजा हरिराज लौकिक सम्वत् चार के आषाढ़ मास के प्रथम दिन को ही राज्याभिषिक्त हुए थे, अतएव 22 दिन छोड़कर शेष सम्वत् चार से राजा अनन्त का शासन प्रारम्भ होता है। इन्होंने लौकिक सम्वत् 39 तक राज्य किया था।[5] इस समय तक राजा अनन्त काफी स्वस्थ थे, परन्तु पत्नी द्वारा संप्रेषित किये जाने पर इन्होंने अपने पुत्र कलश का

---

[1] हरिराजानन्तदेवास्तां तस्यात्मजौ ततः।
कलशोऽनन्ततनयः क्रमाद् भूपौ तदात्मजौ।।
- राजतरङ्गिणी 8/344

[2] स चतुर्थसमाषाढ-प्रारम्भाहे महीपतिः।
हरिराजाभिधं पुत्रमभिषिच्याऽस्तमाययौ।।
- राजतरङ्गिणी 7/127

[3] द्वाविंशतिमहान्युर्वीं रक्षयित्वा क्षमापतिः।
क्षयं यया शुचियशाः शुचिशुक्लाष्टमी दिने।।
- राजतरङ्गिणी 7/131

[4] मिलितौस्तावदेकाङ्गैर्भ्रात्रा धात्रेयकेण च।
सागराख्येन तत्पुत्रो बालोऽनन्तो नृपः कृतः।।
- राजतरङ्गिणी 7/135

[5] क. पत्न्या संप्रेरितः शश्वत्तनयनस्नेहमूढया।
पुत्राय कलशायाभूद्राज्यं दातुं समुद्यतः।।
- राजतरङ्गिणी 7/231

ख. एकान्तचत्वारिंशस्य वर्षस्य तनयः सिते।
षष्टेऽह्नि बाहुलस्याऽभूदभिषिक्तो महीभुजा।।
- राजतरङ्गिणी 7/233

राज्याभिषेक कर दिया। कलश अभी छोटे थे। पिता के समीप भोजन करने वाले कलश नाममात्र के राजा हो गये थे। राजा का कार्य भार तो अनन्त सम्भालते थे, हाँ, इतना अवश्य था कि वे पुरोहित के सदृश पिता जी के सहायक थे।[1] महाराजा अनन्त लौकिक संवत् 55 में स्वर्गवासी हो गये।[2] लौकिक संवत् कलियुग में 25 वें वर्ष में प्रारम्भ हुआ।[3] यह वर्तमान समय काश्मीर में भी चालू है। तब शताब्दियों का उल्लेख नहीं होता। कल्हण (चतुर्थसमाषाढ प्रारम्भाहे) और अभिनवगुप्त (इति नवसितततमेऽस्मिन् वत्सरे) लौकिक संवत् के चलने वाले वर्ष मात्र का ही उल्लेख करते हैं। राजतरङ्गिणी के अध्ययन से पता चलता है कि लौकिक संवत् का प्रारम्भ 1075 ई.पू. में हुआ।[4] अतः इस समय

---

[1] पित्रोरेवान्तिके कुर्वन्नाहाराद्यपि संततम् ।
ततो बभूव कलशो नाममात्रमहीपतिः।।
- राजतरङ्गिणी 7/245

[2] वत्सरे पञ्चपञ्चाशे ज्येष्ठे मासि विनिर्गतः।
आसाद्य विजयक्षेत्रे स स्वर्गसुखमन्वभूत् ।।
- राजतरङ्गिणी 7/361

[3] व्हूलर - काश्मीर रिपोर्ट, पृष्ठ संख्या 45-48

[4] क. शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कालेगतेषु वर्षाणमभूवन् कुरुपाण्डवाः।।
लौकिकेऽब्देचतुर्विंशे शककालस्य सांप्रतम् ।
सत्तत्याऽभ्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः।।
प्रायस्तृतीयगोनन्दादारभ्य शरदां तदा।
द्वे सहस्रे गते त्रिंशदधिकं च शतत्रयम् ।।
वर्षाणां द्वादशशती षष्टिः षड्भिश्च संयुता।
भूभुजां कालसंख्यायां तद् द्वापञ्चाशतो मता।।
ऋक्षादृशं शतेनाब्दैर्यात्सु चित्रशिखण्डिषु।
तच्चारे संहिताकारेरिव दत्तोऽत्र निर्णयः।।

के आधार पर कल्हण द्वारा वर्णित राजाओं के लौकिक सम्वत् को ई. सन् के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रकार राजा अनन्त का राज्यारोहण 4104-3075=1029 ई. में हुआ और इन्होंने 4139-3075=1064 ई. तक शासन किया था। महाराजा अनन्त के बाद उनके पुत्र एवं उत्तराधिकारी कलश 1064 ई. में सिंहासनारूढ़ हुए। अनन्त के जीवनकाल तक नाममात्र के लिए राजा कहलाने वाले कलश ने अपने पिता की मृत्यु (4155-3075=1080 ई.) के बाद से 1088 ई. तक राज्य किया। चूँकि राजाकलश का शासन काल 1064 ई. से ही प्रारम्भ हो गया था। अतएव महाकवि क्षेमेन्द्र ने 'दशावतारचरित' का रचना काल जो महाराजा कलश के समय का बताया है, वह उनके रचनाकाल के समय (4141-3075) =1066 को देखते हुए ठीक ही है।

क्षेमेन्द्र का काल

कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा रचित 'समयमातृका'[1] 'बोधिसत्त्वावदानकल्पलता',[2] 'बृहत्कथामञ्जरी',[1] नामक ग्रन्थों के अन्तवर्ती उल्लेखों से उन उन ग्रन्थों के रचना

असन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड् द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य।।

- राजतरङ्गिणी 1/51-56

ख. डॉ0 सूर्यकान्त- क्षेमेन्द्र स्टडीज़, पृष्ठ संख्या 11

ग. डॉ0 पी.वी. महाजन- नीतिकल्पतरु, भूमिका, पृष्ठ संख्या 1

1 संवत्सरे पञ्चविंशे पौषशुक्लादिवासरे।
श्रीमतां भूतिरक्षायै रचितोऽयं स्मितोत्सवः।।

- समयमातृका, उपसंहार श्लोक 2

2 संवत्सरे सप्तविंशे वैशाखस्य सितोदये।
कृतेयं कल्पलतिका जिनजन्ममहोत्सवे।।

- बोधिसत्त्वावदानकल्पलता, प्रस्तावना श्लोक 16

संवत् क्रमशः 25, 27, 12 दिये हैं। 'औचित्यविचारचर्चा', 'कविकण्ठाभरण,' 'समयमातृका', तथा 'सुवृत्ततिलक' इत्यादि ग्रन्थों द्वारा इनकी रचना काश्मीर नरेश अनन्त के समय में होने का ज्ञान प्राप्त होता है।[2] 'दशावतारचरित' सम्राट् अनन्त के उत्तराधिकारी राजा 'कलश' के समय लिखा गया था।

डॉ0 व्हूलर के मतानुसार क्षेमेन्द्र की कृतियों में दिये गये संवत् सप्तर्षि संवत् से सम्बन्धित हैं तथा राजा अनन्त के सप्तर्षि संवत 4 से 39 तक राज्य किया।[3] सप्तर्षि संवत् का आरम्भ 1025 ई. से हुआ था। इस प्रकार राजा अनन्त का शासन काल 1029 ई. से 1064 ई. तक का है तथा 'बृहत्कथामञ्जरी', 'समयमातृका', 'बोधिसत्त्वावदानकल्पलता' एवं 'दशावतारचरित' का रचनाकाल क्रमशः 1037, 1058, 1052 व 1066 ई. है। परन्तु डॉ. सूर्यकान्त के मतानुसार क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों की रचना तिथियाँ लौकिक संवत् से सम्बन्धित हैं, क्योंकि राजतरङ्गिणी का रचना काल 4224 वाँ लौकिक वर्ष या 1070 शक संवत्सर है तथा शक संवत्सर का प्रारमभ 78 ई0 सन् है। अतः राजतरङ्गिणी का रचनाकाल ईसा संवत् के अनुसार 1070+78=1148

[1] कदाचिदेव विप्रेण स द्वादश्यामुपोषितः।
प्रार्थितो रामयशसा सरसः स्वच्छचेतसा।।
- बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार श्लोक 39

[2] क. तस्य श्रीमदनन्तराजनृपतेः काले किलायं कृतः।
-औचित्यविचारचर्चा, उपसंहार श्लोक 5

ख. राज्ये श्रीमदनन्तराजनृपतेः काव्योदयोऽयं कृतः।
- कविकण्ठाभरण, अतिम श्लोक

ग. तस्यानन्तमहीपतेर्विरजसः प्राज्याधिराज्योदये।
क्षेमेन्द्रेण सुभाषितं कृतमिदं तत्पक्षरक्षाक्षमम् ।।
- समयमातृका, परिशिष्ट 1

[3] डॉ0 व्हूलर- काश्मीर रिपोर्ट, पृष्ठ संख्या 46

'4224-1148'। इसके अनुसार भी 'बृहत्कथामञ्जरी', 'समयमातृका', 'बोधिसत्त्वावदानकल्पलता' एवं 'दशावतारचरित' का रचनाकाल 1037, 1050 व 1066 ई0 ही है।

'बृहत्कथामञ्जरी' क्षेमेन्द्र की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक है तथा ' दशावतारचरित' के पश्चात् की कोई रचना उपलब्ध नहीं है। अतः क्षेमेन्द्र कृत ग्रन्थों का रचनाकाल 1037 ई से 1066 तक निश्चित होता है। क्षेमेन्द्र ने 'विद्याविवृत्ति' के रचयिता अलंकार शिरोमणि आचार्य अभिनवगुप्त की शिष्यता ग्रहणकर उनसे साहित्यशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी।[1] जिसका रचनाकाल 990 ई0 से 1020 ई0 तक माना जाता है, 'औचित्यविचारचर्चा' तथा 'सुवृत्ततिलक'[2] में क्षेमेन्द्र ने परिमल के श्लोक उद्धृत किये हैं, जिसका रचनाकाल 974 ई0 से 1010 ई0 ठहरता है। अतः क्षेमेन्द्र का रचनाकाल 1037 ई0 से 1066 ई0 ही रहा होगा। अभिनवगुप्त ने विद्याविवृत्ति 1014 ई0 में लिखी थी। अतः क्षेमेन्द्र के 1014 ई0 के बाद भी शिक्षा प्राप्त करने का पता चलता है। इस प्रकार उनके अध्ययन की उचित प्रौढ़ावस्था के अधिगम के लिए इसके अध्ययन काल में क्षेमेन्द्र की अवस्था 25 के आस-पास मानें तो जन्म का समय 1010

---

[1] क. आचार्यशेखरमणिर्विद्या विवृत्तिकारिणः।
श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात्साहित्यं बोधिवारिधेः।
- भारतमञ्जरी, परिशिष्ट 8

ख. श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात्साहित्यं बोधिवारिधेः।
आचार्यशेखरमणिर्विद्या विवृत्तिकारिणः।।
- बृहत्कथामञ्जरी, 18/37

[2] क. त्वरातरलविच्छेदैर्विभाति हरिणीपदैः।
मन्दरैर्ग्रन्थि बद्धेव याति निःस्पन्द संगताम् ।।
- सुवृत्ततिलक, 2/29

ख. औचित्याविचारचर्चा, 11/1 तथा 16/8

ई0 सन् के पास होगा। उनकी मृत्यु के विषय में यह कथन है कि उन्होंने 'दशावतारचरित' की रचना 1066 ई0 में की जो उनकी सम्भवतः अन्तिम कृति है। अतः उनका मृत्युकाल 1070 के निकट का ही माना जाता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कविवर क्षेमेन्द्र का जीवनकाल 11 वीं शती के प्रथम तीन चरणों में से निश्चित होता है और रचनाकाल द्वितीय चरण के अन्तर्गत है।[1]

क्षेमेन्द्र का स्थान एवं वंशपरम्परा

कविवर क्षेमेन्द्र के जन्म स्थल एवं वंश के बारे में भी उनके द्वारा प्रतिपादित ग्रन्थों के अन्त में दिये गये विवरणों के द्वारा सुनिश्चित जानकारी प्राप्त होती है। 'बृहत्कथामञ्जरी',[2] 'भारतमञ्जरी',[3] 'दशावतारचरित'[4] तथा

---

[1] क. डॉ0 व्हूलर, कश्मीर रिपोर्ट, पृष्ठ संख्या 46

ख. डॉ0 सूर्यकान्त, क्षेमेन्द्र अध्ययन, पृष्ठ संख्या 8

ग. Dr. Dasgupta, 'History of sanskrit literature' p. 144

घ. Kane, Introduction, p. 99

[2] काश्मीर को गुणाधारप्रचण्डश्चाभिधो भवत् ।
नानार्थिजणसंकल्पपूरेण कल्पपादपः।।

- बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार श्लोक 31

प्रकाशेन्द्र की जगह चण्ड का पाठान्तर पाकर डॉ0 व्हूलर ने क्षेमेन्द्र के पिता का नाम चण्ड बताया है।

परन्तु यह मत ठीक नहीं है क्योंकि अन्यत्र सभी जगह प्रकाशेन्द्र ही मिलता है।

[3] काश्मीर को गुणाधारः प्रकाशेन्द्राभिधोऽभवत् ।
नानार्थिसार्थसंकल्पपूरणे कल्पपादपः।।

- भारतमञ्जरी, उपसंहार श्लोक 1

[4] काश्मीरेषु बभूव सिन्धुराधिकः सिन्धोश्च निम्नाशयः।
प्राप्तस्तस्य गुणप्रकर्षयशसा पुत्रः प्रकाशेन्द्रताम् ।

'रामायणमञ्जरी'[1] से ज्ञात होता है कि क्षेमेन्द्र के पितामह सिन्धु तथा पिता प्रकाशेन्द्र थे। कविवर के पुत्र सोमेन्द्र ने बृहद् काव्य 'बौद्धावदानकल्पलता' की भूमिका में अपने वंश के विषय में प्रकाश डाला है।[2] इससे ज्ञात होता है कि काश्मीर नरेश जयापीड के अमात्य नरेन्द्र वंश में भोगीन्द्र पैदा हुए। भोगीन्द्र के पुत्र सिन्धु और सिन्धु के पुत्र प्रकाशेन्द्र हुए इस प्रकार प्रकाशेन्द्र क्षेमेन्द्र के पिता थे तथा सोमेन्द्र क्षेमेन्द्र के पुत्र थे। (भोगीन्द्र-सिन्धु-प्रकाशेन्द्र-क्षेमेन्द्र-सोमेन्द्र) इसके साथ ही साथ यह भी ज्ञात है कि इनके सभी पूर्वज भोग्य सम्पद, समन्वित, गुणग्राही, दानी, विद्वान् तथा प्रख्यात थे किन्तु कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' में क्षेमेन्द्र के वंश का उल्लेख नहीं मिलता है। इसी आधार पर

विप्रेन्द्रप्रतिपादितान्नधनभूगोसंघकृष्णाजिनैः।
प्रख्यातातिशयस्य तस्य तनयः क्षेमेन्द्रनामाभवत् ।।
- दशावतारचरित, उपेसंहार श्लोक 2

कश्मीरेष्वभवत् सिन्धुजन्मा चन्द्र इवापरः।
प्रकाशेन्द्रः स्थिरा यस्य पृथिव्यां कीर्तिकौमुदी।।
विद्वज्जनसपर्याप्तपर्याप्तस्वजनोत्सवः।
कथासारं सुधासारं क्षेमेन्द्रस्तत्सुतो व्यधात् ।।
- रामायणमञ्जरी, उपसंहार श्लोक 1 व 3

नरेन्द्रनाम्नः सुमतेः श्री जयापीडमंत्रिणः।
वंशे बभूव भोगीन्द्रो भोगीन्द्र इव भोगवान् ।।
तस्य सत्त्वनिधो श्रीमान् गुणरत्न- गुणाश्रयः।
सूनुर्वाणी सुधासूतिः सिन्धुः सिन्धुरिवाभवत् ।।
तस्य पुत्रः प्रकाशेन्द्रः प्रकाशेन्द्रनिभो भुवि।
बभूव दानपुण्येन बोधिसत्त्वगुणोचितः।।
क्षेमेन्द्रस्तनयस्तस्य कवीन्द्रः कीर्तिचन्द्रिका।
चन्द्रस्येवोदिता यस्य मनसोल्लासिनी सताम् ।।
- बौद्धावदानकल्पलता, प्रस्तावना श्लोक 1-4

डॉ0 सूर्यकान्त महोदय यह अनुमान करते हैं कि सम्भवतः इनके पूर्वज राजनीतिक इतिहास में अधिक प्रख्यात नहीं थे। इसी कारण उनका उल्लेख राजतरङ्गिणीकार कल्हण ने नहीं किया है।[1] क्षेमेन्द्र ने अपने पिता की दानशीलता का वर्णन करते हुए उन्हें परम शैव बताया है। इनके पिता प्रकाशेन्द्र ने 'स्वयम्भू' नामक स्थान में शिवमूर्ति की प्रतिष्ठा करायी तथा 15 लाख मुद्राऐं लोक कल्याणकारी कृत्यों में खर्च कीं।[2] उन्होंने अनेक धार्मिक मठों के निर्माण कार्य के साथ सूर्यग्रहण के समय एकलाख मुद्राओं से युक्त तीन 'कृष्णाजिन' दान में दिये।[3] अत्यधिक दानीशलता के कारण ही इन्हें 'इन्द्र' की उपाधि से विभूषित किया गया था।[4] स्पष्ट रूप से कहा जाता है कि इनके पिता प्रचुर सम्पत्तिशाली एवं उदार प्रकृति के दानशील व्यक्ति थे। अतः कविवर क्षेमेन्द्र का पालन-पोषण राजकुमारों की भाँति ही हुआ होगा और उनकी वाल्यावस्था सुखमय रही होगी। इनका निवास स्थान भी इनकी धर्मशीलता व शैव सम्प्रदाय

---

1 We may conclude from all this that neither Ksemendra nor any of his forefathers played any important role in political affairs of kashmir.
- Ksemendra studies - Dr. Surya Kant

2 यस्य मेरोरिवोदारकल्याणपूर्णसम्पदा।
अगणेयमभूद्गेहे यस्य भोज्यं द्विजन्मनाम् ।।
स्वयम्भूतिलये श्रीमान् यः प्रतिष्ठाप्य देवताः।
दत्वा कोटिचतुर्भागं देवद्विजमठादिषु।।
- बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार श्लोक 32 व 34

3 अल्पप्रदोऽस्मीत्यभवत् स लज्जानतकन्धरः।
सूर्यग्रहे त्रिभिर्लक्षैः दत्वा कृष्णाजिनत्रयम् ।।
- बृहत्कथमञ्जरी, उपसंहार श्लोक 33

4 सम्पूर्णदानसंतुष्टाः प्राहुस्तम्ब्रह्मणाः सदा।
इन्द्र एवासि किन्त्वेकः प्रकाशस्ते गुणाधिकः।।
- भारतमञ्जरी, परिशिष्ट

से ही सम्बन्धित है। दशावतारचरित में कविवर क्षेमेन्द्र ने अपना निवास स्थल 'त्रिपुरेशशैल' बताया है।[1] कविवर क्षेमेन्द्र की मृत्यु के विषय में उनके द्वारा रचित 'बृहत्कथामञ्जरी' उपसंहार श्लोक में उल्लेख प्राप्त होता है कि इनकी मृत्यु शिव की प्रतिमा के आलिङ्गन करते समय हुई थी।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि क्षेमेन्द्र के वंशजों का नाम प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ 'राजतरङ्गिणी' में नहीं मिलता है। यदि ये वंशज किसी राजा के आश्रित होते या किसी उच्चपद पर आसीन होते तो इन लोगों का नाम अवश्यमेव 'राजतरङ्गिणी' में उल्लिखित होता। इससे स्पष्ट हो जाता है कि क्षेमेन्द्र के वंशज नरेन्द्र आदि न तो किसी राजा के आश्रित थे और न ही किसी उच्चपद पर आसीन थे। एक सम्भ्रान्त नागरिक की जो स्थिति होती है वही स्थिति उन लोगों की जान पड़ती है कविवर क्षेमेन्द्र उच्चकोटि के कवि थे। अतएव उन्होंने अपने वंशजों का नाम श्रद्धापूर्वक संकीर्तन किया है। यह उचित भी है, परन्तु ऐसा समझना कि ये तत्कालीन राजा के कृपापात्र या वरिष्ठ अधिकारी रहे हों, यह उचित नहीं है। जहाँ तक प्रकाशेन्द्र की अत्यधिक समृद्धि का सवाल है, निरन्तर प्रयत्न से और उद्यम से धन एकत्र करना अभ्युदयशील व्यक्तियों के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

क्षेमेन्द्र की शिक्षा-दीक्षा

कविवर क्षेमेन्द्र के विद्यार्थी जीवन का कोई विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। उन्होंने अपने काव्यग्रन्थों में तीन गुरुओं का उल्लेख अवश्य किया है

---

1 तेन श्री त्रिपुरेशशैलशिखरे विश्रान्तिसंतोषिणा।

- दर्पदलन, परिशिष्ट 2 व 3

2 पूजयित्वा स्वयं शम्भुं प्रसरद्बाष्पनिर्झरः।
गाढं दोर्भ्यां समालिङ्ग्य यस्तत्रैव व्यपद्यत।।

- बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार श्लोक 35

जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित थे। उन्होंने 'बृहत्कथामञ्जरी' में आचार्य अभिनवगुप्त को अपना गुरु होने का निर्देश कि या है अभिनवगुप्त से उन्होंने साहित्यशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी।[1] बृहत्कथामञ्जरी में उन्होंने आचार्य सोम 'भागवत' से आध्यात्मिक विषयों की शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख भी किया है।[2] 'औचित्यविचारचर्चा में उन्होंने भट्ट गङ्गक को भी गुरु के रूप में उल्लिखित किया है।[3] परन्तु गङ्गक के बारे में और विस्तृत रूप से सुनिश्चित जानकारी नहीं मिलती है। 'औचित्यविचारचर्चा' में ही कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने को 'सर्वमनीषिशिष्य' बताया है।[4] 'कविकण्ठाभरण' में भी उन्होंने 'व्युत्पत्त्यै सर्वशिष्यता' का शिक्षोपदेश दिया है। ऐसा भी अनुमान किया जा सकता हैं कि उन्होंने विनयवश ऐसा कहा हो, परन्तु उन्होंने स्वयं तीन गुरुओं का नामोल्लेख कर यह सिद्ध कर दिया है कि वह गुणग्रहण के चूकते नहीं थे। वे सम्पत्तिशाली परिवार से भी सम्बन्धित थे। अतः सम्भव है कि उन्होंने विभिन्न विषयों में विभिन्न आचार्यों से शिक्षा प्राप्त की हो। कविवर क्षेमेन्द्र का ज्ञान विस्तृत था। उन्होंने गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति, इतिहास, अलंकारशास्त्र, बौद्धदर्शन व मन्त्रशास्त्र आदि तत्कालीन काश्मीर में प्रचलित सभी विषयों का अध्ययन किया था। कविवर क्षेमेन्द्र ने कालिदास के साहित्यामृत का भूयशः पान किया

---

1. श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात् साहित्यं बोधवारिधेः।
   आचार्यशेखरमणिर्विद्याविवृत्तिकारिणः।।
   - बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार श्लोक 37
2. श्रीमदभागवताचार्यसोमपादाब्जरेणुभिः।
   धन्यतां यः परं यातः नारायणपरायणः।।
   - बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार श्लोक 38
3. औचित्यविचारचर्चा कारिका 39 की वृत्ति यथा अस्मदुपाध्यायङ्गकस्य।
4. तस्यात्मजः सर्वमनीषिशिष्यः श्रीव्यासदासापरपुण्यनामा।
   - औचित्यविचारचर्चा, उपसंहार श्लोक 3

था।[1] कोश, गीत, गाथा तथा देशी भाषाओं का, काव्यों का उन्होंने अच्छी प्रकार से अध्ययन किया था।[2] यात्रा सम्बन्धी साहित्य का भी उन्होंने अध्ययन किया था और यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने विदेशों में भ्रमण किया हो क्योंकि उनके लघुकाव्य 'समयमातृका' में वेश्या 'कङ्काली' के जीवन-वर्णन के समय अपने इस वैशिष्ट्य का पर्याप्त परिचय देते हुए उन्होंने काबुल, तुर्किस्तान, चीन, जालन्धर, गौड़देश तथा अफगान निवासियों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। क्षेमेन्द्र का अधिक समय समाज में व्यतीत हुआ था। उन्होंने कवियों से विशेष सम्बन्ध बनाया, किन्तु नीरसों, तार्किकों और वैयाकरणों का अधिक साथ उन्होंने नहीं किया था। इन्हें कवि ने कविता के विकास का विघ्न कहा है।[3] वे वाद-विवाद से सदा दूर रहना ही अपनी मित्रमण्डली से उचित समझते थे। उनका मानना था कि जो व्यक्ति समाज में विवाद करते हैं, जिन्हें दूसरों का यश-शल्य के शूल के समान आकुल करता है तथा जो अपने गुणों की स्थिति से गुणीजनों के गुणों को यत्नपूर्वक आच्छादित करते हैं, क्रोध से मलिन नेत्रों वाले, द्वेष से उष्ण निःश्वास छोड़ने वाले हैं, उन लोगों की विद्या काले नाग की प्रदीप मणि की तरह लोगों के उद्वेग का कारण भी होती है।[4] उनकी मित्रमण्डली उज्ज्वल

---

1 पठेत् समस्तान् किल कालिदासकृतप्रबन्धानितिहासदर्शी।
- कविकण्ठाभरण 1/22

2 गीतेषु गाथास्वथ देशभाषाकाव्येषु दद्यात् सरसेषु कर्णम् ।
- कविकण्ठाभरण 1/17

3 क. न तार्किकं केवलशाब्दिकं वा कुर्याद् गुरुं सूक्तिविकासविघ्नम् । - वही 1/15

ख. यस्तु प्रकृत्यश्मसमान एव कष्टेन वा व्याकरणेन नष्टः।
तर्केण दग्धोऽनलधूमिना वाऽप्यविद्धकर्णः सुकविप्रबन्धैः।। - वही 1/22

ग. रक्षेत् पुनस्तार्किकगन्धमुग्रम् । - वही 1/19

4 ये संसत्सु विवादिनः परयशः शल्येन शूलाकुलाः
कुर्वन्ति स्वगुणस्तवेन गुणिनां यत्नाद् गुणाच्छादनम् ।

चरित्र की थी। उनका अवशिष्ट समय सामयिक नाटक व अभिनय देखने में एवं संगीत-श्रवण में व्यतीत होता था। वे अच्छे कवियों व लेखकों का आदर, सम्मान तथा आर्थिक सहायता करते थे।[1]

क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थों में बहुत से मित्रों का भी उल्लेख किया है, उनमें से रामयशस, नबक, सज्जनानन्द, सूर्य श्री, वीर्यभद्र, लक्ष्मणादित्य, रत्नसिंह, देवधर व उदयसिंह प्रमुख हैं। 'बृहत्कथामञ्जरी' व 'भारतमञ्जरी' के उल्लेखों से स्पष्ट है कि उन्होंने रामयशस की प्रार्थना पर बहुत से ग्रन्थों की रचना की।[2] तथा 'सज्जनानन्द' उन्होंने 'रामयशस' की प्रार्थना पर बहुत से ग्रन्थों की रचना की। तथा सज्जनानन्द की प्रार्थना से 'बौद्धावदानकल्पलता' की रचना की।[3] सोमेन्द्र ने सूर्य श्री को क्षेमेन्द्र का लेखक बताया है। 'औचित्यविचारचर्चा' में कविवर

तेषां रोषकषायतोदरदृशां द्वेषोष्णनिःश्वासिनां
दीप्ता रत्नशिखेव कृष्णफणिनां विद्याऽजनोद्वेगभूः।।

- दर्पदलन, 3/14

1 नाटकाभिनयप्रेक्षा शृङ्गारालिङ्गिता मतिः।
कवीनां सम्भवे दानं गीतेनात्माधिवासनम् ।।

- कविकण्ठाभरणम् , 2/5

2 क. कदाचिद् ब्राह्मणेनैत्य स रामयशसार्थितः।
संक्षिप्तां भारतकथां कुरुष्वेत्यार्यचेतसा।।

- भारतमञ्जरी, उपसंहार श्लोक 3

ख. कदाचिदेव विप्रेण स द्वादश्यामुपोषितः।
प्रार्थितो रामयशसा सरसः स्वच्छन्दचेतसा।।

- बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार श्लोक 39

3 यस्य श्रीरामयशसः सर्वप्रबन्धप्रेरको द्विजः।
प्रयातः सज्जनानन्दपुण्यप्रथमदूतताम् ।।

- बौद्धावदानकल्पलता, भूमिका

क्षेमेन्द्र ने अपने शिष्य उदयसिंह के पिता रत्न सिंह को अपना मित्र बताया है।[1] उन्होंने आचार्य देवधर को सर्वज्ञ बताते हुए 'बृहत्कथामञ्जरी' की रचना का आदेश इन्हीं से प्राप्त करने का उल्लेख किया है।[2]

क्षेमेन्द्र का धर्म

शैव दर्शन एवं धर्म की केन्द्रस्थली काश्मीर की पावन भूमि में निवास करने वाले शैव पिता के संरक्षण में रहने के कारण क्षेमेन्द्र अपने जन्म से शैव थे। कहा जाता है कि इनके पिता शैव धर्म के कट्टर अनुयायी थे। पिता के संरक्षण में क्षेमेन्द्र में जो शैव मत का बीज अंकुरित हुआ था, निश्चय ही वह शैव आचार्य 'अभिनवगुप्त' की शिक्षा एवं सहवसति से पल्लवित हुए होगा किन्तु कालान्तर में वे परम भागवत आचार्य 'सोमपाद' के प्रभाव में आकर वैष्णव धर्म की ओर आकृष्ट हुए और वैष्णव सम्प्रदाय को ही अङ्गीकार कर इसी के अनुयायी बने रहे। क्षेमेन्द्र परम भागवताचार्य 'सोमपाद' का आचार्य अभिनवगुप्त की अपेक्षा अधिक आदर सम्मान करते थे। भागवत धर्म को स्वीकार करने के अनन्तर वे जीवन पर्यन्त भागवत धर्म को स्वीकार करने के अनन्तर वे जीवनपर्यन्त भागवत धर्म के अनुयायी बने रहे। वे धर्म सहिष्णु थे तथा अन्य मतों का भी अध्ययन तथा आदर करते थे। बौद्ध धर्म में भी उनकी श्रद्धा थी तथा उन्होंने बौद्धसाहित्य का अध्ययन कर 'बौद्धावदानकल्पलता' की रचना की थी। व्यास जी को अपना अनुकरणीय मानने वाले कविवर क्षेमेन्द्र की

---

[1] श्री रत्नसिंहे सुहृदि प्रयाते सार्वं पुरं श्रीविजयेशराज्ञि।
तदात्मजस्योदयसिंहनाम्नः कृते कृतस्तेनगिरां विचारः।।
- औचित्यविचारचर्चा, उपसंहार श्लोक 4

[2] स श्री देवधराख्यस्य द्विजराज्यपदस्थितेः।
सर्वज्ञस्याज्ञया चक्रे कथामेतां विनोदिनीम् ।।
- बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार श्लोक 41

दृष्टि में सभी देवों को स्थान प्राप्त था।[1] उनमें समन्वय की प्रवृत्ति विलक्षण थी। वे उदार आशय के एक सहृदय कवि थे। अपने इन्हीं सद्गुणों के कारण प्रौढ़ावस्था में बौद्धमत का भी उन्होंने अनुसरण किया था। इन सबका उनकी लेखनी पर भी प्रभाव पड़ा। उनकी 'बोधिसत्त्वावदानकल्पलता' में भगवान् बुद्ध के प्राचीन जन्मों से सम्बद्ध 'पारमिता' सूचक आख्यानों का पद्यबद्ध वर्णन है। 'हीनयान' में जो स्थान जातकों का है, वही 'महायान' में 'अवदानों' का है। 'अवदान' से तात्पर्य 'शुभ्रचरित' से है। अपनी रचना के डेढ़ सौ वर्षों के भीतर ही इनका तिब्वती भाषा में गौरवपूर्ण अनुवाद हुआ। वैष्णव कवि की कृति होने पर भी बौद्ध-समाज में इतना आदर पाना क्षेमेन्द्र की प्रौढ़ काव्य-शैली एवं उक्तगुणों का पर्याप्त द्योतक है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य 'चारुचर्याशतक के प्रारम्भ में भगवान् शंकर[2] की पूजा किये विना कोई कार्य न करने का उपदेश देते हुए ग्रन्थ के अन्त में सन्तोष देने वाले भगवान् विष्णु[3] का ध्यान करने का उपदेश दिया है। तथा 'सुवृत्ततिलक' में भी कविवर क्षेमेन्द्र ने एक साथ भगवान् शंकर[4] व भगवान् विष्णु[5] के साथ ही साथ व्यास जी की स्तुति की है। कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने 'कविकण्ठाभरण' में गणपति पूजन की भी चर्चा की है।[6] तथा अपने लघुकाव्य 'समयमातृका' के प्रारम्भ में तो कवि ने कामदेव की स्तुति की है।[7] 'दशावतारचरित' में विष्णु की भक्ति को उन्होंने सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य तथा भगवान्

---

1 नूतनोत्पादने यत्नः साम्यं सर्वसुरस्तुतौ। - कविकण्ठाभरण, 2/18

2 न कुर्वीत क्रियां कांचिदनभ्यर्च्य महेश्वरम् । - चारुचर्या, श्लोक 4

3 अन्ते सन्तोषदं विष्णुं स्मरेद्धन्तारमापदाम् ।। - चारुचर्या, श्लोक 99

4 गणपति गुरो .... सुखानि वः। - सुवृत्ततिलक, 1/1

5 स्रवच्छन्दलघुरूपाय .... चक्रिणे। - सृवृत्ततिलक 1/2

6 व्रतं सारस्वतो यागः पूर्वविघ्नेशपूजनम् । - कविकण्ठाभरण, 2/2

7 अनङ्गवातलास्त्रेण जिता येन जगत्त्रयी। - समयमातृका, 1/1

विष्णु के कार्यों को प्रशंसा के योग्य बताते हुए इसी को मोक्ष का साधन बताया है।[1] अतः स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र सभी धर्मों में तथा सभी देवों में समान दृष्टि रखते हुए भागवत धर्म के प्रतिष्ठित देव भगवान् विष्णु के परम भक्त थे तथा जीवन के अन्तिम समय तक वैष्णव ही रहे। 'बृहत्कथामञ्जरी' में कविवर क्षेमेन्द्र अपने को नारायण-परायण[2] कहते हैं। क्षेमेन्द्र की यह नारायण भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी और 'दशावतारचरित' की रचना के समय के आस-पास वे पूर्ण रूप से निष्ठावान् वैष्णव बने हुए दिखलाई पड़ते हैं।[3] इसलिए क्षेमेन्द्र आमरण वैष्णव रहे, यह डॉ0 सूर्यकान्त का कहना ठीक मालूम पड़ता है।[4]

ग्रन्थों में प्रतिपाद्य विषयों को देखकर यह कहा जा सकता है कि क्षेमेन्द्र शान्ति मार्ग के निःस्पृह पथिक थे। व्यक्तिगत साधना की अपेक्षा सामाजिक उत्थान उन्हें अधिक प्रिय था। उनका स्वभाव अत्यन्त निःस्पृह था। उन्होंने सम्भवतः धन की तृष्णा या कृपणता को कभी श्रेष्ठ नहीं माना है।[5] भर्तृहरि की भाँति उन्हें भी शील के प्रति अधिक प्रेम था। उसके समक्ष उन्होंने धन, यौवन, विद्या आदि सभी को हेय माना है।[6] विनय को उन्होंने समस्त गुणों का मूल माना है।[1]

---

1 एतानि तानि भवबन्धविमोचनानि।
अर्चोचितानि चरितानि च चक्रपाणेः।। - दशावतारचरित, 1/17

2 श्रीमदभागवताचार्य सोमपादाब्जरेणुभिः।
ध्वन्यतां यः परां यातः नारायणपरायणः।।
- बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार श्लोक 38

3 सन्तोषो यदि किं धनैः सुखशतैः किं यद्नायत्तता।
वैराग्यं यदि किं व्रतैः किमखिलैस्त्यागैर्विवेको यदि।। - दशावतारचरित 8/25

4 Kshemendra Studies, 1954 p.55 - Dr. Surya Kant.

5 दत्तं न वित्तं करुणानिमित्तं लोभप्रवृत्तं कृतमेव चित्तम् ।
यैः संचयोत्साहरसैः प्रनृत्तं शोचयन्ति ते पातकमात्मवृत्तम् ।। - दर्पदलन, 2/111

6 शीलं परहितासक्तिरनुत्सेकः क्षमा धृतिः।

कविवर क्षेमेन्द्र स्वभाव के अत्यन्त उदार थे। 'दशावतारचरित' में उल्लिखित एक ही श्लोक इस बात की पुष्टि में पूर्णतः समर्थ है।[2]

क्षेमेन्द्र का साहित्यिक जीवन

कविवर क्षेमेन्द्र अपने साहित्यिक जीवन के प्रभात में एक अनुवादक मात्र प्रतीत होते हैं। कवित्व शक्ति तो उन्हें शत-शत अभ्यास के अनन्तर प्राप्त हुई थी। अधिक यथार्थ तथा किंचित् कटु बात तो यह है कि क्षेमेन्द्र कवि बने थे। उनमें नैसर्गिक भावोत्पन्न कवित्व शक्ति एवं 'नवनवोन्मेषशालिनी' प्रतिभा का पहले पहल अभाव था, किन्तु क्षेमेन्द्र की वलवती इच्छा थी एक सार्वभौमिक कवि बनने की। परिणामस्वरूप उन्होंने पैशाची भाषा में लिखित गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' का 'बृहत्कथामञ्जरी' के नाम से संस्कृत पद्यानुवाद किया जैसे वे कहते हैं- इस ग्रन्थ के वे पहले अनुवादकर्ता थे। इस अनुवाद के अनन्तर अवश्य ही उनकी लेखनी को कविता के क्षेत्र में विचरण करने के लिए शक्ति प्राप्त हुई होगी। बाद में उन्होंने 'रामायणमञ्जरी', 'भारतमञ्जरी' एवं 'वात्स्यायनसूत्र' लिखा। उनके इन ग्रन्थों में वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा कामसूत्र का संक्षेप प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही वे अन्यविषयों का भी ज्ञानार्जन करते रहे। उनके ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि गणित, ज्योतिष, औषधिशास्त्र, शल्यचिकित्सा, राजनीति, कामशास्त्र, शैव, वैष्णव तथा बौद्ध-दर्शन एवं धर्म तथा मन्त्रशास्त्र भी उन्हें भली भाँति परिज्ञात थे। 'भारतमञ्जरी' के लिखने के अनन्तर ही सम्भवतः वे 'व्यासदास' के विरुद से विभूषित हुए होंगे।

अलोभश्चेति विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम् ।। - दर्पदलन 3/24

[1] एतदेव कुलीनत्वमेतदेव गुणार्जनम् ।
यत् सदैव सतां सत्सु विनयावनतं शिरः।। - दर्पदलन, 1/29

[2] हिंसा विरहिता चेष्टा वाणी विनय कोमला।
यस्यावैरं मनस्तस्य शत्रुशून्याः दिशो दश।। - दशावतारचरित, 4/4

क्षेमेन्द्र का शब्द-भण्डार

कविवर क्षेमेन्द्र का शब्द-भण्डार विशाल परिलक्षित होता है। उनकी शब्दसंकल्प शक्ति को देखने से परिज्ञात होता है कि अपने समय तक के उपलब्ध समस्त कोश ग्रन्थों का उन्होंने सम्यक् गाढानुशीलन किया था। अप्रसिद्ध से भी अप्रसिद्ध शब्द उनकी दृष्टि में भ्रमण करते रहते थे। और अवसर मिलते ही यथास्थान निविष्ट कर दिये जाते थे। किसी भी दृश्य अथवा भाव को अपने शब्द भण्डार की सहायता से वे बड़ी ही सुगमता से चित्रित कर सकते थे। वस्तुतः वे शब्द कवि थे। उनकी 'रचनावली' के अधिकांश शब्द दुर्बोध्य है और संस्कृत वाङ्मय में उनका क्वचित्प्रयोग ही उपलब्ध होता हैं। शब्द काठिन्य के दुरधिगम्य-'विन्ध्यारण्य' में बहुशः उपलब्ध, मनोहारिणी उपमा-पद्य स्थली क्षेमेन्द्र के साहित्य को अनुपम ढंग से सुरभित कर शाश्वतिकता का आकर्षण आवरण प्रदान करती है। तत्कालीन समाज में प्रचलित विभिन्न क्रिया कलापों अथं च दैनन्दिन जीवन के दृश्यों से ये उपमाये संगृहीत की गयी हैं। उपमा के राज्य में क्षेमेन्द्र को उच्चतर आसन दिया जा सकता है।

क्षेमेन्द्र-नामधारी अन्य व्यक्ति

संस्कृत-साहित्य का यदि अनुशीलन करें तो क्षेमेन्द्र नाम के कई व्यक्तियों के संकेत मिलते हैं, यथा-

(1) काश्मीर के क्षेमराज जो आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य तथा क्षेमेन्द्र के साथी थे। उन्होंने शैव दर्शन पर शिवसूत्र आदि ग्रन्थों की रचना तथा अभिनवगुप्त के 'परमार्थसार' पर टीका लिखी। सर एम0 स्टीन तथा डॉ0 पीटर्सन इन्हें तथा क्षेमेन्द्र को एक ही व्यक्ति मानते थे, परन्तु बाद में डॉ0 पीटर्सन ने अपना मत बदल दिया। प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित क्षेमेन्द्र के अतिरिक्त 'मदनमहार्णवकार' क्षेमेन्द्र, 'मातृकाविवेक' के रचयिता क्षेमेन्द्र, सारस्वत प्रक्रिया के टीकाकार

भूधर के पुत्र क्षेमेन्द्र, हस्तिजनप्रकाशकार क्षेमेन्द्र तथा नरेन्द्रविरचित धातुपाठ के टीकाकार क्षेमेन्द्र के उल्लेख प्राप्त होते हैं। हस्तिजन-प्रकाशकार क्षेमेन्द्र को भी प्रस्तुत क्षेमेन्द्र से अभिन्न मना है।[1] एक लोकप्रकाशकार क्षेमेन्द्र का भी लेख प्राप्त होता है, जो प्रस्तुत शोध विषयक क्षेमेन्द्र से अभिन्न है, अथवा नहीं इस विषय में सन्देह है।[2] डॉ0 कान्ति चन्द्र पाण्डेय ने तर्क सिद्ध विवेचन द्वारा यह स्पष्ट किया है कि क्षेमेन्द्र तथा क्षेमराज अलग-अलग व्यक्ति ही थे।[3] इसके निम्न कारण हैं - (1) क्षेमेन्द्र ने अपनी सभी रचनाओं में 'व्यासदास' नामक उपनाम का प्रयोग किया है, जबकि क्षेमराज अपने को इसी नाम से अभिहित करते हैं। (2) क्षेमराज बराहगुप्त के पौत्र थे, जबकि क्षेमेन्द्र सिन्धु के पौत्र थे। अतः स्पष्ट है कि ये दोनों व्यक्ति अलग-अलग थे।

(2) 'हस्तिजनप्रकाश' के लेखक और गुजरात के यदुशर्मा के पुत्र-क्षेमेन्द्र नाम से विख्यात हैं।

(3) क्षेमेन्द्र 'एकश्रंग' के रचयिता (1901 में लीपज़िग में छपी, एच0 फ्रीनीक द्वारा सम्पादित) सम्भवतः ये भी क्षेमेन्द्र से भिन्न थे।

(4) क्षेमेन्द्र 'सम्बन्धपञ्चाशिका' के रचयिता।

(5) क्षेमेन्द्र 'स्पन्दसन्दोह' के रचयिता।

(6) आचार्य क्षेमीश्वर प्रसिद्ध नाटक 'चण्डकौशिक' के रचयिता।

---

1. आचार्य क्षेमेन्द्र - मनोहरलाल गौड़, पृष्ठ संख्या 9
2. **Ksemendra studies, p 25 - by Dr. Surya Kant**
3. **A Historical and Philosophical Study, Banaras 1935, p. 153, - Abhinavagupta**

इस प्रकार संस्कृत-साहित्य में क्षेमेन्द्र नाम से सम्बन्धित अनेक व्यक्तियों का परिचय प्राप्त होता है, किन्तु जब तक कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता तब तक यही निश्चित है कि आचार्य क्षेमेन्द्र जो 'व्यासदास' के उपनाम से अभिहित किये जाते हैं, उन सब से भिन्न व्यक्ति थे।

क्षेमेन्द्रयुगीन भारत

क्षेमेन्द्रयुगीन भारत का वातावरण कश्मीर-भूमि में काव्य जैसी कोमल कलानुशीलन के सर्वथा अनुपयुक्त था। कश्मीर के इतिहास में असन्तोष, नैराश्य, षडयन्त्र तथा रक्तपात का युग था। तत्कालीन नरेश 'अनन्त' जिसका नाम निर्देश क्षेमेन्द्र ने प्रायः अपने सभी ग्रन्थों में किया है तथा जिसकी छाया में साहित्य-सर्जना किया तथा स्वयं मानसिक दुर्बलता एवं बौद्धिक शिथिलता का मारा हुआ था। इसलिए तो उसने सन् 1063 ई0 में अपना राज्यभार अपने ज्येष्ठ पुत्र 'कलश' को देकर कुछ ही वर्षों के अनन्तर पुनः ग्रहण कर लिया। इसके पश्चात् 1077 ई0 में उसने राज्यकार्य से अवश्य विरत होकर सन् 1881 ई0 में आत्महत्या भी कर ली। विदुषी महारानी 'सूर्यवती' भी अपने पति के साथ सती हो गयी थी।

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी कृतियों में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, कार्यकलापों का यथार्थ चित्रण अंकित किया है। उस समय समाज में सर्वत्र काम, क्रोध, लोभ का बोलबाला था। राजा 'अनन्त' से पूर्व कश्मीर कायस्थों तथा नियोगियों द्वारा बुरी तरह से आक्रान्त था। अनेक भ्रष्टाचार एवं कूटनीति से जनता सन्त्रस्त थी। अधिकार छिन गये थे यहाँ तक कि रूखी-सूखी खेती सुलभ नहीं थी। कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य 'कलाविलास' में कायस्थ चरित्र तथा सुवर्णकारोत्पत्ति शीर्षकों में उनके कृत्यों का वर्णन किया है, ग्रन्थ के नायक मूलदेव को उक्तियों से प्रदर्शित किया गया है कि ठगी विद्याभूतल पर अवतीर्ण होकर संन्यासी, वैद्य, गायक, नटों आदि में प्रविष्ट हो गयी है।

तात्कालिक समाज में जनता ऐसे भीषण संकट में किसी सच्चे रक्षक की तलाश में थी। कविवर क्षेमेन्द्र ने न केवल इसे पढ़ाया, सुनाया, अपितु प्रत्यक्ष रूप से देखा था। परिणामस्वरूप उनका उदार हृदय द्रवित हो उठा और जनता की करुण कहानी को लिपिबद्ध करके यथर्थता का पर्दाफाश किया, साथ ही उनके उन्मूलनार्थ शिष्टता की भावना जाग्रत करनेके लिए अपनी द्रुतगामिनी लेखनी को साहित्य के विविध अङ्गों की रचना में लगाया। उनकी लेखनी में अद्भुत शक्ति है, अनुभव में सत्यता है, कथन में ओजस्विता है, हृदय में जनता के प्रति सच्ची सहानुभूति है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने सुख-दुःख का विवेचनकर जीवन के साथ उसके सम्बन्धों को समुचित रीति से घटित किया। जीवन के अभ्युदय को ध्यान में रखकर सुमार्ग एवं कुमार्ग का पथ प्रशस्त किया। मानस-पटल पर सीधी प्रहार करने वाली व्यङ्ग्यात्मक शैली में दैन्य, कार्पण्य, शोषण, असमानता आदि सामाजिक प्रवृत्तियों पर कुठारघात किया, नीति विषयक, उपदेशात्मक एवं व्यङ्ग्यात्मक काव्य रचनाओं का एक मात्र उद्देश्य था लोगों को कुमार्ग से सुंमार्ग पर लाना। इसी उपकरार्थ उनकी लेखनी सदैव संघर्षशील रही। उनकी कृतियों में भाग्य की अवश्यम्भाविता की स्वीकृति होने पर भी पुरुषार्थ को सर्वोपरि स्थान दिया गया हैं।

●●●

द्वितीय अध्याय

कृतित्व-परिचय

भूमिका - कविवर क्षेमेन्द्र अपनी कृतियों से महाकवि, आचार्य व उपदेशक आदि रूपों में हमारे सामने आते हैं। ये बहुमुखी विकास के कवि थे। एक ओर ये रामायण, बृहत्कथा व विशालतम ग्रन्थ महाभारत के आधार पर क्रमशः 'रामायणमञ्जरी', 'बृहत्कथामञ्जरी' व 'भारतमञ्जरी' जैसे बृहद् ग्रन्थ प्रदान करते हैं, वहीं अलंकारशास्त्र व छन्दः शास्त्र सम्बन्धी 'औचित्यविचारचर्चा' व 'सुवृत्ततिलक' तथा 'कविकिण्ठाभरण' देते हैं। इसी तरह एक ओर जहाँ वे 'चारुचर्या', 'चतुर्वर्गसंग्रह', 'सेव्यसेवकोपदेश' एवं 'दर्पदलन' आदि नीत्युपदेशपरक ग्रन्थ प्रदान करते हैं, वहीं हास्य व व्यङ्ग्यप्रधान, 'देशोपदेश', 'नर्ममाला', 'कलाविलास' एवं 'समयमातृका' आदि रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। 'दशावतारचरित' में उन्होंने भगवान् के दस अवतारों का तथा 'बौद्धावदान-कल्पलता' में भगवान् बुद्ध की पूर्णता का वर्णन करते हुए अनेक-अनुपलब्ध रचनाओं की भी रचना की है, जो विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित रचनाएँ प्रतीत होती हैं।

आचार्य के रूप में क्षेमेन्द्र की रचनाएँ

कवित्व प्रतिभा से मण्डित कविवर क्षेमेन्द्र ने संस्कृत-साहित्य-कोष में कुछ ऐसी ही कृतियाँ प्रदान की हैं, जिनसे उनका आचार्य होना सिद्ध होता हैं यह उनकी सार्वभौम आचार्य बनने को बलवती इच्छा का ही परिणाम है कि उन्होंने छन्दः शास्त्र, अलंकार शास्त्र एवं कविशिक्षाशास्त्र विषयों पर रचनाएँ लिखी हैं तथा औचित्य को काव्यतत्त्व के रूप में सर्वोच्च स्थान देकर अपने आचार्यत्व को स्थापित किया है।

कविवर क्षेमेन्द्र को आचार्य के रूप में सिद्ध करने वाली निम्नलिखित कृतियाँ हैं -

1 सुवृत्ततिलक

यह आचार्य क्षेमेन्द्र की तीन विन्यासों (अध्यायों) में विभाजित छन्दः शास्त्र सम्बन्धी लघुग्रन्थ है। प्रथम विन्यास 'वृत्तावचय' में वृत्तों (छन्दों) का चयन, द्वितीय विन्यास 'गुणदोषवर्णन' में छन्दों के गुण-दोष का विवेचन तथा तृतीय व अन्तिम विन्यास 'वृत्तविनियोग' में कवि ने छन्दों के प्रयोग सम्बन्धी नियमों का विवेचन किया है। यद्यपि कवि ने यह स्वीकार किया है कि प्रत्येक कवि का एक ही प्रिय छन्द हुआ करता है।[1] जैसे- पाणिनि ने उपजाति,[2] भारवि ने वंशस्थ,[3] रत्नाकर ने वसन्ततिलका,[4] भवभूति ने शिखरिणी,[5] कालिदास ने मन्दाक्रान्ता[6] तथा राजशेखर ने शार्दूलविक्रीडित[7] को प्रधानता दी है। परन्तु महाकवि होने के लिए यह आवश्यक है कि बहुत से छन्दों का दक्षतापूर्ण प्रयोग किया जाय। क्षेमेन्द्र ने स्वयं भी इसी सिद्धान्त को अपनाया। उपर्युक्त कवियों द्वारा भी अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। जिसका कविवर क्षेमेन्द्र ने उल्लेख किया है।[8] इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने छन्द विषयक गुण-दोष-विवेचन के साथ

---

1 वृत्ते यस्य भवेद् यस्मिन्नभ्यासेन प्रगल्भता।
स तेनैव विशेषेणे स्वसन्दर्भं प्रदर्शयेत् ।। - सुवुत्ततिलक 3/27
एकवृत्तादरः प्रायः पूर्वेषामपि दृश्यते।
तत्रैवातिचमत्कारादन्यत्रारब्धपूरणात् ।। - सुवृत्ततिलक 3/28

2 स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः। - सुवृत्ततिलक 3/30

3 वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता। - सुवृत्ततिलक 3/31

4 वसन्ततिलकारूढा वाग्वल्ली गाढसङ्गिनी। - सुवृत्ततिलक 3/32

5 भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरंगिणी। - सुवृत्ततिलक 3/33

6 सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति। - सुवृत्ततिलक 3/34

7 शार्दूलविक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः। - सुवृत्ततिलक 3/35

8 इत्येवं पूर्वकवयः सर्ववृत्तकरा अपि।
अस्मिन् हार इवैकस्मिन् प्रायेणाभ्यधिकादराः। - सुवृत्ततिलक 3/36

ही प्रयोग-सम्बन्धी नियमों का भी विस्तृत विवेचन किया है, जिसके अभ्यास से कोई भी व्यक्ति छन्दः शास्त्र का ज्ञाता हो सकता है। विद्वानों ने सुवृत्ततिलक को छन्दः शास्त्र की उत्कृष्ट रचनाओंमें स्थान दिया है।

2. औचित्यविचारचर्चा

आचार्य क्षेमेन्द्र का यह ग्रन्थ अलंकार-शास्त्र पर एक उच्चकोटि का प्रबन्ध है। इसमें क्षेमेन्द्र ने एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, जिसके अनुसार काव्य में औचित्य का विचार ही प्रधान वस्तु है। यद्यपि आनन्दवर्धन ने भी काव्य में औचित्य का महत्त्व स्वीकार किया है, परन्तु क्षेमेन्द्र ने ध्वनि जैसे व्यापक सिद्धान्त के विद्यमान होने पर भी औचित्य का सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादन किया है, जो कि स्वतः मौलिक है। उन्होंने औचित्य को काव्य का प्राण माना है।[1] जो जिसके सदृश हो, जिससे मेल मिले उसे उचित कहते हैं और उचित का ही भाव औचित्य है।[2]

इस तरह क्षेमेन्द्र ने केवल गुण अथवा अलंकार को ही नहीं, अपितु काव्य के अन्य अवयवों जैसे शब्द, वाक्य, क्रिया, कारक, लिङ्ग व वचन इत्यादि को भी इसकी परिधि के अन्तर्गत बताया है। परन्तु यह तो आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा कहे गये साहित्य के रहस्य स्वरूप उसी औचित्य का महत्त्व प्रतिपादित था। जिसे ध्वनिकार ने ध्वनि सिद्धान्त के अन्तर्गत समाहित कर दिया था। अतः यह कहा जा सकता है कि अलंकारशास्त्र पर इनके सिद्धान्त का अधिक व्यापक प्रभाव पड़ सका, जिसे काणे महोदय ने भी कहा है।[3]

---

1 औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना।। -औचित्यविचारचर्चा, कारिका 3

2 उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् ।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।। - औचित्यविचारचर्चा, कारिका 7

3 History of Sanskrit poetics, p.v. Kane p. 252

औचित्य की चर्चा भरत[1] व आनन्द-वर्धन[2] आदि आचार्यों ने भी की है और अनौचित्य को रसभङ्ग का कारण माना है। फिर भी आचार्य क्षेमेन्द्र अपने को 'औचित्य' के नवीन उद्भावक के रूप में ही इंगित करते हैं।[3]

3. कविकण्ठाभरण

यह कवि द्वारा प्रतिपादित कवि शिक्षा का प्रबन्ध है। यह प्रबन्ध पाँच सन्धियों में विभक्त है। प्रथम सन्धि 'कवित्वप्राप्ति' में कवि होने के लिए वांछित प्रयत्नों का चित्रण, द्वितीय सन्धि 'शिक्षाकथन' में कवियों को शिक्षा का निर्देश किया हैं। तृतीय सन्धि 'चमत्कारकथन' में कवि ने यह बताया है कि कोई भी कवि किस प्रकार उत्कृष्ट काव्य का प्रणयन कर सकता हैं। चतुर्थ सन्धि 'गुणदोष विभाग' में काव्य के गुण दोषों का ज्ञान तथा पञ्चम सन्धि 'परिचयप्राप्ति' में कवि के जानने योग्य विभिन्न दोषों का ज्ञान है। यह ग्रन्थ 'औचित्सविचारचर्चा' की ही भाँति विषय के अतिरिक्त साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इसकी शैली उच्च कोटि की तथा विषयानुकूल है। यद्यपि दण्डी, वामन, वाग्भट, राजशेखर, भोज, उद्भट तथा हेमचन्द्र ने भी इस विषय पर निबन्ध लिखा है, परन्तु क्षेमेन्द्र की मौलिकता स्पष्ट है। उन्होंने स्वयं भी कविकण्ठाभरण में प्रतिपादित नियमों का अनुसारण किया है। उदाहरणार्थ समयमातृका, दर्पदलन,

---

[1] आदेशजो हि वेषस्तु न शोभां जनयिष्यति।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते।। - नाट्यशास्त्र 23/69

[2] अनौचित्यादृते नान्यद् रसभङ्गस्य कारणम् ।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा। - ध्वन्यालोक 3/14 की वृत्ति

[3] क्षेमेन्द्र इत्यक्षयकाव्यकीर्तिश्चक्रे नवौचित्यविचारचर्चाम् ।
- औचित्यविचारचर्चा उपसंहार श्लोक 2

सेव्यसेवकोपदेश व चारुचर्या इत्यादि कृतियों में कवि ने लोकाचारज्ञान[1] व उपदेशविशेषोक्ति[2] का अनुकरण किया है।

क्षेमेन्द्र की कृति-सम्पत्ति

कविवर क्षेमेन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। परिणामतः उनकी कृतियों भी विविध क्षेत्रों व विषयों से सम्बन्धित हैं। ये लेखन कार्य में बहुत ही दक्ष एवं स्वभाव के महत्वाकांक्षी भी थे। इन्होंने अपनी कृतियों के ही माध्यम से संस्कृत-साहित्य में अपना अमूल्य स्थान बनाया है। इन्हीं रचना-क्षमता के आधार पर डॉ0 सूर्यकान्त शास्त्री ने इन्हें व्यास वाल्मीकि की भाँति स्फूर्तिदाता बताया है।[3] किन्तु यह कथन अत्युक्तिपूर्ण लगता है। परन्तु इनका स्थान संस्कृत-साहित्य में असाधारण है, यह डॉ0 शास्त्री का कहना उचित एवं सिद्ध है, क्योंकि कविवर ने संस्कृत-साहित्य की अनेक शाखाओं में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण किया है। वे कभी कवि, नाटककार, कोशकार इतिहास पण्डित एवं रसिक तो कभी भक्त, तत्त्वज्ञ व साहित्य-विमर्शक के रूप में सहृदय पाठकों के समक्ष उपस्थित होते हैं।

उन्होंने कितने ग्रन्थों की रचना की यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सभी कृतियाँ उपलब्ध भी नहीं हैं और इस विषय पर विद्वानों में मतैक्य भी नहीं है। डॉ0 सूर्यकान्त तो स्वतः अनिश्चय में है। वे एक जगह इनकी रचनाओं की संख्या बत्तीस देते हैं तो दूसरी जगह क्षेमेन्द्र विरचित ग्रन्थों

---

1 लोकाचारपरिज्ञानं विविक्ताख्यायिकारसः।
इतिहासानुसरणं चारुचित्रनिरीक्षणम् ।। - कविकण्ठाभरण 2/6

2 उपदेश्वविशेषोक्तिरदीर्घरस संगतिः।
स्वसूक्तप्रेषणं दिक्षुपरसूक्त परिग्रहः।। - कविकण्ठाभरण 2/16

3 Kshemendra Studies, 1954. p.5.

की संख्या चौंतीस बताते हैं।[1] कविवर क्षेमेन्द्र के चौंतीस ग्रन्थों की पुष्टि 'सुभाषितरत्नभण्डारागार' के सम्पादक के द्वारा भी प्रदर्शित की गयी है।[2]

डॉ0 डे क्षेमेन्द्ररचित सैंतीस ग्रन्थों की सूची देते हैं।[3] तो डॉ0 काणे का कहना है कि क्षेमेन्द्र ने भारतमञ्जरी और बृहत्कथामञ्जरी के अतिरिक्त चालीस ग्रन्थों का प्रणयन किया।[4] क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यसंग्रह के सम्पादकों के मतानुसार क्षेमेन्द्र ने लगभग चालीस ग्रन्थों की रचना की।[5]

इस प्रकार क्षेमेन्द्र-रचित ग्रन्थों की संख्या की निश्चितता न होने के कारण इतना ही कहा जा सकता है कि इनकी रचनाओं की संख्या बत्तीस से लेकर चालीस के सन्निकट है।

डॉ0 डे द्वारा दत्त ग्रन्थ सूची के आधार पर क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है-

1. अमृततरङ्ग

यह पूर्वदेवकृत क्षीरसागर के मन्थन पर आधृत लघुकाव्य है।[6] इसमें से एक पद्य 'कविकण्ठाभरण' की पञ्चम सन्धि में उद्धृत है।[7]

---

1. Ibid, p. 28
2. सुभाषितरत्नभाण्डागार, 1952, Abbreviation and sources, p.2.
3. History of Sanskrit poetics, 1960 Vol. I p.p. 132-133
4. History of Sanskrit poetics, 1961, Part I, p. 264.
5. Ksemendra wrote some forty works. of these eighteen are available and allready Published seventeen works are are yet to be recovered.
   -minor works of Keshemendra. 1961, introduction p. 8.
6. Minor works of Kshemendra, 1961, Introduction p. 10
7. कविकंण्ठाभरण 5/ उदाहरण श्लोक 49

2. औचित्यविचारचर्चा

क्षेमेन्द्र का यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में कुल उन्तालीस कारिकाएँ हैं। इन्होंने कारिकागत विचारों के स्पष्टीकरणार्थ कुल एक सौ छः उदाहरण रूप श्लोक उद्धृत किये हैं, जिनमें उनके निजी पैंतीस पद्य हैं। यह रससिद्ध काव्य का जीवित सर्वस्व औचित्यसिद्धान्त का प्रतिपादनपूर्वक लिखा हुआ स्वतन्त्र एवं मौलिक ग्रन्थ है।

3. अवसरसार

यह अनन्तराजस्तुतिपरक एक लघुकाव्य है।[1] क्षेमेन्द्र लघुकाव्य संग्रह में इस ग्रन्थ का नाम 'अवतारसार' दिया है। वेश्या प्रमाद वश ही हो सकती है, क्योंकि इसमें का एक पद्य क्षेमेन्द्र ने अपनी औचित्यविचारचर्चा में कर्मपदौचित्यप्रकरण में 'न तु यथा ममैवावसरसारे' इस तरह दिया है।

4. कनकजानकी

यह भगवान् रामचन्द्र के वनवासोत्तर जीवन पर आधृत नाटक रहा होगा।[2] इसके पाँच श्लोक कविकण्ठाभरण में उद्धृत हैं।[3]

5. कलाविलास

यह कविवर क्षेमेन्द्र का उत्कृष्ट काव्य है। उपहासप्रधान यह काव्य दस सर्गों 'दम्भाख्यान', लोभवर्णन, कामवर्णन, वेश्यावृत्त, कायस्थचरित, मदवर्णन, गायनवर्णन, सुवर्णकारोत्पत्ति, नानाधूर्तवर्णन, एवं सकलकला-निरूपण में विभक्त है। इसमें 551 श्लोक हैं। मूलदेव नामक पुरुष इस काव्य का नायक है। यह पुरुष बड़ा कुटिल और चालाक है। इस काव्य में क्षेमेन्द्र ने संन्यासी, वैद्य,

---

1 Minor works of kshemendra, 1961 Introduction p. 2

2 Ibid. 1954, p. 246

3 कविकण्ठाभरण,. उदाहरण श्लोक 22, 47, 48, 56, व 57

गायक, स्वर्णकार, नट आदि का हास्यपूर्ण व रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। यह काव्य प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से भी सम्बन्धित है।

6. कविकण्ठाभरण

यह ग्रन्थ आचार्य क्षेमेन्द्र की परिपक्व बुद्धि की उपज है। क्षेमेन्द्र ने शिष्यों के उपदेश तथा विज्ञों की विशेष जानकारी के लिए[1] पाँच सन्धियों में विभक्त इस ग्रन्थरत्न का अनन्तराज के काल में प्रणयन किया। ग्रन्थ में कुल 55 कारिकाएँ और बासठ उदाहरण श्लोक हैं। "कवि शिक्षा के क्षेत्र में यह एक अमूल्य ग्रन्थरत्न है।

7. कविकर्णिका

क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में इस ग्रन्थ का नाम निर्देश किया है। उससे यह अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ में काव्य के गुण तथा दोषों का विचार हुआ होगा।[2] लेकिन इस ग्रन्थ के बारे में कोई निश्चितता नहीं दिखालाई देती है।

8. क्षेमेन्द्रप्रकाश

इस ग्रन्थ के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

9. चतुर्वर्गसंग्रह

यह कविवर क्षेमेन्द्र ने शिष्यों के उपदेश एवं बुद्धिमानों के सन्तोष के लिए रचा। इसमें धर्मप्रशंसा, अर्थप्रशंसा, कामप्रशंसा तथा मोक्षप्रशंसा नामक चार परिच्छेद हैं और कुल श्लोक संख्या एक सौ छः है। यह प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित लघुकाव्य है।

---

1 शिष्याणामुपदेशाय विशेषाय विपाश्चिताम् ।
अयं सरस्वतीसारः क्षेमेन्द्रेण प्रदर्श्यते।। -कविकण्ठाभरण 1/2

2 कृत्वापि काव्यालंकारां क्षेमेन्द्रः कविकर्णिकाम् ।
तत्कलंके विवेकं च विधाय विबुधप्रियम् ।। - औचित्यविचारचर्चा, कारिका 2

10. चारुचर्या

इसमें सदाचरण की शिक्षा देने वाले सबोध व सुन्दर एक सौ श्लोक अनुष्टुप् छन्द में रचित हैं। सम्भवतः चारुचर्या ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिसके आदि और अन्त के दोनों श्लोकों में भगवान् विष्णु की स्तुति है और शेष 98 श्लोकों की प्रथम पंक्ति में नीति अथवा सदाचार का सन्देश है तथा द्वितीय पंक्ति में अर्थान्तरन्यास अलंकारयुक्त लोकविश्रुत रामायण, महाभारत, हरिवंशपुराण, बृहत्कथा एवं कथासारित्सागर की अनेक कथाओं के निदर्शन हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की विषय वस्तु से सम्बन्धित यह लघुकाव्य है।

11. चित्रभारत नाटक

यह महाभारत पर आधारित नाटक रहा होगा। इसके दो श्लोक कविकण्ठाभरण में और एक श्लोक औचित्यविचारचर्चा में उद्धृत हैं।

12. दशावतारचरित

इसमें भगवान् विष्णु के मत्स्य, कूर्म, वराह प्रभृति दस अवतारों की कुल 1759 श्लोकों में उपसंहार के पाँच श्लोकों को छोड़कर सरस स्तुति की गई हैं यह उपलब्ध ग्रन्थों में कविवर की अन्तिम रचना है। इसकी रचना राजा अनन्त के उत्तराधिकारी सम्राट् कलश के राज्यकाल 1066 ई0 में हुई। इस काव्य से क्षेमेन्द्र की उत्कट विष्णु भक्ति का परिचय प्राप्त होता है। भववान् बुद्ध को भगवान् विष्णु का अवतार मानकर उनके चरितकथन का यही आदि काव्य है।

13. दर्पदलन

कविवर क्षेमेन्द्र की सूक्ष्म एवं व्यापक निरीक्षण शक्ति का द्योतक यह काव्य कुल, धन, विद्या, शौर्य, दान, तप एवं रूप, जो मद के सात हेतु है, इन्हीं नामों के सात अध्यायों में तथा 596 श्लोकों में निबद्ध उपदेशपरक लघुकाव्य है, जो कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित है। प्रत्येक अध्याय में

विभिन्न मदहेतुओं से सम्बन्धित कल्पित कथा भी दी गयी है। क्षेमेन्द्र के मंगलाचरण में विवेक[1] को नमस्कार किया गया है।

14. देशोपदेश

यह दुर्जनवर्णन, वेश्यावर्णन, कुट्टनीवर्णन, विटवर्णन, छात्रवर्णन, वृद्धभार्यावर्णन, एवं प्रकीर्ण नामक 8 उपदेशों में तथा 298 श्लोकों में (उपसंहार दो श्लोकों को छोड़कर) निबद्ध यह सामाजिक टीकात्मक लघुकाव्य है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि लोक-सुधार[2] के उद्देश्य से इस काव्य की रचना हुई। इसमें बैद्य, ज्योतिषी, भिक्षुक, कायस्थ एवं गौडीय छात्रों का उपहास किया गया है। इस काव्य में कविवर क्षेमेन्द्र का उद्देश्य कश्मीर के भ्रष्ट राज्य शासन की आलोचना करना रहा है। इस काव्य का भी विषय प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से सम्बद्ध है।

15. नर्ममाला

यह देशोपदेश की भाँति हास्यापदेशपरक लघुकाव्य तीन परिहासो एवं 407 श्लोकों में विभक्त है। इसमें कायस्थों का कटु उपहास किया गया हैं, कायस्थों के अतिरिक्त श्रमणिका, मठदैशिक, सभर्तृका, वैद्य, गणक एवं गुरु आदि की भी कड़ी आलोचना की गयी है। नर्ममाला भी प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित लघुकाव्य है।

---

[1] प्रशान्ताशेषविघ्नाय दर्पसर्पापसर्पणात् ।
सत्यामृत निधानाय स्वप्रकाशविकासिने।। - दर्पदलन 1/1
संसारव्यतिरेकाय हृतोत्सेकाय चेतसः।
प्रशमामृतसेकाय विवेकाय नमोनमः।। - दर्पदलन 1/2

[2] हासेन लज्जितोऽत्यन्तं न दोषेषु प्रवर्तते।
जनस्तदुपकाराय ममायं स्वयमुद्यमः।। - देशोपदेश 1/4

17. नीतिकल्पतरु

यह डॉ0 सूर्यकान्तमतानुसार व्यास रचित राजनीतिपरक ग्रन्थ की व्याख्या है। औचित्यविचारचर्चा में उल्लिखित 'नीतिकल्पलता' भिन्न ग्रन्थ है अथवा अभिन्न यह कहना दुष्कर है। क्षेमेन्द्र लघुकाव्यसंग्रह में यह वर्णित है कि नीतिकल्पलता का संम्भवतः प्रथमबार सम्पादन 1956 में ही डॉ0 वी0पी0 महाजन द्वारा हुआ। यह 138 अध्याय जो 'सुकुम' के नाम से अभिहित है, में विभक्त है।[1]

18. पद्यकादम्बरी

यह बाणभट्ट की कादम्बरी का पद्यात्मक सारांश है। इस काव्य के आठ श्लोक कविकण्ठाभरण में उद्धृत हैं।[2]

19. पवन पंचाशिका

यह केवल 50 श्लोकों का वायुवर्णन संम्बन्धी लघुकाव्य है।[3] इसके पद्य सुवृत्ततिलक में उद्धृत हैं।

20. बृहत्कथामञ्जरी

यह पंचम सदी के गुणाढ्य कवि द्वारा पैशाची प्राकृत भाषा में 'बृहत्कथा' नामक एक सप्तलक्षात्मक कथाग्रन्थ के आधार पर सारांश रूप में 639 पद्यों का यह 18 लम्बकों (उपसंहार और परिशिष्ट सहित) में विभाजित सारसंग्रह. है। क्षेमेन्द्र द्वारा कथा को अतिसंक्षिप्त रूप देने से इसकी शैली दुर्बोध एवं अस्पष्ट हो गयी है - ऐसा डॉ0 ब्लूलर मानते हैं।[4] अधिक्षेप (व्यङ्ग्य) के कारण अनेक

---

1. Minor works of Kshemendra, 1961 Introduction p. 12
2. कविकण्ठाभरण, उदाहरण श्लोक 15, 17, 20, 24, 26, 34, व 45
3. Minor works of Kshemendra, 1961 Introduction p. 12
4. डॉ0 ब्लूलर 'इण्डियन एन्टीक्वेरी भाग 1, पृष्ठ संख्या 304

जगह दुर्बोधता उत्पन्न हुई है। काव्य अनाकर्षक एवं निर्जीव है, ऐसा डॉ0 कीथ[1] तथा डॉ0 सूर्यकान्त दोनों लोगों का मत है।[2]

21. बौद्धावदानकल्पलता

यह ग्रन्थ 'बोधसत्त्वावदानकल्पलता' के नाम से भी जाना जाता है। यह 108 पल्लवों में विभकत बृहद् काव्य है। किन्तु अन्तिम पल्लव की रचना पिता की मृत्यु के बाद क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने मंगलमयी संख्या की पूर्ति की दृष्टि से की। यह ग्रन्थ काव्यदृष्ट्या रसपूर्ण एवं धर्मदृष्ट्या बौद्धों का प्रिय हैं। इसमें जातक कथाओं का संग्रह है। इस ग्रन्थ की रचना में क्षेमेन्द्र ने वीर्यभद्र नामक बौद्ध आचार्य की सहायता ली है और सूर्य श्री इसके लेखक बने। इस ग्रन्थ का तिब्बती भाषा में भी अनुवाद हुआ है आज भी यह ग्रन्थ उस भाषा में समस्त रूप में उपलब्ध है।[3] डॉ0 कीथ के अनुसार इसका भी विषय की दृष्टि से ही महत्त्व है, शैली व काव्य की दृष्टि से नहीं।[4]

22. भारतमञ्जरी

यह बृहद्काव्य व्यासकृत महाभारत ग्रन्थ का 10665 श्लोक का सारांश है। इस ग्रन्थ के प्रत्येक पर्व के उपसंहार में क्षेमेन्द्र अपने को व्यास रूप महा कवि कहते हैं। महाभारत की कथा को संक्षिप्त रूप में लिखना ही इस ग्रन्थ की रचना का प्रयोजन था। 'व्यास' की उपाधि इसी ग्रन्थ की रचना के कारण ही क्षेमेन्द्र ने ग्रहण की थी। डॉ0 सूर्यकान्त ने इस ग्रन्थ को रूक्ष एवं निर्जीव बताते हुए इसमें साहित्य-सौन्दर्य का अभाव कहा है।[5] किन्तु इसकी आलोचना उचित

---

1 A History of Sanskrit literature, 195, p. 276

2 Kshemendra studies p.p. 17-19.

3 Kshemendra studies, 1954 p.p. 19-20

4 A History of Sanskrit literature, 1953, p. 493.

5 Kshemendra studies, 1954 p. 17

नहीं लगती, क्योंकि इसी ग्रन्थ के कारण ही क्षेमेन्द्र को 'कवीन्द्रता' प्राप्त हुई थी।[1]

23. मुक्तावलीकाव्य

यह काव्य तपस्वीवर्णपरक है।[2] जिसमें का एक पद्य कविकण्ठाभरण में पाया जाता है।[3]

24. मुनिमत मीमांसा

इस काव्य में महर्षि व्यास के उपदेश का तात्पर्य वर्णित है। इसके 15 श्लोक औचित्यविचारचर्चा में उदाहृत है।

25. नृपावली या राजावली

इस ग्रन्थ का उल्लेख कल्हण की राजतरंगिणी में है। इसमें काश्मीरी राजाओं की वंशावली पद्यबद्ध लिखी गयी है, किन्तु यह उपलब्ध नहीं है। इस ग्रन्थ की अनुपलब्धि संस्कृत-साहित्य की बहुत बड़ी हानि है- ऐसा डॉ0 कीथ मानते हैं।[4]

26. रामायणमञ्जरी

आदि कवि वाल्मीकिकृत कथा का यह सार सात काण्डों में विभक्त तथा 6186 पद्यों का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की भाषा प्रवाह शालिनी एवं सुगम है, फिर

---

1 एष विष्णुकथातीर्थपुण्यवत्सलिलोक्षितः।
प्राप्तः सामान्ये जल्पोऽपि क्षेमेन्द्रोऽद्य कवीन्द्रताम् ।।
- भारतमञ्जरी अन्तिम श्लोक

2 Minor works of Kshemendra, 1961, Introduction p. 11

3 कविकण्ठाभरण, उदाहरण श्लोकांक 41

4 A History of Sanskrit literature, 1953, p. 161.

भी डॉ0 कीथ इसे ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण बताते हैं।[1] तथा काव्य दृष्ट्या महत्त्वहीन बताते हैं। क्षेमेन्द्र ने मंगलाचरण में भगवान् विष्णु की स्तुति की है। मंगलाचरण के बाद के श्लोकों में वाल्मीकि एवं उनके रामायण की प्रशंसा की है।

27. ललितरत्नमाला

यह वत्सराज-रत्नावली की प्रेम कथा पर आधारित नाटक है।[2] इसका एक पद्य 'औचित्यविचारचर्चा' में उद्धृत है।[3]

28. लोकप्रकाश

लोकप्रकाश एक कोष का नाम है, जिसमें क्षेमेन्द्र कालीन हिन्दुओं की दिनचर्या, कश्मीर व्यापारियों के लेन-देन आदि की जानकारी का विवरण है। बेबर एवं कौल महोदय इस ग्रन्थ को क्षेमेन्द्र कृत नहीं मानते हैं, परन्तु डॉ0 व्हूलर के अनुसार यही क्षेमेन्द्र की ही रचना है।[4] यह तत्कालीन कश्मीर के अधिकारियों, कर्तव्यों, तथा विभिन्न परगनों सम्बन्धी जानकारी देने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

29. लावण्यवती

इस ग्रन्थ में वासन्तिका नामक कोई गणिका अत्रिवसु नामक किसी श्रोत्रिय को अंकित करती हुई बतायी गयी है। इस काव्य के छः श्लोक 'औचित्यविचारचर्चा' में उद्धृत हैं। लावण्यवती सम्भवतः इस ग्रन्थ की नायिका है। जिसके आधार पर इस ग्रन्थ का नामकरण हुआ।

---

[1] Ibid p. 136

[2] Minor works of Kshemendra, 1961 Introduction p. 11

[3] - औचित्यविचारचर्चा उदाहरण श्लोकांक 66

[4] Dr. whulor, Kashmir Report, p. 45

30. <u>वात्स्यायनसूत्रसार</u>

इसमें क्षेमेन्द्र ने वात्स्यायन के काम सूत्रों का सारांश प्रस्तुत किया है।

31. <u>विनयवल्ली</u>

यह 'क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रह' में 'विनयवती' नाम से अंकित है तथा यह भी बताया गया है कि यह महाभारत की कुछ कहानियों पर आधारित है।[1] 'विनयवती' नाम तो प्रमादवश ही हो सकता है, क्योंकि 'विनयवल्ली' शब्द की पुष्टि औचित्यविचारचर्चा द्वारा भी होती है जिसमें 'यथा मम विनयवल्ल्याम् ' इस तरह उद्धृत है।

32. <u>वेतालपंचविंशति</u>

इस ग्रन्थ के बारे में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

33. <u>व्यासाष्टक</u>

इसमें भुवनोपजीव्य व्यास की स्तुति से सम्बन्धित आठ श्लोक है क्षेमेन्द्र की व्यास जी विषयक प्रगाढ़ आदरभावना का द्योतक यह अष्टक है।

34. <u>शशिवंश काव्य</u>

यह शशिवंश के राजाओं की कथाओं का वर्णन करने वाला महाकाव्य है। इसके पाँच श्लोक कविकण्ठाभरण में उदाहृत हैं।[2]

35. <u>समयमातृका</u>

यह 1050 ई0 में दामोदरगुप्त की पद्धति का वेश्याव्यवसायविषयक 635 श्लोकों का (उपसंहारपरक श्लोक चतुष्टय अतिरिक्त) शृङ्गारविषयक उपदेशपरक काव्य है। इस ग्रन्थ के मंगलाचरण में कामदेव को नमन किया गया

---

1 Minor works of Kshemendra, 1961 Introduction p. 12

2 कविकण्ठाभरण, उदाहरण श्लोकांक 15, 17, 24, 26, व 56

है। एक वणिक् पुत्र की कलावतीकृत वंचना ही इस काव्य का विषय है। यह काव्य भी प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित लघुकाव्य है।

36. सुवृत्ततिलक

यह क्षेमेन्द्र रचित एक असाधारण शास्त्रीय ग्रन्थ हैं इस काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ से कविवर क्षेमेन्द्र का आचार्यत्व होना सिद्ध होता है। कविवर ने छन्दों का सौन्दर्य ध्यान में रखकर इस ग्रन्थ में प्रसिद्ध वृत्तों का शिष्योपदेशार्थ संग्रह किया है। इसमें सत्ताइस वृत्तों के लक्षण तथा उदाहरण हैं। ग्रन्थ 'वृत्तावचय,' 'गुणदोषदर्शन' एवं 'वृत्तविनियोग' नामक तीन विन्यासों के अन्तर्गत 124 कारिकाओं में निर्मित हुआ हैं डॉ0 कीथ, डॉ0 डे, तथा डॉ0 काणे आदि विद्वानों की दृष्टि से क्षेमेन्द्र का यह लघुकाय ग्रन्थ वैशिष्ट्यपूर्ण . है। 'क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रह' में इसे छन्दों पर लिखी गई सर्वोत्तम कृति बताया है साथ ही आज भी सर्वोत्तमत्वप्रदान किया गया है।[1]

37. सेव्यसेवकोपदेश

यह कविवर क्षेमेन्द्रकृत एक विशेषता-सम्पन्न 61 श्लोकों का लघुकाव्य है। सेवकों के बीच के सम्बन्ध अच्छे हो जाँय इस सद्हेतु से इस काव्य में स्वामी एवं सेवकों के मध्य के कर्तव्य एवं उनके कर्तव्यों का बोध कराया गया है। सेव्यसेवकों के सम्बन्ध विगड़ने का कारण सेव्य का दर्प एवं सेवक का लोभ है, यह क्षेमेन्द्र की धारणा है। क्षेमेन्द्र द्वारा इस ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में सन्तोष रूप रत्न को नमन करके औचित्य का बढ़िया प्रयोग किया गया है।[2]

---

1 - **Minor works of Kshemendra, 1961 Introduction p. 14**

2 विभूषणाय महते तृष्णातिमिरहारिणे।
नमः सन्तोषरत्नाय सेवाविषविनाशिने।। - सेव्यसवकोपदेश, श्लोकांक 1

क्षेमेन्द्र की कृतियों का विभाजन

कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाओं के विवरण से पूर्णतः स्पष्ट है कि वे एक उच्चकोटि के बहुमुखी प्रतिभा के मण्डित ग्रन्थकार थे। कविवर क्षेमेन्द्रकृत अमृततरङ्ग, अवसरसार, कनकजानकी, कविकर्णिका, क्षेमेन्द्रप्रकाश, चित्रभारत नाटक, दानपरिजात, नीतिकल्पतरु, पद्यकादम्बरी, पवनपञ्चासिका, मुक्तावली, मुनिमतमीमांसा, राजावली, ललितरत्नमाला, लावण्यवती, वात्स्यायनसूत्रसार, विनयवल्ली, वेतालपञ्चविंशति और शशिवंश इतने उन्नीस ग्रन्थ रत्न तो अनुपलब्ध या अप्रकाशित हैं। लोकप्रकाश काव्य के कर्तृत्व के ही बारे में सन्देह हैं व्यासाष्टकस्तोत्र तो 'भारतमञ्जरी' के ही अन्तर्गत आ जाता है, क्योंकि यह उसी ग्रन्थ में है तथा उससे सम्बन्धित भी है। यह तो स्वतन्त्र काव्य माना ही नहीं जा सकता हैं यह काव्य तो भारतमञ्जरी का ही अंश है। जिस प्रकार 'दशावतारस्तुति' 'दशावतारचरित' का तथा वाल्मीकिप्रशंसा 'रामायणमञ्जरी' का अंश है, उसी तरह 'व्यासाष्टक' भी भरतमञ्जरी का ही अंश है। यह कोई स्वतन्त्र काव्य नहीं हैं यह केवल आठ पद्यों का ही अष्टक है। जिसे इस दृष्टि से भी काव्य नहीं माना जा सकता। अब सोलह काव्य ग्रन्थ अवशिष्ट हैं जो उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं। इनका वर्गीकरण निम्नलिखित विषयानुसार किया जा सकता है-

1. <u>मञ्जरीत्रय (सारांशकाव्य)</u>

    1. बृहत्कथामञ्जरी
    2. भारतमञ्जरी
    3. रामायणमञ्जरी

2. <u>शास्त्रीय ग्रन्थ</u>

    1. औचित्यविचारचर्चा
    2. कविकण्ठाभरण

3. सुवृत्तलिक

3. <u>नीत्युपदेशपरक काव्य</u>

1. चतुर्वर्गसंग्रह
2. चारुचर्या
3. दर्पदलन
4. सेव्यसेवकोपदेश

4. <u>हास्यापदेशपरक व्यङ्ग्यप्रधान काव्य</u>

1. देशोपदेश
2. कलाविलास
3. नर्ममाला
4. समयमातृक

5. <u>अवतारचरितपरक काव्य</u>

1. दशावतारचरित
2. बौद्धावदानकल्पलता

रचना-विवरण एवं वर्गीकरण से कविवर क्षेमेन्द्र की वाणी 'बहुविषयसमावेशिका'' एवं सर्वरसमयता का बोध होता है। क्षेमेन्द्र ने भामहोक्ति को सिद्ध कर दियाहै कि कोई शब्द, अर्थ, न्याय व कला इत्यादि नहीं है, जो इस महान् कवि के काव्यों में न हो,[1] तथा कालिदासोक्ति भी चरितार्थ सी मालूम

---

[1] न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारोमहान् कवेः।। -काव्यालङ्कार 5/4

पड़ती है।[1] इन्हीं विशेषताओं से ही आकृष्ट होकर क्षेमेन्द्र लघुकाव्य संग्रहकार ने क्षेमेन्द्र को बहुमुखी प्रतिभा का धनी बताते हुए प्रशंसा की है।[2]

वैसे आचार्य क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों के बारे में पर्याप्त ज्ञान हमें इनके द्वारा ही रचित तीन शास्त्र ग्रन्थों के द्वारा ही प्रमुख रूप से प्राप्त होता है-

1. औचित्यविचारचर्चा

2. सुवृत्ततिलक

3. कविकण्ठाभरण

'औचित्यविचारचर्चा' की रचना हेतु रत्नसिंह के पुत्र उदयसिंह जिन्हें शिक्षा देने के लिए क्षेमेन्द्र ने इसकी रचना की।[3] कविकण्ठाभरण में उदयसिंह को महाश्री[4] कहा गया है और उसकी 'ललित'[5] एवं 'भक्तिभाव नामक' दो रचनाओं का भी उल्लेख हैं अतः निश्चय है कि दोनों ग्रन्थों में उल्लिखित उदयसिंह एक ही व्यक्ति है, जिसने औचित्यविचारचर्चा के अध्ययन के काफी कालान्तर में ही अपने दोनों ग्रन्थों की रचना की होगी और तब यह 'महाश्री' कहलाया होगा, जिसे क्षेमेन्द्र ने कविकण्ठाभरण में लिखा है। इस प्रकार निश्चित है कि

---

1 न खलु धीमतां कश्चित् अविषयो नाम। - अभिज्ञानशाकुन्तल, चतुर्थोऽङ्क

2 "Kshemendra was a polymath and prolific writer. He was a versatile genius, an accomplished servant; a mathodical writer and a imoportial critic. He thus ocdupies a unique place in sanskrit lilrature on account of his varied writings and his vast literary output."

-Minor works of Kshemendra, 1961 Introduction, p. 5

3 श्रीरत्नसिंहे सुहृदि प्रयाते शार्वं पुरं श्रीविजयेशराशि।
तदात्मजस्योदयसिंहनाम्नः कृतेकृतस्तेन गिरां विचारः।।

- औचित्यविचारचर्चा, उपसंहार श्लोक 4

4 कविकण्ठाभरण 5-1-60

5 वही 5-1-60

कविकण्ठाभरण औचित्यविचारचर्चा के काफी बाद का है। सुवृत्तलिक भी भाषा-शैली की दृष्टि से पहले का मालूम पड़ता है। अतः इसके ग्रन्थों का क्रम इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है। सर्वप्रथम कविवर क्षेमेन्द्र ने सारसंग्रह लिखा जैसा कि ग्रन्थों के अनुवाद व तदनुसार रचना का कविगत प्रथम ·गुण कविकण्ठाभरण में बताया हैं इन सारसंग्रहों में सर्वप्रथम रचना रामायणमञ्जरी है, क्योंकि इसमें 'व्यासदास' उपाधि का प्रयोग नहीं है जिसे उन्होंने भारतमञ्जरी की रचनाकेसमय ग्रहण किया। तत्पश्चात् भारतमञ्जरी, व्यासशतक, बृहत्कथामञ्जरी, वात्स्यायनसूत्रसार तथा कादम्बरी की रचना की।[1]

देशोपदेश व नर्ममाला मूल ग्रन्थों में सर्वप्रथम रचनाएँ हैं। तत्पश्चात् पवनपंचाशिका जो सुवृत्ततिलक में उल्लिखित ग्रन्थ है सुवृत्ततिलक, नीतिकल्पतरु, लावण्यवती, मुनिमतमीमांसा, नीतिलता, अवसरसार, ललितरत्नमाला, मुक्तावलीकाव्य, कलाविलास तथा बौद्धावदानकल्पलता औचित्यविचारचर्चा से पूर्व की रचनाएँ हैं, क्योंकि इनके उल्लेख इस ग्रन्थ में हैं। चूँकि समयमातृका, अवदानकल्पलता के दो वर्ष पूर्व की रचना हैं अतः कलाविलास व बौद्धावदान के मध्य स्थान निश्चित है।

इसके बाद शशिवंश महाकाव्य, चित्रभारत नाटक, कनकजानकी, अमृततरंग व चतुर्वर्गसंग्रह है। चूँकि इन ग्रन्थों का उल्लेख कविकण्ठाभरण में हैं अतः 'कविकण्ठाभरण' इनके बाद की रचना है। तत्पश्चात् क्षेमेन्द्र ने लोकप्रकाश नृपावली[2] या राजावली की रचना की होगी और दर्पदलन, सेव्यसेवकोपदेश,

---

[1] क. Ksemendra studies, p.p. 27-28 -Dr. Surya Kant
ख. आमुख देशोपदेश व नर्ममाला, पृष्ठ 25, - मधुसूदनकौल

[2] डॉ0, व्हूलर इसका नाम 'राजावली' बताते हुए इस ग्रन्थ की काश्मीर में प्राप्ति भी बताते हैं - Kashmir Reprt, p.56

चारुचर्याशतक तथा दशावतारचरित क्षेमेन्द्र की अन्तिमकालीन रचनाएँ हैं। दशावतारचरित (1066) ई0 के बाद की कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है।

वैसे इनकी रचनाओं का विभाजन विभिन्न भागों में इस प्रकार है-

1. **पद्यात्मक सूक्ष्मरूपान्तर** - रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी, बृहत्कथामञ्जरी, दशावतारचरित व बौद्धावदानकल्पलता।
2. **उपदेशात्मक रचनाएँ** - चारुचर्या, सेव्यसेवकोपदेश, दर्पदलन, चतुर्वर्गसंग्रह, कलाविलास, देशोपदेश व नर्ममाला।
3. **रीति ग्रन्थ-** कविकण्ठाभरण, औचित्यविचारचर्चा, सुवृत्ततिलक।
4. **फुटकाल रचनायें** - लोकप्रकाशकोष[1], नीतिकल्पतरु, व्यासाष्टक।
5. **कविकण्ठाभरण में उल्लिखित रचनाएँ** - शशिवंशमहाकाव्य, पद्यकादम्बरी, चित्रभारत नाटक, लावण्यमञ्जरी, कनकजानकी, मुक्तावली तथा अमृततरंग महाकाव्य।
6. **औचित्यविचारचर्चा में उल्लिखित कृतियाँ** - विनयवल्ली, मुनिमतमीमांसा, नीतिलता, अवसरसार, ललितरत्नमाला और कविकर्णिका।
7. **सुवृत्ततिलक की उल्लिखित रचनाएँ** - पवनपञ्चाशिका।
8. **राजतरंगिणी की उल्लिखित रचनाएँ** - नृपावली या राजावली।

---

[1] यह क्षेमेन्द्र की संदिग्ध रचना है। बेवर ने इसे इनकी रचना नहीं माना है, जबकि डॉ0 ब्लूर ने इन्हीं की रचना माना है।

क्षेमेन्द्र की बृहद् रचनाएँ

कविवर क्षेमेन्द्र ने सात बृहद काव्यों की रचना की है, जो निम्न प्रकार हैं-

1. बौद्धावदानकल्पलता

यह ग्रन्थ जातक कहानियों का बोधिसत्त्व या गौतमबुद्ध अथवा शक्यसिंह की कथाओं का संग्रह है। इसमें 108 पल्लव हैं। 107 पल्लव या अध्याय क्षेमेन्द्र द्वारा रचित हैं और कालान्तर में संख्या को महत्त्वपूर्ण बनाने के उद्देश्य से इनके पुत्र सोमदेव ने एक अध्याय को जोड़ा।

2. भारतमञ्जरी

यह विशाल महाकाव्य पुराण के आधार पर रचित है इसमें 10962 पद्य हैं।

3. बृहत्कथामञ्जरी

यह उपसंहार व परिशिष्ट के अतिरिक्त 18 भागों में विभक्त है। इसमें 7639 पद्य हैं। यह गुणाढ्यकृत बृहत्कथा, सोमदेवकृत कथासरित्सागर व बुद्धस्वामीकृत बृहत्कथा श्लोकसंग्रह पर आधारित ग्रन्थ है।

4. दशावतारचरित

यह दश अध्यायों में विभक्त है। इसमें 1764 पद्य हैं।

5. नीतिकल्पतरु

यह 138 अध्यायों में विभक्त ग्रन्थ है, जिसे कुसुम कहा गया है। यह राजनीति पर आधारित ग्रन्थ है।

6. रामायणमञ्जरी

यह वाल्मीकि रामायण पर आधारित महाकाव्य है, जो सात काण्डों में विभाजित है। इसमें 6186 श्लोक संख्या हैं।

7. लोकप्रकाश

डॉ0 व्हूलर के अनुसार यह ग्रन्थ हिन्दुओं के दैनिक जीवन व कश्मीरी अधिकारियों के विवरण के साथ ही साथ काश्मीर के परगनों का ज्ञान कराता है।

- क्षेमेन्द्र की फुटकल रचनाएँ

कविवर क्षेमेन्द्र की तीन छोटी रचनाएँ इस विभाग में आती हैं इनमें से एक का कर्तृत्व संदिग्ध है, शेष दो अत्यन्त लघु कार्य हैं। इनका विवरण निम्नवत् है

1. लोकप्रकाश कोश

यह क्षेमेन्द्र की संदिग्ध रचना है। बेवर ने इसे क्षेमेन्द्र की कृति नहीं माना है। दूसरी ओर व्हूलर ने सबल भाषा में इसे उन्हीं की रचना सिद्ध किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में व्यापारियों के हुण्डीपरचों का परिचय है। काश्मीरी अधिकारियों की उपाधियाँ तथा यहाँ के परगने आदि के नाम दिये हैं। काश्मीर नरेश के भूगोल शासन तथा व्यापार सम्बन्धी विवरण बड़े ही ज्ञानवर्द्धक हैं।

2. नीतिकल्पतरु

यह व्यास की नीतियों पर लिखी गयी टीका है।

3. व्यासाष्टक

यह व्यास की स्तुति में लिखे गये आठ श्लोकों का संग्रह है। यह रचना भारतमञ्जरी का ही एक अंग है।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त 14 (चौदह) रचनाऐं ऐसी हैं जिनका नामोल्लेख क्षेमेन्द्र ने स्वयं अपने ग्रन्थों में किया है। एक का उल्लेख राजतरंगिणी में हुआ है। इसी प्रकार 15 रचनाएँ निश्चित रूप से क्षेमेन्द्र की अनुमित होती है, जो अब तक प्रकाश में नहीं आयीं।

पण्डित शिवदत्त जी ने हस्तिप्रकाश ग्रन्थ को भी क्षेमेन्द्रकृत माना हैं इसी प्रकार व्हूलर ने 'स्पन्दनिर्णय' एवं स्पंदसंदोह को इनका कहा हैं इन तीनों के विषय में कोई निर्णय जनक तर्क नहीं मिलता है।

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में मुक्तकता एवं प्रबन्धात्मकता

कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाएँ प्रायः उपदेशप्रधान हैं और उपदेशप्रधान ग्रन्थ प्रायः मुक्तक ही होते हैं। मुक्तक को मुक्त भी कहा जाता हैं मुक्तक काव्य ऐसा काव्य है जिसका अर्थ पूर्वापर के सम्बन्ध के बिना भी स्वतन्त्र रूप में पूर्ण होता है जबकि प्रबन्धात्मक काव्य में ऐसा नहीं होता है। प्रबन्धात्मक काव्य पूर्वापर कथाओं व कहानियों से सम्बन्धित होता है। कोई भी पद्य स्वतन्त्र न होकर पूर्वापर कथानकों से सम्बन्धित होता है। काव्यादर्श में आचार्यदण्डी ने भी मुक्तक को अन्य पद्य से मुक्त अर्थात् निरपेक्ष या स्वतन्त्र बताया है।[1] एक मुक्तक का दूसरे मुक्तक पद्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। अग्निपुराण में इस मुक्तक पर प्रमुख वैशिष्ट्य चमत्कार उत्पन्न करना बताया गया है। सहृदयों के लिए चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ एक ही श्लोक मुक्तक होता है।[2] इस प्रकार मुक्तक को अनन्यापेक्षी स्वीकार किया गया है। साहित्यदर्पण के अनुसार भी मुक्तक

---

1 मुक्तकं पद्यान्तरमुक्तं श्लोकान्तरनिरपेक्षं एकमेव पद्यम्।
- काव्यादर्श 1/13 वृत्तिभाग

2 मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम् । - अग्निपुराणम् 337, 23-24

छन्दोबद्ध स्वतन्त्र पद्य होता है।[1] छन्द से निबद्ध एकाकी और दूसरे श्लोक की अपेक्षा न रखने वाले पद्य को मुक्तक कहा जाता है।

इस प्रकार मुक्तक पद्य स्वतः ही चमत्कारपूर्ण व अर्थपूर्ण होता हैं उसके भाव को समझने के लिए पूर्वापर अंशों की अपेक्षा नहीं होती हैं जबकि प्रबन्धकाव्य के रसास्वादन में कथावस्तु की गति तथा पात्रों के चरित्र का विकास भी सहायक होता है। साथ ही इसके पद्य पूर्वापर के पद्यों से सम्बन्धित होते हैं। इनके पद्य स्वतन्त्र भाव सम्पन्न नहीं होते हैं, बल्कि कथानक व प्रबन्ध काव्य के पद्यों का सम्बन्ध एक दूसरे पद्यों से बराबर बना रहता है। प्रत्येक गद्य में भावों व अर्थों को समझने के लिए पूर्वा पर प्रसङ्ग आपेक्षित है।

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्य वस्तुतः मुक्तकप्रधान हैं, किन्तु वे कथा गढ़ने में भी निपुण हैं। जहाँ एक ओर वे नैतिक भावों एवं विचारों पर मुक्तक काव्य करते हैं, वहीं उन भावों की पुष्टि में कथा भी गढ़ते हैं। परिणाम स्वरूप इस प्रकार के काव्य मुक्तक होने के साथ ही प्रबन्धात्मक भी हो जाते हैं। इनके प्रमुख आठ लघुकाव्यों का विवेचन निम्नलिखित है—

1. कविवर क्षेमेन्द्र का 'चारुचर्या' नामक 100 श्लोकों का उपदेशपरक लघुकांव्य है जो पूर्णतः मुक्तक की श्रेणी में आता है। इसमें प्रत्येक पद्य आदर्श-व्यवहार का निर्देश करता है। इस ग्रन्थ के अनुष्टुप् छन्द में रचित प्रत्येक पद्य की प्रथम पंक्ति किसी एक नैतिक उक्ति का प्रतिपादन है और द्वितीय पंक्ति में पुराणों और महाकाव्यों के उदाहरण देकर उसका समर्थन किया गया है। इन पद्यों का अर्थ स्वयं में पूर्ण होकर स्वतन्त्र भाव सम्पन्न हैं। इनके अर्थों को समझने के लिए पूर्वापर पद्यों की अपेक्षा नहीं रहती है।

1 MAR 2004

---

1. छन्दोबंद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् । - साहित्यदर्पण 6/314

2. कविवर क्षेमेन्द्र का 61 श्लोकमय 'सेव्यसेवकोपदेश' ग्रन्थ भी मुक्तक की श्रेणी में आता है। इस ग्रन्थ द्वारा क्षेमेन्द्र ने स्वामी और सेवक के बीच होने वाले आदर्श व्यवहारों का संक्षेप में वर्णन किया है इस ग्रन्थ के श्लोक स्वतः में पूर्ण ही हैं। अतः यह मुक्तक काव्य है।

3. कविवर का 'चतुर्वर्गसंग्रह' भी चार वर्गों में विभाजित एक सौ छः पद्यों का उपदेशात्मक ग्रन्थ हैं। यह भी मुक्तक श्रेणी में आता है। इसमें न तो कोई कथोपकथंन है और न ही किसी कथा व कहानी का विस्तार है, अपितु धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष से सम्बन्धित विषयों पर कवि के उपदेशात्मक विचार हैं, जिसका प्रत्येक पद्य स्वयं में अर्थ की पूर्णता रखता है। पाठकों को पूर्वापर की सहायता आवश्यक नहीं होती है। इस ग्रन्थ में काम का वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट व पूर्ण है।

4. 'दर्पदलन' भी सात विचारों में विभक्त उपदेशात्मक मुक्तक काव्य है, इसमें कुल, वित्त, श्रुत, रूप, दान तप इत्यादि मद के हेतुओं की कठोर समालोचना की गयी है। दर्पदलन में सूक्तियों तथा लोकोक्तियों का प्रचुर भण्डार है। साथ ही साथ यत्र तत्र निन्दोपाख्यान भी प्राप्त होते हैं। कविवर पहले मद हेतुओं पर सूक्तियों के माध्यम से समालोचना करते हैं फिर पुनः उसकी पुष्टि में कथानक का भी आश्रय लेते हैं। इस प्रकार यह काव्य मुक्तक होते हुए भी प्रबन्धात्मक है। कथा वाला अंश प्रबन्धात्मक है तथा पूर्व में सभी अंश मुक्तक हैं। इस प्रकार यह काव्य कौल महोदय के शब्दों में व्यङ्ग्यपूर्ण उपदेशात्मक काव्य को दृष्टि में रखते हुए संस्कृतसाहित्य की सर्वोत्तम कृति है।[1]

---

[1] श्री मधुसूदन कौल, देशोपदेश व नर्ममाला। - आमुख पृ0 21

5. कविवर क्षेमेन्द्र का 'देशोपदेश' भी मौलिक रचनाओं में प्रथम है। यह आठ उपदेशों में विभाजित है। इसमें समकालीन सामाजिक कुरीतियाँ व अहंकारी पुरुषों की मूर्खता व मिथ्या अहंकार पर कटु उपहास है। इस काव्य में कविवर क्षेमेन्द्र ने दुर्जन, कंजूस, वेश्या, कुट्टनी, छात्र, विट, वृद्धभार्या, दिविर, कवि तथा वणिक् आदि पर तीखा व्यङ्ग्य किया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में सभी उपदेश स्वतः ही स्वतन्त्र हैं। यह कथोपकथन व कथाओं से भरा होता हुआ मुक्तक काव्य परम्परा का निर्वाहक है। किन्तु इसमें आंशिक रूप से यत्र तत्र प्रबन्धात्मकता भी परिलक्षित होती है।

6. विषय वस्तु की दृष्टि से 'नर्ममाला' भी देशोपदेश से समानता रखती है। यह तीन परिहासों में विभक्त है। यद्यपि परिहास का मुख्य विषय तत्कालीन कायस्थ वर्ग ही है, परन्तु वैद्य, ज्योतिषी तथा गुरु इत्यादि वर्गों पर भी उन्होंने व्यङ्ग्य किये हैं। इसमें कवि ने लगभग सम्पूर्ण सरकार का उपहास किया है और इस दुर्व्यवस्था को दूर करने वाले काश्मीर नरेश राजा अनन्त की प्रशंसा की है। यह काव्य विषयवस्तु की दृष्टि से मुक्तक कोटि में आता है। इसका प्रत्येक श्लोक सामाजिक शोषकों पर व्यङ्ग्य से सम्बन्धित है। प्रत्येक पद्य स्वतन्त्र भावसम्पन्न होकर विभिन्न वर्गों के दोषों को प्रकट करने में समक्ष है।

7. 'कलाविलास' काव्य भी लोभ, वेश्या, काम, कायस्थ, मद, सुवर्णकार, नानाधूर्तों एवं सकलकलाओं से सम्बन्धित उपहासप्रधान काव्य है। अतः इसमें भी मुक्तक परम्परा के पद्य हैं। मूलदेव नामक व्यक्ति इस काव्य का नायक है, जिसके माध्यम से कथानक के द्वारा काव्य को विस्तार भी दिया गया है। इस प्रकार यह काव्य अंशतः मुक्तक होते हुए भी प्रबन्धात्मक है।

8. कविवर क्षेमेन्द्र की 'समयमातृका' वेश्या **'कलावती'** से सम्बन्धित एक उपदेश पूर्ण व्यङ्ग्यात्मक यथार्थ चित्रण मुक्तक काव्य है। एक वर्णिक् पुत्र की कलावतीकृत वंचना, इस काव्य का विषय है। इस ग्रन्थ में इसी विषय को लेकर क्षेमेन्द्र ने कथानक कविस्तार किया हैं, जो चिन्ता-परिप्रश्न, चरितोपन्यास, प्रदोषवेश्यालापर्णन, पूजाधरोपन्यास तथा राग विभागोपन्यास नामक पाँच समयो (अध्यायों) में विभक्त है।

इस प्रकार यह काव्य पूर्णतः प्रबन्धात्मक काव्य है। कथानक के माध्य में कहीं कहीं सूक्तियाँ भी हैं, जो मुक्तक ही हैं।

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में अनेक ग्रन्थ मुक्तक हैं तथा कुछ प्रबन्धात्मक हैं। कविवर क्षेमेन्द्र उन्मुक्त विचारों से युक्त रचना करते हैं। परिणामस्वरूप इनके काव्य भी मुक्तक रूप में प्राप्त हैं। जो काव्य उपदेश व नीतिप्रधान होते हैं, वे पूर्णतः मुक्तक काव्य ही होते हैं। प्रबन्धात्मक काव्यों में भी मुक्तक का प्रयोग प्राप्त होता है।

क्षेमेन्द्र की कृतियों में अन्य लेखकों के प्रसंग

कविवर क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों में निम्नलिखित लेखकों के नाम देखने को मिलते हैं –

कालिदास, बाणभट्ट, रत्नाकर, परिमल, उत्पलराज, गौदीनक राजशेखर, इन्दुराज, वीरदेव, साहिल भट्टनारायण, दीपक, मुक्ताकण, श्यामल, भवभूति, यशोवर्मा, वाग्भट्ट, चक्र, अभिनन्द, भारवि, भर्तृहरि, चन्द्रक, शिवस्वामिन, इन्द्रभानु, मयूर, मुक्तिकलश, दामोदरगुप्त, भट्टवाचस्पति, भट्ट बल्लट, विद्यानन्द भट्ट, उदयसिंह तथा राजपुत्र लक्ष्मणादित्य।[1]

---

[1] आचार्य क्षेमेन्द्र - मनोहरलाल गौड़, पृ0 40

काव्य-प्रयोजन

'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' इस न्याय से सुस्पष्ट है कि सभी कार्य प्रयोजन की अपेक्षा रखते हैं। अतः स्वयमेव स्पष्ट है कि काव्य जैसा महान् कार्य भी निष्प्रयोजन नहीं हो सकता।

वस्तुतः जगत् के हर कार्य के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य रहता है, अर्थात् अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि किस कार्य का सम्पादन उद्देश्यपूर्ण होता है। काव्य रचना के भी भिन्नभिन्न उद्देश्य होते हैं। विभिन्न कालों में हुए विभिन्न कवि विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु काव्य-रचना में तत्पर होते रहे हैं।

काव्य रचना के प्रयोजन व उद्देश्य के विषय में सर्व प्रथम 'भरतमुनि' ने तृतीय शताब्दी में विचार किया था।[1] उनके कथन के पश्चात साहित्यिक विवेचना विकास के साथ ही साथ काव्य के प्रयोजन का भी विशद विवेचन किया गया। भरतमुनि ने तो लोक का मनोरञ्जन एवं शोकपीड़ित तथा परिश्रान्त जनों को विश्रान्ति प्रदान करना काव्य का प्रयोजन बताया है, साथ ही साथ उपदेश करना भी बतलाया है।[2] आचार्य मम्मट ने भी अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में काव्य के छः प्रयोजन बताये हैं।[3] आलंकारिक आचार्य भामह ने सत्काव्य का

---

[1] वेद विद्येतिहासानामाख्यानपरिकल्पनम् ।
विनोदजनं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।
दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
विश्राम जननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।। -नाट्यशास्त्र श्लोक-11

[2] क. हितोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति - नाट्यशास्त्र श्लोक-113
ख. सर्वोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति। -नाट्यशास्त्र श्लोक-114
ग. लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति। -नाट्यशास्त्र श्लोक-116

[3] काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

अनुशीलन धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थचतुष्टय एवं कलाओं में निपुणता, यशः प्राप्ति व प्रीति को प्रयोजन बताया है।[1]

आचार्य भामह के पश्चात् रीतिवादी आचार्य वामन ने सत्त्व के दो प्रयोजन दृष्ट प्रयोजन प्रीति व अदृष्ट प्रयोजनकीर्ति बतलाया है।[2] तदनन्तर ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने भी प्रीति को ही काव्य का प्रयोजन बताया है।[3] सिद्धान्त वक्रोक्तिवाद के नवीन सम्प्रदायवाद का उद्घाटन करते हुए आचार्य कुन्तक ने भी काव्य का प्रयोजन प्रीति व आनन्द ही बतलाया है।[4]

कविवर क्षेमेन्द्र ने भी पूर्वाचार्यों द्वारा बताये गये काव्य प्रयोजनों में से ही अपने काव्य के प्रयोजन को बतलाया है। वस्तुतः इनकी काव्य रचना का भी प्रयोजन सहृदयानन्द व उपदेश रहा है। वैसे विभिन्न काव्यों के प्रारम्भ अथवा अन्त में काव्य रचना के प्रयोजन को भी इन्होंने स्पष्ट किया है। कि कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना 'चतुर्वर्ग संग्रह' में शिष्योपदेश व मनीषियों की सन्तुष्टि के लिए ही इस काव्य की रचना के प्रयोजन को बताया है।[5]

सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।। -काव्यप्रकाश 1/2

1 धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधु काव्यनिषेवणम् ।। - काव्यालंकार 1/2

2 काव्यं सद् दृष्टादृष्टार्थप्रीतिकीर्तिहेतुत्वात् । -वही सूत्रवृत्ति 1/1/5

3 तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम् । -ध्वन्यालोक 1/1

4 धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः।
काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारकः।। -वक्रोक्तिजीवित 1/4

5 उपदेशाय शिष्याणां सन्तोषाय मनीषिणाम् ।
क्षेमेन्द्रेण निजश्लोकैः क्रियते वर्गसंग्रहः।। -चतुर्वर्गसंग्रह 1/2

दर्पदलन में तो कविवर क्षेमेन्द्र ने इस ग्रन्थ के प्रयोजन के रूप में अहंकाराभिभूत प्राणियों के हित को माना है।[1] अपने हास्यापदेशपरक काव्य 'समयमातृका' में तो कविवर क्षेमेन्द्र ने इस काव्य का प्रयोजन श्रीमानों के धन की रक्षा बताया है।[2] कविवर क्षेमेन्द्र ने कलाविलास की रचना तो सतत सज्जनों के मानसानन्द के लिए की है। इन्होंने यह प्रयोजन अपनी इस रचना में स्वतः स्पष्ट किया है।[3]

कविवर क्षेमेन्द्र की देशोपदेश नामक रचना वस्तुतः हास्यपरक काव्य है। इसमें कवि ने स्वीकार किया है कि जो दम्भ व माया इत्यादि दोषो में लिप्त हैं तथा लोगों का शोषण करते हैं, उनके सुधार के लिए कोई उपाय नहीं है, फिर भी उस पर हास्य-व्यङ्ग्य करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना का प्रयोजन माना है।[4] हो सकता है यह व्यङ्ग्य जीवन में सुधार लायें। इन्होंने इस काव्य की रचना में प्रयुक्त हास-परिहास को ही प्रयोजन न मानकर बल्कि दुष्कर्मी के सुधार को माना है।

---

1 अहंकाराभिभूतानां भूतानामिव देहिनाम् ।
हिताय दर्पदलनं क्रियते मोहशान्तये।। - दर्पदलन 1/5

2 संवत्सरे पञ्चविंशे पौषशुक्लादिवासरे।
श्रीमतां भूतिरक्षायै रचितोऽयं स्मितोत्सवः।। - समयमातृका, उपसंहार श्लोक-2

3 कलाविलासः क्षेमेन्द्रप्रतिभाम्भोधिनिर्गतः।
शशीव मानसानन्दं करोतु सततं सताम् ।। -कलाविलास 10/43

4 ये दम्भमायामयदोषलेश
लिप्ता न मे तान् प्रति कोऽपि यत्नः।
किन्त्वेष हास्यव्यपदेशयुक्त्या
- देशोपदेशः क्रियते ममाद्य।। - देशोपदेश श्लोक 1/3

'सेव्यसेवकोपदेश' नामक लघुकाव्य की भी रचना का प्रयोजन कविवर क्षेमेन्द्र ने सुधीजनों के लिए सदा सुख की प्राप्ति बताया है।[1]

नर्ममाला, जो दिविरादि दुष्कर्म लिप्त लोगों की चारित्र चर्या से सम्बन्धित काव्य है, का भी प्रयोजन कविवर ने सज्जनों का विनोद बताया है तथा परिणाम में सर्वलोकोपदेश माना है।[2]

वस्तुतः सज्जनों को सुख व आनन्द देना ही कवि की काव्य रचना का प्रमुख प्रयोजन रहा है। 'चारुचर्या' नामक शतक काव्य की रचना को वे सज्जनों द्वारा अनुमोदित बताते हैं।[3]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा प्रतिपादित विभिन्न काव्यप्रयोजनों से सुस्पष्ट है कि उनकी काव्य-रचना का प्रमुख उद्देश्य सुधीजनों व मनीषियों को आनन्द एवं सन्तोष प्रदान करना था। इसके अतिरिक्त सर्वलोकोपदेश की भी दृष्टि से कविवर ने काव्य प्रणयन किया है।

●●●

---

1 विद्वज्जनाराधनतत्परेण सन्तोषसेवारसनिर्भरेण।
क्षेमेन्द्र नाम्ना सुधियां सदैव सुखाय सेवावसरः कृतोऽयम् ।।
- सेव्यसेवकोपदेश श्लोक 61

2 इति दिविर नियोगिव्रातदुश्चेष्टितानाम्
कुसृतिचरितचर्चा नर्ममाला कृतेयम्।
अपि सुजनविनोदायोम्भिता हास्यसिद्ध्यै
कथयति फलभूतं सर्वलोकोपदेशम् ।। - नर्ममाला 3/113

3 श्रव्या श्रीव्यासदासेन समासेन सतां मता।
क्षेमेन्द्रेण विचार्येयं चारुचर्या प्रकाशिता।। - चारुचर्या, श्लोक 100

तृतीय अध्याय

क्षेमेन्द्रकालिक सामाजिक दशा

भूमिका - कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों में तात्कालिक सामाजिक दशा का व्यापक प्रतिबिम्बन है। सामाजिक रीति-रिवाजों के साथ-साथ रहन-सहन, भोजन, वेश-भूषा, व्यवसाय, शिक्षा एवं मनोरंजन आदि की परम्परायें प्रतिबिम्बित होती हैं। कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यवर्णनों से भारतीय जीवन का पूर्ण विवरण तो स्पष्ट नहीं होता, परन्तु उस पर आंशिक प्रकाश अवश्य पड़ता है। तात्कालिक सामाजिक दशा का चित्रण करते हुए कविवर क्षेमेन्द्र ने उसके ऐसे पहलुओं पर दृष्टि डाली है जिससे तत्कालीन चारित्रिक पतन पर प्रकाश पड़ता है। वेश्या समाज की दूषिका के रूप में प्रधानतया वर्णित है। कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज के समस्त दूषित पक्षों की तथा लोगों की चारित्रिक दुर्बलताअें पर तीखे शब्दों में निन्दा की है। तात्कालिक समाज में सामाजिक विषमता व्याप्त थी, कोई व्यक्ति बहुत धनी था तो कोई अधिक निर्धन। इस प्रकार समाज में आर्थिक दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि जाति, धर्म एवं व्यवसाय के आधार पर भी एक दूसरे के मध्य में अत्यधिक दूरी थी। कविवर क्षेमेन्द्र ने वेश संस्कृति की विकृत अवस्था का सम्यक् प्रकार से अध्ययन किया था और उसकी बुराइयों को उधेड़ कर सबके सामने रख दिया। उन्होंने वेश्याओं के छल-छन्द, कला-प्रियता, लूटखसोट इत्यादि सभी पक्षों का वर्णन किया है। उनके काव्याध्ययन से पता चलता हैं कि विटों का चारित्रिक पतन अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था तथा वे लड़ाई झगड़े और दंगा फसाद के केन्द्र बन गये थे। जिस सुसंस्कृत वेश का पता हमें गुप्त कालीन चतुर्भाणी से चलता है उसका बहुत ही हीन रूप हमें क्षेमेन्द्र के काव्यों में दिखलाई पड़ता है। वेश की यह हालत केवल कश्मीर तक ही सीमित नहीं थी, अपितु उसका पतन तो देशभर में हो चुका था। कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य 'समयमातृका' में तो कुट्टनी के रूप और उसकी चतुराइयों का बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है। तात्कालिक समाज में वेश्याओं की विभूति का

कारण उनकी माताएँ अथवा कुट्टनियाँ होती थीं। धनसम्पन्न लोगों को फँसाने में यहायता करती थीं। उनके डर से विट और दूसरे बिगड़ैल लोग वेश्याओं का कुछ विगाड़ नहीं सकते थे। व्यवसाय के अनुभव सदैव उनके काम आते थे तथा वे अपनी पुत्रियों को वेश्या कर्म को सुचारु रूप से चलाने के लिए शिक्षा देती थीं और उन्हें कामशास्त्र में पारंगत कर देती थीं। कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य देशोपदेश के चौथे उपदेश में उनका सच्चा चित्र खींचा है। वे वेश्याओं के धन की जी जान से रक्षा करती थीं प्रेमियों का खून चूँस लेती थी तथा भले व्यक्तियों को कुराह पर ले जाती थी। वे जान-पहचान और उपकार की परबाह नहीं करती थीं। वे धनवान् ग्राहक को देखकर उसे बेटा पुकार कर तथा उसकी सहृदयता की रसिकता की प्रशंसा करके तथा उसके गुणों की तारीफ करके उसे लूट लेती थीं। कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य 'समयमातृका' में मध्यकालीन सामाजिक दशा का बहुत ही जीता-जागता चित्र खींचा. है। संध्याकाल होते ही वेश्याओं के प्रसाधन से निकले काले अगर की धूप से सारा चकला भर जाता था तथा चन्द्रोदय होते ही मदनोत्सव प्रारम्भ हो जाता था। शराब के लोभी विट वेश्याओं के घरों के सामने की गलियों से चक्कर लगाने लगते थे, दरवाजों पर कान लगाकर कुट्टनियाँ ग्राहकों की प्रतीक्षा करती थीं। क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य देशोपदेश में भी तात्कालिक वेश्याओं की पर्याप्त निन्दा की है, और उनकी हंसी उड़ाई है वेश्याऐं लोभी, लुटेरी और स्वच्छन्द होती हैं प्रेम और कामविहीन होने से वे केवल अपनी ही परवाह करती हैं, वे नीच व्यक्तियों की सम्पत्ति भोगीती हैं तथा सब का साथ करती हैं और अन्त में फलविहीन होती हैं। वृद्ध होने पर भी उनका लालच कम नहीं होता। वे बालक, वृद्ध और तरुण सबको एक जैसा देखती हैं। चित्त के भावों से वे वर्जित होती हैं। वे समयसमय पर बाला, प्रौढ़ा और वृद्धा बन जाती हैं।

समाज में विगड़ी हुई दशा का क्षेमेन्द्र ने पूरी तरह से दर्शन कराया है। तात्कालिक समाज में धूर्तों का बोलवाला था और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इनसे भेंट होती थी। तात्कालिक समाज में तरुण धनी विधवा से मिला देने का लालच दिखलाकर धूर्त लोग मूर्खजन को लूट लेते थे। इस प्रकार की विषमती तात्कालिक समाज में पूर्ण रूप से व्याप्त थी। कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों के आधार पर तात्कालीन व्यवसाय, निवास, खाद्य-वस्तुऐं एवं शिक्षा आदि का उल्लेख निम्नलिखित है

क्षेमेन्द्रकालिक निवास-व्यवस्था

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में कहीं-कहीं तात्कालिक आवास एवं उसमें निर्मित आंगनादि का उल्लेख मिलता है। इस क्षेत्र में भी विषमता थी कहींकहीं पक्की ईंटों से निर्मित मकान कहीं घास फूँस से निर्मित झोंपड़ी का उल्लेख मिलता है। आस्थानी आजकल की बैठक की तरह होती थी जहाँ खानेपीने के बाद लोग मित्रमण्डली के साथ बैठते थे।[1] चूने से रंगा हुआ आंगन तथा सिंदूर से रंगा हुआ भीतरी कमरा गृहस्वामी के ऐश्वर्य का द्योतक था।[2] स्नानादि के लिए अलग व्यवस्था होती थी, जिसके लिए स्थान कोष्ठक[3] शब्द प्रयुक्त हुआ है गन्दे एवं रस्सी से बँधा, टूटे हुए दरवाजे वाला घर दरिद्रता की निशानी माना जाता था।[4]

---

1 भुक्तोत्तरं सहृदयैरास्थानीसंस्थितं कदाचित् तम् ।
अभ्येत्य सार्थवाहो दत्तमहार्होपरमणिकनकः।। -कलाविलास 1/11

2 ततः सुधाधवलितं तस्य सम्मार्जिताङ्गनम् ।
बहुधा समभूद् गेहं सिन्दूरोदरमन्दिरम् ।। -नर्ममाला 1/106

3 तल्लाभसेवया नित्यं सा तस्य स्नानकोष्ठके।
विलासस्खलितालापैर्दिविरस्याहरन् मनः।। - समयमातृका 2/38

4 तस्यावस्करसंछन्नमहारौरवसोदरे।

क्षेमेन्द्रकालिक खाद्य-व्यवस्था

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अध्ययन से तात्कालिक विभिन्न स्तर के लोगों के विभिन्न खानपान आदि वस्तुओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। समाज में शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकृति के लोग थे। उन्हें भोजन के त्रिविध सात्त्विक, राजस एवं तामस भेदों का परिज्ञान था। वेश्या प्रसंग में राजसी भोजन उल्लेख मिलता है।[1] मण्डूक खाने का उल्लेख 'समयमातृका' में मिलता है।[2] मत्स्य, पूप और मधु लोगों का प्रिय था।[3] मछली का जूस, घी, दूध, लहसुन, एवं प्याज इत्यादि पदार्थ कई स्थानों पर उल्लिखित है।[4] मोदक, खीर एवं दही का भी उल्लेख मिलता है।[5] भाण्डा निर्धनों का भोजन था।[6] इसके अतिरिक्त कच्चा शाक[7] कूष्माण्ड (कुम्हड़ा)[8] जौ[1] चावल[2] लावा[3] आदि के

खण्डस्फुटितनासाग्रवारिधानीमहाधने।। - नर्ममाला 1/98

[1] तेन रोगधराख्येन दत्ता रासवती मम।
त्रिभागशेषतां नीता लौल्यलोभोद्भवात् तया।। - समयमातृका 1/29

[2] श्मश्रुराशीचितमुखं काचकाचरलोचनम् ।
पीवरं तीरमण्डूकैर्मार्जारमिव शारदम् ।। -समयमातृका 1/9

[3] तत्र बन्धनपालेन भुजङ्गाख्येन सङ्गता।
निर्विकल्पसुखा चक्रे मत्स्यापूपमधुक्षयम् ।। - समयमातृका 2/49

[4] मत्स्ययूषघृतक्षीरपलाण्डुलशुनादिभिः।
प्रत्यायनप्रसक्ताभूद् यौवनस्य प्रियस्य सा। - समयमातृका 2/26

[5] मांससुरापूषपलाण्डुशफरौदनम् ।
पिष्टभ्रष्टरसस्वच्छभक्ष्यरोचकमोदकम् ।। -नर्ममाला 3/7

[6] यत्नेन खादिरं रागं रक्षन् बद्धमिवाधरे।
प्रपायां मण्डकं भुङ्क्ते वेशमात्रघनो विटः।। -देशोपदेश 5/20

[7] मलशीलस्थ वणिजस्थूत्कृतस्य जुगुप्सया।
लशुनस्याशुचेः पाकगन्धेनेव धनेन किम् ।। - दर्पदलन 2/45

[8] चक्रे मुण्डनमण्डनं परिणमत्कूष्माण्डखण्डोपमम् ..। - समयमातृका 2/62

उल्लेख विभिन्न प्रसङ्गों में प्राप्त होता हैं निर्धनवर्ग लाला (लावा) एवं सत्तू आदि का प्रयोग करता था।[4] भोजन में नमक के प्रयोग का भी लेख है।[5] ताम्बूल (पान) का भी प्रयोग बहुतायत से प्रयोग होता था। ताम्बूल का कई प्रसंगों में प्रयोग हुआ है।[6] उस समय इसको विलासिता की वस्तु माना जाता था।

सुरापान निन्दनीय होते हुए भी शराब पीने की प्रथा समाज में थी, अनेक वर्ग के लोग मद्यामिषप्रिय थे।[7] शराबी के विकृत रूप का बहुत ही घृणास्पद वर्णन है। शराबी नंगा होकर नाचता था वह स्वमूत्र पीने में भी संकोच नहीं करता था।[8] कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में लाल रंग की शराब का उल्लेख प्राप्त होता है।[9] कस्तूरिका मधु का प्रयोग धनी वर्ग करता था।[10] मदिरापान, वेश्या गमन इत्यादि दुर्व्यसनों के साथ द्यूतक्रीड़ा का भी नाम आ जाता है। इसमें

---

1 शिलोञ्छवृत्तिना पूर्वं विप्रेण क्षेत्रचारिणा।
उपवास कृशेनाप्तं यवस्तोकं कलत्रिणा।। - दर्पदलन 6/39

2 समयमातृका 2/72

3 कृत्वा समस्त दिवसं धनानां विधानकुम्भीगणनाविधानम् ।
स लाजपेयापलमानशीलं मृद्नाति रात्रावुदरं सशूलम् ।। - दर्पदलन 2/13

4 सक्तुपात्रे ततः सिद्धे कृतदेव पितृक्रियः।
जायापुत्र विभागेन स्वयं भागं भोक्तुमुद्ययौ।। - दर्पदलन 6/40

5 निर्व्यञ्जनं निर्लवणं विनष्टममृष्टपाकं विनिपिष्टकष्टम् ।
अदृष्टहासं व्ययसंनिरोधात् तस्याभवत् वेश्म सशोकमूकम् ।। - दर्पदलन 2/14

6 फणाटोपकृतास्फोटविचटत्पटपल्लवः।।
विटस्ताम्बूलगण्डूषैर्वेश्याभिः परिपूर्यते।। - देशोपदेश 5/15

7 अथाहूतः परिजनै वैद्योमद्यामिषप्रियः।
निधिं हस्तगतं दैवान् मन्यमानः समाययौ ।। - नर्ममाला 2/67

8 कलाविलास 6/20

9 नर्ममाला 2/63

10 नर्ममाला 1/48

हार कर लोग नंगे बन जाते थे।[1] जुआड़ी अपनी जीत के लिए श्वेतार्क गणपति की पूजा करते थे और मछली, सिंदूर आदि लेकर गुरु के पास जाते थे।[2] धूर्त जुआड़ी पासा फैंकने में एवं हस्तलाघव में निपुण होते थे। कङ्काली द्वारा द्यूतशाला के समाने पाँसे (कपटाक्षशलाका) के विक्रय किये जाने का उल्लेख है।[3]

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि उस समय समाज में आधुनिक समय की भाँति ही गुणअवगुण का मिश्रण था, किन्तु गुणियों की अपेक्षा अवगुणी लोगों की संख्या बहुत अधिक थी। वस्त्र, आभूषण शृङ्गारिक वस्तुऐं, भोजन, खानपान व अन्य भोग, विलासिता की वस्तुएं तथा अन्य सामाजिक पहलू के अंङ्गों की जानकारी उस समय भ्री आज की तरह थी। समाज में धनी, व्यवसायी, प्रतिष्ठित उच्चपद प्राप्त लोग एवं वेश्यादि बहुत भोगविलास से युक्त जीवन यापन तथा समाज का सज्जन एवं साधारण प्रजादि इन भाग्य वस्तुओं से वञ्चित रहते हुए उल्टे इनके शोषण के शिकार होते थे।

क्षेमेन्द्रकालिक व्यवसाय

कविवर क्षेमेन्द्र के द्वारा विभिन्न व्यवसायों के दूषित पक्षों पर किये गये प्रहार से तात्कालिक कुछ व्यवसायों के उल्लेख देखने को मिलते हैं। कविवर क्षेमेन्द्र ने व्यापारियों के चरित्र का मुख्य दोष लालच बताया है, जिससे वे कार्य, अकार्य की ओर ध्यान् नहीं देते हैं। व्यवसायी विभिन्न प्रकार के वस्त्र, कस्तूरी,

---

[1] कलाविलास 7/11

[2] श्वेतार्काकृतिगणपति मन्त्रार्थी, किंतवचक्रविजयाय।
कितवः शफरीमण्डक, सिन्दूरकरो गुरुं याति।। - देशोपदेश 8/23

[3] ततः सा पञ्जिका नाम द्यूतशालापुरः स्थिता।
कपटाक्षशलाकानामकरोद् गूढविक्रयम् ।।- समयमातृको 2/80

चन्दन, कपूर एवं मिर्च आदि से पर्याप्त लाभ उठाते थे।[1] इससे इन वस्तुओं से सम्बन्धित व्यवसायों का भी उल्लेख मिलता है।

कश्मीर में केसर के व्यापार का भी उल्लेख मिलता है। कङ्काली ने ऐसे ही एक व्यापारी को लूटा था।[2] स्वर्णकारों का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जो विभिन्न कपटपूर्ण व्यवहारों से लोगों की सम्पत्ति का हरण करते थे। वैद्य भी कपटपूर्ण कार्यों के कारण कवि द्वारा व्यङ्ग्य का पात्र बन गया है। लघुकाव्यों के अध्ययन से दवाविक्रेता का भी उल्लेख प्राप्त होता है जो स्वयं गंजा सिर वाला होकर गंजेपन की अचूक दवा बेचने का कार्य करता है। कविवर क्षेमेन्द्र की 'समयमातृका' में अन्य व्यवसायों के भी नामोल्लेख प्राप्त होते हैं। कङ्कली मुकुलिका नाम से देवताओं के लिए, धूप, दीप और नैवेद्य बेचती थी।[3] उद्यानपाल एवं पौष्पिक पुष्प इत्यादि का विक्रय करते थे।[4] कङ्काली द्वारा कल्पपाली (कलवारिन) के रूप में शराब बेचने का कार्य किया गया था।[5] वेश्याओं के यहाँ भी छोटेछोटे व्यवसायियों की भीड़ लगी रहती थी। इनमें साँखिक[6] राज्यपाल[1] गायक[2] रूपकार कुम्भकार छत्रधर युग्यवाहक (एक्कावान्)।[3]

---

[1] विविधनवांशुकमृगमदचन्दनकर्पूरमरिचपूगफलैः।
खटिकाहस्तः स सदा गणयति कोटीर्मुहूर्तेन।। -कलाविलास 2/23

[2] कुङ्कुमार्थी वणिक्सूनुरथ तेनाययौ युवा।
सुन्दरः पूर्णिको नाम पूर्णवर्णसुवर्णवान् ।। - समयमातृका 2/8

[3] सा पौष्पिकी मुकुलिका कृत्वा निर्माल्यविक्रयम् ।
देव प्रासादपालानां मूल्यं भुक्त्वा ययौ निशि।। -समयमातृका 2/81

[4] उद्यानपालः कन्दोऽयं मुकुलाख्यश्च पौष्पिकः। .. -समयमातृका 7/40

[5] साथ तक्षकयात्रायां चलहण्ठा दिनत्रयम् ।
कल्पपाली कला नाम विदधे मद्यविक्रयम् ।। - समयमातृका 2/88

[6] जामाता गौरवार्होऽयं पूज्यः कन्यार्पणेन नः।
शाङ्खिकः कमलो नाम संमानं पूर्वमर्हति ।। -समयतृका 7/32

आरम्भिक, नाविक[4] चर्मकृत् एवं धावक[5] इत्यादि हैं। देशोपदेश में भी नापित, चर्मकार, धीवर व सैनिक आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।[6]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में अन्य अनेक व्यवसायियों का उल्लेख प्राप्त होता है, जो वस्तुतः अपने दूषित कर्मों के कारण क्षेमेन्द्र द्वारा कटु आलोचना के पात्र हैं। कविवर क्षेमेन्द्र का उद्देश्य व्यवसायियों का वर्णन करना नहीं था, अपितु व्यापारियों द्वारा किये जा रहे भ्रष्ट एवं कपटपूर्ण कार्यों की तीखी आलोचना कर उन्हें अपनी त्रुटियों की अनुभूति कराना था।

क्षेमेन्द्रकालिक वेष-भूषा

तात्कालिक वेष्र-भूषा के विषय में कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में प्रतिपादित प्रसङ्गों से हमें पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। कविवर क्षेमेन्द्र के द्वारा विट, कृपण, कायस्थ, विद्यार्थी, स्त्री, वेश्या आदि के व्यङ्ग्यपूर्ण वर्णनों से तात्कालिक वेष-भूषा का पूर्णतया ज्ञान प्राप्त होता है।

उनके लघुकाव्य 'समयमातृका' में एक कृपण की वेष-भूषा का वर्णन किया गया है। उसकी टोपी (टुप्पिका) चूहे से कुतरी एवं बेढंगी थी। उसने

---

1 अयं स्थलपतेः सूनुः कपिलः कलाशाभिधः।
गुरुभ्राता कलावत्याः कल्पपालोमधुप्रदः।। - समयमातृका 7/34

2 अयं भारतभाषाज्ञः काम्बो भागवतात्मजः।
गायनः खरदासोऽयं महामात्यस्य वल्लभः।। -समयमातृका 7/37

3 निगिलः रूपकाराख्यः कुम्भकारश्च कर्परः।
बकश्छत्त्रधरश्चायं खञ्जनो युग्यवाहनः।। -समयमातृका 7/38

4 रतिशर्माद्विजन्मायं गणिकाग्रहशान्तिकृत् ।
आरामिकः करालोऽयं कीलवर्तश्च नाविकः।। -समयमातृका 7/39

5 चर्मकृद्वर्मदत्तोऽयं मारच्छिद्रश्च धावकः।। -समयमातृका 7/40

6 नापितश्चर्मकारो वा धीवरः सैनिकोऽपिवा ....। - देशोपदेश 6/29

कटी-फटी ऊनी चादर के साथ ही दूर तक लटक ने वाले मोटे कुर्त्ते को पहन रखा था। उसके चौड़े, ढीले, धूमिल और फटे मोजों का जूतों से उसकी जाँघें एवं घुटने खुले रह जाते थे।[1] इसी कृपण का पुत्र सुन्दर एवं कीमती वस्त्रों को धारण करता था।[2] वह कानों में बड़े मोतियों की बालियाँ सोने की जञ्जीर में चार सोने से मढ़े जन्तर (हेमरक्षा) थे। उसके वालों में राजावर्त से सजे कड़े थे। वह बड़ी किनारों वाली पटी को संभाल रहा था।

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य देशोपदेश में भी एक विट की वेश-भूषा का चित्रण है। उसके हाथों में सुई एवं धागा थे। वह गर्मी में मोटे वस्त्र तथा जाड़े में मलमल पहनता था। उसके पिङ्ग (पजामे) पर वेश्याओं के हाथ के केसरिया रङ्ग लगा था।[3] निर्गुट भी विटों की भाँति चरित्रहीन किन्तु वेष-भूषा में समाज के प्रतिष्ठित लोगों की नकल करता था। उसकी सफेद पगड़ी हल्दी से रंगी होती थी और उसके भद्दे मोजों के सूत निकले होते थे।[4]

कायस्थों की वेषभूषा के चित्र भी खींचे गये हैं। नियोगी छोटे टुकडों से निर्मित टोपी जो किनारों पर ऊँची होती थी, पहनता था।[5] वह नीले रंग का अंग

---

[1] क. वन्धादिमोक्षणागतलाभपरित्यागयाचने बधिरः।
अत्यल्पपण्यदानप्रश्नप्रतिवचनजल्पने मूकः।।

ख. तैलमलकलललाञ्छितमूषकजग्धार्धटुप्पिकाविकटः।
शीर्णोर्णाप्रावरणप्रलम्बघनकञ्चुकाञ्चलालोलः।।

ग. नग्नोरुजानुजर्जरधूमारुणप्रथुलशिथिलमोचोटः।
रूक्षश्मश्रुकलापस्थूलप्रचलल्लटुम्पकग्रन्थिः।। -समयमातृका 8/54,55,56

[2] समयमातृका 7/14-17

[3] देशोपदेश 5/13

[4] नर्ममाला 10/37

[5] फदालग्राशिवं देवग्रहोच्चाटनचाक्रिकम् ।
सुसूक्ष्मदलविन्यासविभागोन्नतटुप्पिकम् ।। - नर्मलाला 1/47

रक्षक पहनता था तथा फटी पुरानी धोती का आँचल बगल में दबाये रहता था। वह पुराने जूते पहनता था, वे भी माँगे हुए थे।[1] गौड देश के विद्यार्थियों के दम्भपूर्ण वर्णन से ज्ञात होता है कि वे छूआ-छूत के भय से अपने कपड़े का आँचल बगल में दबाकर चलते थे।[2] मार्गपति की व्यवस्था में स्नानशाटिका, पाजामा, टोपी (टुप्पिका), योगपट्ट, सफेद धुले हुए कपड़े[3] और मयूरोपानह के उल्लेख हैं।[4] क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य नर्ममाला एवं समयमातृका के अध्ययन से ज्ञात होता है कि स्त्रियों की वेषभूषा का भिन्न-भिन्न प्रकार की होती थी। समयमातृका में कङ्काली समय के अनुसार भाँति-भाँति के कपड़े पहनती थी। वह अपनी किशोरावस्था में कञ्चुक्र पहनती थी, जो स्तनों के ऊपरी भाग पर पहना जाता था।[5] युवती होने पर उसकी ओढ़नी नाक तक पहुँचती थी।[6] योगिनी के रूप में उसने अपने अङ्गों में भस्म पोता, आखों में काजल लगाया, गले में स्फटिक की

---

1 बहुच्छिद्रशिरः शाटलतत्पर्यन्ततूस्तकः।
शतचक्रलिकास्यूतमललिप्ताङ्गरक्षकः।। - नर्ममाला 1/72

2 स्पर्शं परिहरन् याति गौडः कक्षाकृताञ्चलः।
कुञ्चितेनैकपार्श्वेन दम्भभार भरादिव।। -देशोपदेश 6/9

3 अक्षसूत्रं मषीभाण्डं दर्पणः स्नानशाटिका।
सम्पुटीटुप्पिाकाखङ्गाः पादुके मन्त्रपुस्तिका।। - नर्ममाला 1/110

4 स्थूलभूर्जफणत्कारस्फारवाद्यरसाकुलः।
कर्परीश्छिद्रनिर्यातव्यावाल्गिवृषणद्वयम् ।। -नर्ममाला 1/137

5 स्त्रा तस्य क्षैव्यसुप्तस्य निशिकण्ठावलम्बिनी।
निगीर्य शनकैः सर्वं कर्णाभरणकाञ्चनम् ।। -समयमातृका 2/10

6 यत्नोत्क्षिप्तकुचा कचायततया ... करे,
बद्धापाटलपट्टकेन सरलस्थूलाञ्जनव्यञ्जना।
नासार्धावधि वाससा च वदनं संछाद्य विद्याधरी
केयं नूतननिर्गतेति बिदधे सा मुग्धसंमोहनम् ।। - समयमातृका 2/54

माला पहनी तथा कञ्चुक से अपनी भुजाएँ एवं स्तन ढ़कती थी।[1] ऊँचे पहाडों पर वह वस्त्रों से अपना मुख और एक मोटे कम्बल से अपना शरीर ढक लेती थी।[2] कुलटा शरीर पर सुगन्धित द्रव्य मलकर कञ्चुक एक तरफ रखकर अपना घूँघट आधा कर देती थी।[3] योगिनी धाय के रूप में मूंगे की माला, कुण्डल और बाजूबन्द पहने तथा एक मोटा कम्बल ओढे, जो नितम्बों से होकर एड़ी तक पहुँचता था।[4] कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में वर्णित स्त्रियों, विशेषतः वेश्याओं के शृङ्गार सम्बन्धित अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। शृङ्गार में कर्पूर और चन्दन का विशेष स्थान था।[5] ललाट पर नील तिलक सुशोभित होता था।[6] वेशओं के प्रसाधन में मोती के गहने और माला से सजा जूड़ा होता था, जिन्हें वे दर्पण में देखती थीं। उनके हाथ में पान का बीड़ा भी होता था।[7] वेश्या के शृङ्गार में कपोलों पर कस्तूरी का स्फुट और कुटिल पत्राङ्कुर, ललाट पर कस्तूरी का तिलक तथा शरीर पर केसर के लेप का उल्लेख हैं। कभी-कभी पुरुष भी रंग से अपने नख रंगते थे।[8] प्रसाधन के समय अगर व धूप जलायी जाती थी।[9] बाल धोने के लिए त्रिफला प्रयुक्त होता था।[10] स्त्री-पुरुष दोनों अपने बालों में खिजाब

---

1 समयमातृका 2/59

2 समयमातृका 2/93

3 समयमातृका 2/3

4 समयमातृका 8/70

5 कर्पूरचन्दनरसेन न लिप्तमेतत् । - समयमातृका 1/14

6 ललाटनीलतिलकैर्विदिता ममैव।। -समयमातृका 2/106

7 कलावती मौक्तिकभूषणाङ्का धम्मिल्लमाल्यप्रणयप्रसक्तैः।
भृङ्गैर्वृता दर्पणमीक्षमाणा सतारका चन्द्रवती निशेव।। -समयमातृका 6/4

8 देशोपदेश 6/9

9 समयमातृका 2/5

10 देशोपदेश 7/47

लगाते थे। बूढ़ी कङ्काली के खिजाब लगाकर युवती सी लगने का वर्णन है।[1] बृद्धावस्था में वेश्याएं इसे लगाया करती थीं।[2] खिजाब (इच्छानुरञ्जक) केवल सात दिनों तक स्थायी रूप से रहता था।[3] रंग लगाकर केश काले करने का उल्लेख मिलता है।[4] उस समय आभूषणों का भी पर्याप्त प्रयोग होता था। कविवर क्षेमेन्द्र ने इन आभरणों का प्रयोग कई प्रसङ्गों में किया है। वेश्याओं के आभूषणों में मेखला का विशेष स्थान था।[5] नूपुर वेश्याओं को विशेष रूप से प्रिय था।[6] स्त्रियां शंखलतिका तथा विद्रुममाला पहनती थीं।[7] शङ्खलतिका शङ्ख का बना हार होता था। सोने की वाली पहने जाने का उल्लेख है।[8] उसके कण्ठ में विद्रुममाला एवं श्रवणों में रजत निर्मित दो कर्णाभूषण शोभा पाते थे।[9] गले में स्वर्ण जञ्जीर, जिसे हेमसूतिका कहा गया है, पहने जाने का उल्लेख है।[10] पुरुषों

---

1 कृष्णीकृतश्वेतकचा रङ्गाभ्यङ्गेन भूयसा।
.... र्जलेव सा तत्र नवपण्याङ्गनाभवत् ।। - समयमातृका 2/44

2 प्रम्लाने यौवने शुक्लकेश रञ्जनतत्परा।
वश्ययोगार्थिनी याति वेश्या कस्य न शिष्यताम् ।। - देशोपदेश 3/31

3 केशाख्यः सप्तदिवसस्थायी कृच्छ्रानुरञ्जकः।
आस्थिसंस्थोऽन्तरस्थश्च प्रछन्नस्नेहजीवितः।। -समयमातृका 5/43

4 रागेण कृष्णीकृतकेश एष वलीविशेषस्फुटवृद्धभावः।
योगागृहं शम्बरसारनामा यागाय युग्येन गुरुः प्रयाति।। - समयमातृका 6/25

5 समयमातृका 1/14, 3/37

6 समयमातृका 3/13

7 समयमातृका 2/67

8 अङ्गुलीभ्यः समाकृष्य हेमबालकबालिकाः।
चौरग्रस्तेव चुक्रोश हा हातास्मीति सस्वनम् ।। - समयमातृका 2/11

9 कण्ठे विद्रुममालिका श्रवणयोस्ताडीयुगं राजतं। -समयमातृका 2/70

10 समयमातृका 2/73

के आभूषणों में कान के कुण्डल, कण्ठाभरण में हेमरक्षा तथा राजावर्त से सजे कड़े होते थे।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उस समय भी लोगों के लिए वेषभूषा आभूषण एवं अन्य शृंगारिक वस्तुओं का प्रमुख स्थान था। वेश्याएँ विशेष शृंगार करती थीं। कुलटा स्त्रियाँ भी वेश्या सदृश शृंगार में शौक रखती थीं, किन्तु कुलीन स्त्रियाँ अलंकृत वस्त्र (जो रेशम आदि के बने होते थे) पहनती थीं तथा स्वर्ण निर्मित आभूषण धारण करती थीं। पुरुष भी आभूषण धारण करते थे। घूँघट करने के कारण घूँघट प्रथा का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[2] स्फटिक, मुक्ताहार[3] अशर्फी रत्नों[4] का उल्लेख प्राप्त होता है। मोती से जड़ी हुई सोने की वालियाँ[5] तथा मणि आदि बहुमूल्य रत्नों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। राजावर्त नामक मणि का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[6] रेशम का प्रयोग कई स्थलों पर प्राप्त होता है।[7] नक्काशी आदि के कार्यों का भी उल्लेख मिलता है।[8] आज भी कश्मीर में शाल की बुनाई की यही प्रक्रिया है।

---

1 समयमातृका 7/15

2 समयमातृका 2/51

3 समयमातृका 4/56

4 समयमातृका 2/65

5 कर्णसंसक्तमुक्ताङ्कनकस्थूलबालकः।
बहुहेमभराक्रान्ति सव्यथ श्रवणद्वयः।। - समयमातृका 7/14

6 राजावर्तमणि स्थूलगुलिकाभ्यां विराजितम् ।
राजतं चरणालीनं विभ्राणः कटकद्वयम् ।। - समयमातृका 7/16

7 उद्यानलीलागमने निशायां सुनिश्चिते मल्लिकयार्जुनस्य।
कृतः प्रभाते नवचीनवस्त्रदानं विना पश्यमहूर्तविघ्नः।। -समयमातृका 6/16

8 नर्ममाला 2/45

अनेक गृहस्थी की भी वस्तुओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कड़छुल कालीन, बर्तन (भाण्ड), दौरी या डलिया (करंडिका) आदि की जानकारी प्राप्त होती है।[1] कायस्थ के साथ चलने वाले सामान में बाँस की पेटियाँ, करंड चारपायी, पीकदान ताम्रपात्र, जूते, बस्ते, दबात (मषीभाण्ड), दर्पण, पादुका पंचांग, लाल कम्बल, कलम बनाने के लिए चाकू, लाख मरी रक्षा छुरी, योगपट्ट एवं गङ्गा की मिट्टी इत्यादि होते थे।[2]

चन्दन के तिलक मल्लिका के आकार के होते थे।[3] शृङ्गार के समय सखियाँ वेश्या को घेरे रहती थीं। एक हार सजाती थी, दूसरी उसके कण्ठ में डालती थी, तीसरी वलययुगल संभालती थी, चौथी मेखला देखती थी और पाँचवी उसके शरीर में चन्दन रस लगाती थी।[4] शिकार की खोज में वे खूब सजधज कर राजपथ पर स्थित कोठों पर बैठती थी। उनके आभूषणों में मोती के गहने तथा झनझनाती हुई कांची होती थी। हाथों में पान के बीड़े, धम्मिल की माला तथा दर्पण उनके शृंगार के मुख्य अंग थे।[5] कस्तूरी का पत्रभंग उनके गालों पर बना रहता था, चन्दन का तिलक ललाट पर बालों से सटकर होता था। तथा

---

1 नर्ममाला 1/80

2 नर्ममाला 2/108-112

3 श्रीखण्डोज्जवलमल्लिकातिलकवानक्षामहेमाङ्गद।
शिछन्नश्लिष्टविनष्टनाशिकतयाप्रख्यातजातज्वरः।। -समयमातृका 6/28

4 कुरु तरलिके हारं कण्ठे गृहाण मनोहरे
वलययुगलं लीलेलोलां विलोकयमेखला।
भजमलयजं चित्रे रात्रिः प्रयाति कठोरता -
मिति चतुरताचार्यस्तासां बभूव सखीजनः।। -समयमातृका 6/37

5 समयमातृका 6/4-6

देह में केशर लगी रहती थी।[1] वेश्याओं द्वारा सोते हुए कामुकों की धोती वस्त्र आदि लूटे जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

क्षेमेन्द्रकालिक समाज की राजनीतिक स्थिति

इतिहास इस बात का साक्षी है कि मध्यकालीन भारत में शासन व्यवस्था की दुर्बलता और सबलता का श्रेय स्वयं राजा को था। यदि वह चरित्र का. दृढ़ हुआ तो शासन व्यवस्था सुचारू रूप से चलती थी। अगर वह विलासी और कमजोर हुआ तो अराजकता का चारों ओर बोलवाला हो जाता था तथा राजकर्मचारी और सामंत अपनी मनमानी करने लगते थे। जहाँ तक कश्मीर के इतिहास का सम्बन्ध है, चरित्रवान् और दृढ़प्रतिज्ञ शासक कम ही हुए। कश्मीर के अधिकतर शासक चारित्रिक कमजोरियों के शिकार थे, जिनके फलस्वरूप राजकर्मचारी मनमानी करने में जरा भी नहीं चूकते थे। अर्थ सबको भाता है, पर निरंकुश राजाओं के लिए तो वह जीवन की तरह आवश्यक था। इस अर्थ का प्रधान स्रोत था प्रजा से तरह तरह के कर वसूल करना और उसके वसूलने में बड़ी ही सख्ती से काम लेना। राजा की अर्थलोलुपता का प्रमाण उसके कर्मचारियों पर पड़ता था और वह प्रजा को लूटने में अनेक नये-नये तरीके अपनाते थे। जो कुछ मिलता था, उसमें से अधिक हिस्सा कर्मचारियों की जेब में चला जाता था। उनकी दृष्टि में ग्रामों को उजाड़कर निर्धन करने वाले, दण्ड प्रतिषेध करने वाले को मार डालने वाले, सब कुछ लूटने वाले नियोगी ही काम के आदमी थे।[3] उनकी तो कहावत ही बन गयी थी प्रीड़िता प्रस्नवन्त्येव प्रजा

---

1 समयमातृका 7/10

2 समयमातृका 9/67

3 भाभूतो कुङ्कुमाद्रौ रइनइसदृशौ (?)
.... मुसिमुसिलक्षणौ फेनपर्वौ (?)
.... मणिकनकधरौ दिव्यगन्धानुलिप्तौ

गुग्गुलबीजवत् ।[1] गुग्गुल के बीज के समान प्रजा दबाने पर ही तेल देती है। राजाओं की क्रूरता और लालच डामरों की बगावत तथा कर्मचारियों के उत्पीडन से त्रस्त प्रजा के शरंण का कोई उपाय न आभाषित होने पर क्षेमेन्द्र ने उसे असहाय बताया है।[2]

कविवर क्षेमेन्द्र ने 'शारदा' देश काश्मीर में उस समय जन्म लिया जब उस समय राजा अनन्त का शासन काल था। अनन्त के शासन के प्रारम्भिक दिनों में रुद्रपाल और दिद्दापाल नामक दो विस्थापित शाही राजकुमारों का बहुत प्रभाव था अनन्त में व्यक्तिगत योग्यता तथा शौर्य का अभाव था तथापि उसने त्रिभुवन नामक अपने ही सेनापति द्वारा संचालित विद्रोह को सफलतापूर्वक दबाया तथा 'दरद' शासक 'अवमंगल' के आक्रमण से काश्मीर की रक्षा की।[3] तदुपरान्त उसने अइपनी धर्मातमा रानी 'सूर्यमती' अथवा सुभटा के प्रभाव से अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया और दान आदि भी दिये, किन्तु अत्यधिक व्यय करने और पान खाने की उसकी खर्चीली आदत ने उसे विदेश व्यापारियों का ऋृणी बना दिया था।

उसे कर्ज देने वालों में परमार राजा भोज का एक व्यापारिक प्रतिनिधि भी था, जिसने कुछ दिनों के लिए राजा अनन्त का मुकुट ही बन्धक रूप में रख लिया था। अनन्त का यह दिवालियापन तभी समाप्त हो सका, जब 'सूर्यमती' ने शासन सूत्र पर कड़ाई से अपना हाथ रखा एवं हलधर नामक प्रधानमन्त्री ने

सङ्ग्रामेण प्रविष्टौ पलुप (?) ... नौ लभ्यतां राजलक्ष्मीः।। - नर्ममाला 2/42

1 सर्वक्लेशापहर्त्रे च चिद्रूपब्रह्मणे नमः।
पीडिताः प्रस्रवन्त्येव प्रजागुग्गुलबीजवत् । - नर्ममाला 2/44

2 खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रमविष्णुना।
पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे क्व गमिष्यसि।। - देशोपदेश 1/17

3 राजतरङ्गिणी, सप्तम् तरङ्ग, पृ0 154-167

आर्थिक और प्रशासनिक सुधार की अनेक योजनायें लागू कीं। इस अवसर पर लाभ उठाकर अनन्त के आसपास के पहाड़ी प्रदेशों की विजययोजनायें बनायीं।

चम्पा (छम्ब) के शासनकाल अथवा सलवान को गद्दी से उतारकर अपने नामांकित को उसको गद्दी देना तथा दर्वाभिसार त्रिगर्त्त और भर्तुल पर अपना अधिपत्य स्वीकृत कराना अनन्त की मुख्य सैनिक उपलब्धियाँ थी। लेकिन उरशा और बल्लारपुर पर उसके अभियान असफल रहे।[1] बिल्हण नामक काश्मीरी कवि (ये बाद में कल्याणी के चालुक्य दरबार में रहने लगे थे।) ने अपने ग्रन्थ 'विक्रमांकदेवचरित' में चम्पा और दर्वाभिसार पर उसके अधिपत्य का उल्लेख किया है,[2] जिसका आंशिक समर्थन कल्हण की राजतरंगिणी से भी होता है। राजा अनन्त ने अपनी रानी सूर्यमती के कहने से 1063 ई0 में अपने पुत्र कलश को राजगद्दी दे दी। लेकिन उसके क्रिया कलापों से असन्तुष्ट होकर उसने 1076 ई0 में पुनः वास्तविक शासन अपने कब्जे में ले लिया था। आगे पिता पुत्र में सौहार्द और सामंजस्य की औरभी कमी होती गयी और अनन्त ने ऊबकर 1081 ई0 में आतमहत्या कर ली। इसका कलश पर कुछ सुधारक प्रभाव पड़ा और धीरे-धीरे उसमें उत्तरदायित्व की भावना बढ़ी, क्रमशः वह प्रशसान को हर प्रकार से ठीक करने में लगगया। आस-पास के राज्यों ने उसकी अधिसत्ता स्वीकार कर ली। इसका प्रमाण यह है कि 10871088 ई0 में पहाड़ी क्षेत्रों के आठ राजे उसकी राजधानी में उपस्थित हुए।[3] इसके बाद कलश के पुत्र हर्ष की षडयन्त्री रुझान के कारण उसके अन्तिम दिन दुःखमय बीते और उससे विवश होकर अपने छोटे पुत्र उत्कर्ष को अपना उत्तराधिकारी घोषित करना पड़ा।[4] किन्तु

---

[1] राजतरङ्गिणी, सप्तम् तरङ्ग, पृ0 219

[2] बमजाई- 'द हिस्ट्री आफ कश्मीर', पृ0 139-140

[3] राजतरङ्गिणी, सप्तमतरङ्ग पृ0 587-90

[4] राजतरङ्गिणी, सप्तमतरङ्ग पृ0 703-04

वह उप पद को सँभाल न सका और एक विद्रोह के फलस्वरूप केवल बयालीस दिनों के शासन के पश्चात् हर्ष द्वारा अपदस्थ कर कारागार में डाल दिया गया। जहाँ उसने आत्महत्या कर ली।[1]

राजगद्दी के लिए राजाओं के इस प्रकार के पारिवारिक कलह के कारण यह स्वाभाविक है कि शासन कमजोर था तथा राजा अनन्त के राज्य काल में काश्मीर आन्तरिक विद्रोह से आक्रान्त था। कलश के राज्य में कुचक्र रक्तपात और यन्त्रणाओं का बोल बाला रहा। कबायली प्रायः काश्मीर पर आक्रमण किया करते थे। कल्हण ने इस काल की निरंकुशता का चित्रण किया है, जो सोमदेव के वृत्तान्त में प्राणघातियों, अफीमचियों, गणिकाओं और दण्डदण्डों जैसे निम्नकोटि के लोगों के चित्रण द्वारा भी प्रतिविम्बित होती है। राजा अनन्त व कलश आदि राजाओं के क्षेमेन्द्र और इनके पूर्वज आमात्य पद पर प्रतिष्ठित थे। कायस्थ वर्ग ही सम्पूर्ण प्रशासनिक पदों पर नियुक्त था। इस वर्ग ने न्यायाधीश अधिकारी व दिविर (क्लर्क) इत्यादि पदों पर रहकर कमजोर शासकों को पाकर राज्य की राजनीतिक स्थिति को कमजोर कर दिया था।

तात्कालिक शासन-व्यवस्था में कायस्थ जाति के अधिक कर्मचारी होते थे। परिणामस्वरूप कायस्थ ही कर्मचारियों के द्योतक के रूप में हो गये, इनमें नियोगी, दिविर, गणक, परिपालक, लेखोपाध्याय व गंजदिविर गृहकृत्य इत्यादि सभी वर्ग के कर्मचारी आ जाते हैं। कायस्थ की महत्त्वाकांक्षा गृहकृत्याधिपति बनने की होती थी। गृहकृत्य का पद सम्भवतः बहुत ही महत्त्वपूर्ण था और उसके अधीन सेना नागरिक तथा धर्मार्थ विभाग आदि होते थे। उसके अधीन सात नियोगी और आठ अर्दली (भट्टमुरूप) होते थे।[2] गृहकृत्य धार्मिकता का

---

1 राजतरङ्गिणी, सप्तमतरङ्ग पृ० 742-854 (सम्पूर्ण विवरण)

2 दैत्यावताराः सप्तैते तन्महात्म्यान् नियोगिनः।
लुण्ठ्या वध्याश्च पूज्या ये सर्व इत्यवयन् मदात् - नर्ममाला 1/35

ढोंग रचकर देवमन्दिर में स्रोत पाठ करता था, परन्तु उसका ध्यान लूट-पाट में ही रहता था।[1] राजा का घर खर्च जिसमें मन्दिरों, ब्राह्मणों, गरीबों को दान, जानवरों को चारा एवं राजकर्मचारियों का वेतन इत्यादि मदें उसके अधिकार में होती थीं। गृहकृत्य से सम्बन्धित निम्नलिखित कर्मचारी होते थे

नियोगी

नियोगी शब्द का प्रयोग अधीक्षक के अर्थ में किया गया है। गृहकृत्य के अधीन सात नियोगी होते थे।[2] गृहकृत्य की सभा में सभी उपस्थित होते थे।[3] शरद् काल में वसूली के समय उन्हें अधिक धन की प्राप्ति होती थी।[4]

पिशुन

ये चाक्रिक पुंश्चलक गृहकृत्य के अधीन भेदिये का कार्य करते थे। इनका कार्य मन्दिरों इत्यादि में एकत्रित धनराशि की सूचना गृहकृत्य को देना था। एक जगह उसके द्वारा विजयेश्वर वाराह और मार्तण्ड के मन्दिरों में एकत्रित सम्पत्ति का विवरण बताया गया है और परिचालक द्वारा उसके हारण की युक्ति बतायी गयी है।[5]

---

[1] सुगिरा चित्तहारिण्या पश्यन्त्या दृश्यमानया।
ह्यः कियन्तो मया दत्ताः प्रायस्था विजयेश्वरे।। - नर्ममाला 1/39

[2] नर्ममाला 1/36

[3] नर्ममाला 1/45

[4] समयमातृका 1/49

[5] क. पिशुनेभ्यो नमस्तेभ्यो यत्प्रसादान् नियोगिनः।
दूरस्थाऽपि जायन्ते सहस्रश्रोत्रचक्षुषः।

ख. विजयेश्वर वाराहमार्तण्डादिषु विधते।
त्वद्भाग्योपचयाद् राशिरपोष्यपरिपूरकः।। -नर्ममाला 1/51, 54

परिपालक

यह अधिकारी गृहकृत्य का सहायक होता था। इसका चुनाव सम्भवतः उसकी निष्ठुरता के परीक्षण के बाद होता था। वह अपवादों से न डरने वाला पातकों से निःशंक तथा अपनी बुद्धि के बल पर प्रसिद्ध होता था।[1] ब्राह्मण हत्या एवं गो गत्या उसके लिए कुछभी नहीं थी।[2]

परिपालक बनने पर वह असंख्य प्यादों के साथ अर्धबेला के लिए निकला। उसकी आज्ञा से मन्दिर लूट लिये गये तथा सिपाहियों ने घर के दरवाजे तोड़कर बरतन भांडे लेकर स्त्री एवं बच्चों को रोते बिलखते हुए छोड़ दिया।[3]

लेखकोपाध्याय

यह अधिकारी परिपालक का प्रधान लेखक होता था और स्वामी हित में सदैव तत्पर रहता था। उसके पास गोपनीय कागज पत्र रहते थे परिपालकों को जो भी सामान आवश्यक होता था उसके लिए वह आदेश-पत्र जारी करता था। लेख पत्रों को पढ़ते हुए वह विलक्षण प्रकार से मुँह बनाता था। वह हिसाब-किताब लिखने में पटु होता था।[4]

---

1 अभीरुरपवादेषु निःशङ्कः पातकेषु च।
तत्र तीक्ष्णो भृशं शश्वत क्रियतां परिपालकः।। - नर्ममाला 1/55

2 - नर्ममाला 1/57

3 सहसा हृतवस्त्राणां गृहिणीनां समाययौ।
सन्त्रस्तबालकानां च करुणो रोदनध्वनिः।। - नर्ममाला 1/70

4 यथाययौ चिरावाप्तबहुहर्षस्खलद्गतिः।
कृशः शनैश्चराकारो धूसरः क्षुत्क्षतोदरः।। - नर्ममाला 1/71

गंजदिविर

यह अधिकारी परिपालक के नीचे अर्थ विभाग का अध्यक्ष होता था। वह परिपालक के समक्ष आय व्यय सम्बन्धी छमाही चिट्ठा (षट्मासिक) विवरण प्रस्तुत करता था।[1] क्षेमेन्द्र ने इसे बहुत ही प्रबल बताया है। उसे इस बात का गर्व था कि जिन अधिकारियों ने उसका विरोध किया, उन्हें भाग जाना पड़ा। उसने परिपालन को सलाह दी कि किस तरह मन्दिरों की सम्पत्ति हड़प ली जाय क्योंकि पार्षद उसे खाये जा रहे थे उसने यह भी सलाह दी कि मन्दिर में जमा धन की खरीद बेच से भी परिपालक रकम पैदा कर सकता था।[2]

मार्गपति या व्यापारी

यह अधिकारी विषय या परगने का अधिपति होता था। वह ग्रामों की देख भाल, उनके हिसाब-किताब का निरीक्षण तथा सड़कों की देखभाल करता था। उसे दीवानी और फौजदारी मुकद्मों को सुनने का भी अधिकार था। नर्ममाला के अनुसार वह पहले एक बड़े ही गंदे घर में रहता था, जिसकी हौदी टूटी हुई थी और दरवाजे लड़खडाते थे। वह फटा कम्बल सिर पर बाँधता था, पुराने जूते पहनता था, देवालय में स्तोत्र पाठ पढ़ता था, ब्राह्मणों को सिर नवाता था तथा कार्य मिलते ही उसका घर बरतन-भांडों से भर जाता था। ग्रामों में वह लूट लो, बाँध दो, मार डालो, घर उजाड़ दो, यही कहता था। सदैव बेगार मजदूर उसकी सेवा में लगे रहते थे। अपने मालिक की रियायती आज्ञाओं का भी पालन नहीं करता था।[3]

---

1 स प्राप्य पददौ दीर्घां शरत्षण्मास कल्पनाम् ।
यस्या मध्येऽस्ति लिखितं सार्धं लक्षचतुष्टयेम् ।। -समयमातृका 1/86

2 नर्ममाला 1/87-96

3 नर्ममाला 1/122

ग्रामदिविर

इसका काम आधुनिक पटवारी अथवा लेखपाल जैसा था। वह जाली कार्य करने में निपुण था। अतः उसका नाम जालफरेब था। वह शराब पीता था तथा देव, ब्राहमणों के नित्यनैमित्तिक का हरण करते हुए भी शिव स्तोत्र गाता था। रिश्वत लेने में वह सर्वाधिक निपुण था।[1]

ख्वाशपति अथवा तृणरक्षक

यह नियोगी का सहायक होता था। नियोगी के नाम एक पत्र से उसकी कारतूतों का पता चलता है भेड़ों के बहाने दस गायें पकड़ ली गयीं जिसमें पाँच मर गयी और शेष खलियान में हैं। उन्हें छुड़ाने वालों को जल्दी करने में तीन दिन लग जायेंगें। वे नहीं आये तो आपका लाभ है, क्योंकि उन पर दण्ड लगेगा। घी के कुप्पे के सम्बन्ध में जो ब्राहमण जेल में बन्द था वह चल बसा। उसकी स्त्री को बाँधकर मैंने उसके घर पर मुहर लगा दी है, इत्यादि ।[2]

आस्थानदिविर

उसके हाथों में सब कुछ होता था। उसके कान पर चढ़ी कलम और हाथ में भुर्जपत्र का उल्लेख है।[3] वह नगराचार्य कहा गया है। शराब और वेश्या उसके व्यसन थे, परन्तु दिन में वह नहा-धोकर, जप व ध्यान से अपनी पवित्रता प्रकट करता हुआ कार्यालय (आस्थान मण्डप) जाता था।

अधिकरणभट्ट या सात्रिक

इन्हें आस्थान दिविर या पेशकार का साथी कहा गया है। ये सोंटी बन्धन के भय से लोगों को अदालत में खीच कर लाते थे। वे खूब रिश्वत लेते थे तथा

---

1 नर्ममाला 1/128-140

2 नर्ममाला 2/98-99

3 नर्ममाला 2/120

हारने वालों को जिता देते थे और जीतने वालों को हरा देते थे। सांठ-गांठ ही उनका धर्म-कर्म था। जालसाजी से वे बाज नहीं आते थे।[1]

नगराधिप या नगराधिकृत

इस अधिकारी के कार्य आज के शहर कोतवाल सदृश होते थे। चोरी करने के अभियोगी इनके समक्ष प्रस्तुत किये जाते थे।[2] नगर में वेश्याओं को लेकर जो झगड़े व मारपीट होते थे उसकी वह जाँच करता था।[3] वह बराबर नागरिकों के चरित्र-स्खलन पर निगाह रखता था। समय-समय पर उसे सैनिक कर्त्तव्य भी पालन करने पड़ते थे।

सस्यपाल

इस अधिकारी के कर्तव्यों के बारे में ठीक-ठीक पता नहीं चलता, परन्तु जैसा कि सापद वह फसलों की निगरानी करता था।[4]

प्रासादपाल

यह देव मन्दिर का कोई अधिकरी था जिसका दायित्व मन्दिर का प्रबन्ध करना होता था। ऐसे ही एक प्रासादपाल को मन्दिर के गर्भगृह में प्रवेश कर लूट किये जाने का उल्लेख है।[5] यह अधिकरण भट्ट का पहले ग्राम गणेश मन्दिर के प्रासादपाल होने का भी उल्लेख है।[6]

---

1 नर्ममाला 2/133-145

2 समयमातृका 1/16

3 समयमातृका 8/122-123

4 नर्ममाला 2/142

5 ततः प्रासादपालेन नन्दिसोमेन सानिशि।
गौरीगर्भगृहं रात्रौ रागान्धेन प्रवेशिता।। - समयमातृका 2/19

6 गङ्गायमुनयोर्बिल्ववृषभं कूर्णकुम्भयोः।

दूत

क्षेमेन्द्र के काव्यों में दूत शब्द का प्रयोग हरकारे के अर्थ में हुआ है। अधिकरण भट्ट एक समय सांधिविग्रहिक कायस्थ की चक्रिका (कार्यकारिणी) का एक साधारण सा दूत था जो द्रंग देश में अनेक बार आनेजाने से भट्ट बन बैठा।[1] उसकी बँधी कमर, फटा कंबल और धूल से सने पैर उसके साधारण पद के द्योतक थे।[2] दूत को हरकारे के अर्थ में धावक भी कहते थे।[3] कश्मीर के पर्वतीय प्रदेश में रक्षा अट्टालकों के सैनिक बचाव के लिए दंगाधियों की नियुक्ति होती थी। घाटी में इनका सम्बन्ध स्थापित करने के लिए धावकों की बड़ी आवश्यकता होती थी।

बंधनपाल

यह पद आधुनिक जेलर के समान था। चोरी का माल लेकर छिपाने पर सिपाहियों ने कङ्काली को बाँधकर कारागृह में बन्द कर दिया, परन्तु वहाँ उसने बन्धनपाल से मित्रता कर ली और एक दिन जब वह नशे में बेहोश था, उसकी जीभ काटकर तथा अपनी बेड़ियाँ हटाकर वह भाग खड़ी हुई।[4] अदालती कागज पत्र के सम्बन्ध में भी कई शब्द आयें हैं। धनधारणपत्रिका[5] से तात्पर्य भरण पोषण की रकम के विषय का इकरारनामा था। उज्जासपत्रिका[6] में लगता है दी

पञ्चचन्द्रन ... ली पट्टबन्धं भविष्यति।। - नर्ममाला 2/43

1 नर्ममाला 2/143

2 नर्ममाला 2/92-93

3 समयमातृका 7/40

4 समयमातृका 2/48-51

5 समयमातृका 8/95

6 समयमातृका 8/96

जाने वाली रकम और वस्तुओं की पूरी फिहरिस्त वसूल करने वाले के नाम के सहित होती थी।

अश्वशालादिविर

यह अधिकारी घुड़साला का प्रबन्ध करता था, अत्यधिक कागज पत्र लिखकर दिन भर लोगों का आर्थिक शोषण करता था तथा रातभर खूब सोकर सबेरे नहाने के बहाने मदिरा की दाह मिटाता था।[1]

शौल्लिक

ये शुल्क आदि से सम्बन्धित अधिकारी थे। चुंगीघरों में ये चुंगी अधिकारी के रूप में कार्य करते थे। इनका भी वेश्या द्वारा मोहित होना दिखाया गया है।[2]

न्यायालय

'समयमातृका' में एक स्थल पर तत्कालीन दीवानी अदालत का चित्र खींचा गया है। कङ्काली ने अपने पति अश्वशालादिविर का घर बेचना चाहा, परन्तु उसके पुत्रों द्वारा आपत्ति उठाने पर वह मठिमट्ठों (वकीलों) से उपसेवित अधिकरण में पहुँची। वहाँ रिश्वतखोर भट्टों की साजिसों से उसे मनचाही सम्पत्ति मिल गयी।[3]

डामर

कश्मीर के राजनैतिक इतिहास में डामरों जिन्हें 'सामन्त' कहा जाता था, का विशेष स्थान था। जब भी राजा की शक्ति क्षीण पड़ जाती थी, डामर बगावत कर बैठते थे और उन्हें दबाने के लिए काफी शक्ति लगानी पड़ती थी।

---

1 समयमातृका 2/37-39

2 समयमातृका 2/102

3 समयमातृका 2/41-42

ललितादित्य मुक्तापीड की सलाह थी कि प्रजा के पास अधिक धन और शक्ति होने से उनके भयंकर डामर बनने की संभावना थी। उदाहरणार्थ कङ्काली को डामर समरसिंह, जो प्रतापपुर का निवासी था, की रखैल बना दिया गया है।[1] उसका माल खा-पीकर उसने अपने प्रेमी को बन्धुओं से लड़ने को उकसाया और उसमें मारा गया। फिर वह उसी के भाई की रखैल बन गयी और जब राजाज्ञा से वह मारा गया तो वह उसका माल लेकर चंपत (गायब) हो गई।[2].

वैद्य

प्राचीन भारत में वैद्यों का व्यवसाय काफी ईमानदारी एवं विद्वता से पूर्ण था, परन्तु क्षेमेन्द्र कालीन (मध्यकालीन) भारत से जैसे संस्कृति के अनेक अंग क्षीण हुए, उसी तरह वैद्यों की भी दुर्गति हुई। वैद्यकशास्त्र के मध्यकालीन इतिहास में अनेक वैद्यों के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं। परन्तु साधारण वैद्य अपनी वैज्ञानिक दृष्टि खो चुके थे। वे अनुचित नुस्खों और तान्त्रिक प्रयोगों तथा रोगियों से पैसे लूटने से बाज नहीं आते थे। कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य 'कलाविलास' में तो वैद्यों को धूर्तो की श्रेणी में रखकर हंसी उड़ाई है। वे भारी लालची होते हैं। नाना औषधियों के परिवर्तन से और अपनी विद्या आजमाने के लिए हजारों रोगियों को मारकर फिर सिद्ध बनते थे।[3] क्षेमेन्द्र ने 'समयमातृका' में कलावती नाम की वेश्या अपनी माता को मारने का दोष एक वैद्य को लगाती है। उसने उसे रसवती नामक औषधि दी जिसे उसने लालच से सब को खा लिया। उसे समस्त संसार पीला दिखाई देने लगा और पागल होकर उसकी मृत्यु हो गयी।[4]

---

[1] समयमातृका 2/21

[2] समयमातृका 2/27

[3] कलाविलास 9/2-64

[4] समयमातृका 1/28-31

इस प्रकार उपर्युक्त कर्मचारियों व अधिकारियों के अनाधिकारपूर्ण, अत्याचारपूर्ण एवं भ्रष्ट तरीकों के विवरण से स्पष्ट है कि तात्कालिक प्रजा संत्रस्त थी। वैसे शासन तन्त्र के ढाँचे का निर्माण आधुनिक तरीके से हुआ, किन्तु उसका सही संचालन व क्रियान्वयन न होने के कारण प्रजा अधिकारियों के शोषण का शिकार होती थी।

क्षेमेन्द्रकालिक धार्मिक स्थिति

क्षेमेन्द्र कालिक धार्मिक क्रियापक्ष का अध्ययन करने पर वर्ग विशेष द्वारा दम्भपूर्ण क्रिया-कलापों, अत्याचारों, तीर्थयात्राओं, छुआ-छूत और अनेक पाखण्डों को किये जाने से भारतीय संस्कृति का स्वरूप ही बदल गया था। धर्म में पाखण्ड, अन्धविश्वास तथा तन्त्र-मन्त्र ने अपना विशेष स्थान बना लिया था। शैव, वैष्णव, बौद्ध व जैन सभी धर्म इससे प्रभावित थे। इन धर्मों का तत्त्वचिन्तन पक्ष प्रबल होते हुए क्रिया पक्ष बहुत कमजोर और घृणित बन चुका था। अन्धविश्वास और धर्म के नाम पर कुत्सित यौनाचार किसी विशेष वर्ग तक ही सीमित नहीं था अपितु सारे समाज का एक अंग बन गया था। मध्य काल में क्षेमेन्द्र ही एक ऐसे कवि थे जिन्होंने इन धार्मिक अत्याचारों और लोकसम्मत अन्धविश्वासों का खुलकर विरोध किया और लोगों को उनसे बचने का परामर्श भी दिया।

तत्कालीन समाज में अन्धविश्वास, वशीकरण और मोहन-मन्त्रों का भी स्थान था। विश्वास था कि बाल पर वशीकर चूर्ण फैकने से स्त्रियाँ वश में हो जाती थी।[1] वेश्याओं की कलाओं में वशीकरण औषधि का प्रयोग भी है।[2]

---

[1] गूढं वशीकरणचूर्णमुचा कचेषु।
किं केनचित्र कुहकेन वशीकृतासि।। - समयमातृका 1/19

[2] कलाविलास 4/10

वशीकरण का जंतर बाँटने वाले खास गुरु होते थे।[1] यों तो कविवर क्षेमेन्द्र ने सभी धर्मों के बाह्याचारों पर आक्षेप किया है, परन्तु तात्कालिक कौलाचार पर उनका विशेष रोष था। उन्होंने देशोपदेश के कौलाचार्य की हँसी उडाई है। कायस्थ द्वारा यज्ञ के लिए आहूत कौलाचार्य के स्वरूप वर्णन से भी क्षेमेन्द्र की कौलधर्म पर अनास्था का पता चलता है। तात्कालिक गुरु ठग लालची और परस्त्रीगामी था। उनके आधेसिर पर सिंदूर पुता था और बाकी में बिन्दु और उपविन्दुओं का तिलक हाथ में फूल का गुच्छा था। उसकी जूड़ी हल्की और कानों में केसर पुती थी। उसकी ठुड्डी बडी थी। आँखें शीशे की तरह थी और बोली बोलती थी। वह शराब का घडा क्षण भर में समाप्त कर सकता था। मांस और मदिरा की गंध से वह गंदा बना रहता था।[2] यज्ञ के समय शिष्यों ने मंडल पूर दिया और अनेक ठगों से धिरे हुए गुरु ने यज्ञ आरम्भ कर दिया।[3] नियोगी की बाल विधवा भगिनी याग परिचर्या में लग गयी।[4] दीक्षा के समय, भट्ट, तापस, वेश्या, शल्यहर्ता तथा एक वृद्ध बनियां अपने-अपने काम से गुरु के पास आते थे।[5] रात्रि में गुरु के साथ शिष्य तथा शिष्यों के साथ गुरु भोजन करके शराब पीते थे तथा यज्ञार्थीप्रसाद लेते थे, बाद में भैरवी चक्र का समा बंध गया और मतबाले स्त्री पुरुष नाचने गाने और रति-क्रीडा में संलग्न हो जाते थे।[6] सब कुछ लूट कर यज्ञ करने वाले कायस्थ, बेवकूफ पति को छुआ छूत में विश्वास करने वाली दीक्षिता पत्नी, जातपांत में अविश्वासी मांस भोगी और शराबी

---

1 कलाविलास 9/14

2 नर्ममाला 2/100-113

3 नर्ममाला 2/10-20

4 नर्ममाला 2/21-45

5 नर्ममाला 2/46

6 नर्ममाला 2/76-90

ब्राह्मण लुटेरा गंदा बनियाँ[1] मूर्ख कवि[2] जुआड़ी[3] कोरे भगत[4] यज्ञ के माल पर आनन्द लेने वाले शुखामदी चेले[5] ठग वैद्य[6] व्याकरण के ज्ञान से खफा पंडित,[7] जटाधारी पर वेश्यागामी शैव साधु तथा गुरु को आत्मसमर्पण करने वाली विधवाएं होती थीं।[8] क्षेमेन्द्र ने कश्मीर में प्रचलित देवमन्दिरों की व्यवस्था और समयसमय पर उनकी लूट का उल्लेख नर्ममाला में किया है। कुछ अधिकारी तो देवताओं को दानापानी का मुहताज बना देते थे।[9] वे गायों का भोजन, नमक तक काटने में नहीं चूकते थे।[10] देवों और नागों की नित्यनैमित्तिक वृत्तियों को रोक देते थे।[11] मंदिर लूटने के लिए हर समय चक्र रचते रहते थे।[12]

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य समयमातृका में तात्कालिक ठगों एवं अन्धविश्वासों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। कङ्का ली एक साहस वेश्या थी। वह धर्म का ढोंग कर लोगों को ठगने का कार्य करती थी। कन्या रूप में वह पुरजनों द्वारा पर्वों पर पूजी जाती थी।[13] इससे स्पष्ट होता है कि

---

1 देशोपदेश 8/1-16

2 देशोपदेश 8/17

3 देशोपदेश 8/23-25

4 देशोपदेश 8/26

5 देशोपदेश 8/27

6 देशोपदेश 8/88

7 देशोपदेश 8/39-42

8 देशोपदेश 8/39-58

9 नर्ममाला 1/13-14

10 नर्ममाला 1/26

11 नर्ममाला 1/28

12 नर्ममाला 1/47

13 सा वर्धमाना सुमुखी पौरैः पर्वसु पूजिता।

लोगों की दृष्टि में कन्याओं को सम्मान प्राप्त था। 'भैएवसोम' नायक किसी योगी के साथ रहती हुई, शरीर में भस्म एवं गले में सफेद माला से युक्त होकर वह योगिनी बन गयी।[1] बौद्ध धर्म भी उससे नहीं बचा। हारित विहार में वह 'व्रजघण्टा' नामक भिक्षुणी बन गयी। वह वेश्याओं को वशीकरण, व्यवसायी को धनवृद्धि एवं मूर्खों को मंत्रवाद की शिक्षा देती थी।[2] वर्णा नाम से वह षडाष्टक एवं नक्षत्रों का जूठा विचार करके विवाह सम्बन्ध मिलाने का कार्य करने लगी। लोगों में उसने अपने को 'गणविज्ञानिका' होने का ढोंग रचा।[3] कङ्काली देवता वेश के रूप में प्रस्तुत होती थी।[4]

कुम्भा नाम से देवी के रूप में वह नंगी एवं पगली के रूप में कुत्तों के साथ चलती थी।[5] उसने नशे में बेहोश एक तपस्वी के सात घण्टे चुरालिये।[6] वह अपने को कहीं योग साधना में बताती तो कहीं एक मास उपवास रखने की बात करती थी। वह ब्रह्मवादिनी कहीं तीर्थयात्री कहकर सब की पूजनीय बन गयी। चन्द्र एवं सूर्यग्रहण की गति बताकर उसने राजमहल में पैसा कमाया।[7] वह केदार नाथ में तर्पण, गया में श्राद्ध एवं गंगा में स्नान आदि की बात करके

तद्गृहेष्वकरोच्चौरी पूजाभाजनसंक्षयम् ।। - समयमातृका 2/5

1 - समयमातृका 2/59

2 -समयमातृका 2/62-64

3 -समयमातृका 2/83

4 -समयमातृका 2/84

5 तत उन्मत्तिका भूत्वा सा नग्नालिङ्गिता श्वमिः।
कुम्भादेवीति विख्याता प्राप पूजापरम्पराम् ।। -समयमातृका 2/86

6 कटिघण्टाभिधानस्य साक्षीबस्य तपस्विनः।
रात्रौ तत्र प्रसुप्तस्य घण्टाः सप्त समाददे।। -समयमातृका 2/89

7 -समयमातृका 2/94

और अपना पुण्यफल बन्धक रखकर लोगों से धन कमाती थी।[1] वह विल सिद्धि (छिद्र में प्रवेश करने की अलौकिक शक्ति) में श्रद्धा रखने वालों के आभूषण एवं वस्त्रों को लेकर वह लालची लोगों को कूपों में गिरा देती थी।[2] वह लोगों से कहती थी मैं हजार वर्ष की हूँ मैं धातुवाद जानती हूँ। मेरी वाणी सिद्ध है और त्रिपुररहस्य मेरी मुट्ठी में है इत्यादि।[3]

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'कलाविलास' में भी तात्कालिक धर्म के नाम पर ढ़ोंग रचकर ठगी करने वाले लोगों का उल्लेख प्राप्त होता है। गणक या ज्योतिषी राशिचक्र फैलाकर ग्रहचिन्ता की नकल करते हुए बहुत देर बाद प्रश्न का उत्तर देता है।[4] धातुवादी शतवेधी एवं सहस्रवेधी सिद्ध होने की बात कहकर लोगों को ठगता है।[5] तारक और शम्बर को साधने वाला, रमणियों में आशा लगाये हुए वह कामी बेल इत्यादि से होम करके अन्धा हो जाता है।[6] खेचरी मुद्रा सुख साध्य है, प्रयत्न से आकाश कुसुम भी हाथ में लग सकता है, मच्छरे की हड्डियों से सिद्धि प्राप्त हो सकती है, काले घोड़े के मल से बनी बत्ती के आश्रय से इन्द्र के घर देखे जा सकते हैं तथा मेंढ़क की चर्बी का लेप कर मनुष्य अप्सराओं का प्यारा बन सकता है इस प्रकार की अनर्थ की बातें कहकर धूर्त लोगों को ठगते थे।[7] काम तन्त्र के मूल रति का ज्ञान न होने पर भी

---

1 -समयमातृका 2/97

2 -समयमातृका 2/100

3 -समयमातृका 2/103

4 विन्यस्य राशिचक्रं ग्रहचिन्तां नाटयन् मुखविकारैः।
अनुवदति चिराद् गणको यत् किंचित् प्राश्निकेनोक्तम् ।। -कलाविलास 9/5

5 -कलाविलास 9/8

6 -कलाविलास 9/10

7 -कलाविलास 9/11-13

वशीकरण वाले गुरु स्त्रियों को रक्षा तन्त्र बाँटते है।[1] मन्त्ररहित साधारण धूप से विभिन्न मुद्रायें बनाता धूर्त लोगों से जीविकोपार्जन करता था।[2]

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'देशोपदेश' में भी जन विश्वास के अनेकानेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। स्त्रियाँ एवं वेश्याऐं वश्ययोग में विश्वास करती थीं।[3] वेश्याएँ बीमार होने पर भूत की शङ्का से गुरुओं की रक्षा माँगती थी।[4] मस्तक एवं कण्ठ में बहुत से जन्तर पहनती थीं।[5] विट रसायन, बिलज्ञान, असंगत योगशास्त्र और गन्धयुक्त कथा में पण्डित होते थे।[6] बीमार होने पर ग्रहों की स्थिति मानी जाती थी।[7] बालकङ्काली देवी और महिष का बलिदान चाहने वाली महाकाली[8] की लोग पूजा करते थे। कौलधर्मानुयायी जाति भेद से रहित होकर शराब एवं मछली का भोग लगाते थे।[9]

---

[1] -कलाविलास 9/14

[2] -कलाविलास 9/18

[3] प्रम्लाने यौवने शुक्लकेशरञ्जनतत्परा।
वश्ययोगार्थिनी याति वेश्या कस्य न शिष्यताम् ।। -देशोपदेश 3/31

[4] रक्तच्छाया पाण्डुमुखी प्रसवैः कृशतां गता।
सा गुरून् सूत्रकं रक्षां याचते भूतशङ्कया ।। -देशोपदेश 3/38

[5] मस्तके भुजयोः कण्ठे जतुरक्षाशतान्विता।
भूतवित्रासजननी सा भूतबलिमिच्छति।। -देशोपदेश 3/39

[6] रसायनैर्बिलज्ञानैर्योगशास्त्रैरसङ्गतैः।
गन्धयुक्तकथाभिश्च मुग्धान् भुङ्क्ते जरद्विटः।। -देशोपदेश 5/27

[7] अर्थार्थिनी देवपूजास्वप्नोपश्रुतितत्परा।
सदा गणकगेहं सा प्रष्टुं याति ग्रहस्थितिम् ।। -देशोपदेश 3/44

[8] कामिनः सप्रयत्नस्य बन्धकीभोजकारिणा।
न तृप्यति महाकाली महिषस्यापि कुट्टनी।। -देशोपदेश 4/21

[9] देशोपदेश 8/11-13

जुआड़ी श्वेतार्क गणपति का पूजन करके मछली आदि लेकर गुरु के पास जाता था।[1] कविवर क्षेमेन्द्र के नर्ममाला लघुकाव्य में बौद्ध श्रमणिका को वशीकरण मन्त्रों की ज्ञाता, जारों की दूती, पतिव्रता को बहकाने वाली एवं गंगा को भी तुच्छ मानने वाली कहा गया है।[2] ज्योतिषी धीवर से वर्षा का कारण पूछता था तथा पाण्डुरोग को मन्त्र से दूर करने की बात करता हुआ धूलिपटल पर राशिचक्र बनाता था।[3] कौलाचार्य मांस एवं मदिरा की गन्ध से गन्दा बना रहता था।[4] कापस्थ द्वारा यज्ञ के लिए बुलाये गये कौलाचार्य आते ही यज्ञ के सामान का चिट्ठा लिख देता था।

क्षेमेन्द्रकालिक समय में लोगों का विश्वास यक्षों पर था। यक्ष आने-जाने वालों से घिरे जल के स्थान के पास नहीं रहते थे। गृह में प्रवेश करने पर पुट यक्ष पुनः वापस आ जाता था। यह भी विश्वास था कि मगन होकर स्नान करती स्त्रियों को यक्ष पकड़ लेता था।[5] यक्षों को नकली धूप देने से दरिद्रता एवं राजभङ्ग की आशंका रहती थी।[6] उस समय और आज भी यह विश्वास है. कि मन्त्र से सेना स्तम्भन किया जा सकता था।[7] तात्कालिक विश्वासों में वशीकरण एवं संमोहन मन्त्रों का भी स्थान था। ऐसा विश्वास था कि बाल पर वशीकरण

---

1. श्वेतार्काकृतिगणपतिमन्त्रार्थी कितवचक्रविजयाय।
   कितवः शफरीमण्डक सिन्दूरकरो गुरुं याति। - दशोपदेश 8/23
2. गृहं नियोगिकान्तायाः प्रविशत्यतिनिर्भरम् ।
   एषा श्रमणिका नित्यं कुट्टनी वज्रयोगिनी।। - नर्ममाला 2/29
3. सा समीहितमस्माकचिरेण विधास्यति।
   इत्युक्त्वा ते ययुधूर्ता वृद्धश्रवणिकागृहम् ।। -नर्ममाला 2/32
4. नर्ममाला 2/90-91
5. समयमातृका 5/49
6. नर्ममाला 2/91
7. समयमातृका 1/27

चूर्ण फैकने से स्त्रियाँ वश में हो जाती थीं।[1] वेंश्याओं की कलाओं में वशीकरण औषधियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[2] उस काल में मन्दिरों, तीर्थों और ब्राह्मणों की महत्ता थी। देव मन्दिर आराधना मात्र के स्थल ही न रहकर कंला संस्कृति एवं कुछ सामाजिक संस्कारों के क्षेत्र बन गये थे। अधिकतर देव मन्दिरों के पास देवता एवं मन्दिर से सम्बन्धित धन के अतिरिक्त भी सम्पत्ति होती थी। जिसे समय-समय पर शासक एवं उनके अधिकारी उसे हस्तगत करने में चूकते न थे। कुछ अधिकारी देवताओं के भोग लगाने के हिस्से को भी हड़प लेते थे।[3] गृह कृत्य की आज्ञा से परिपालक बहुत से मन्दिरों पर अधिकार कर लेता था।[4] वह मन्दिरों के धनिकों को भगाकर लोगों की सम्पत्ति को लूट लेता था।[5]

परिणामतः तात्कालिक धर्म, मन्दिर, पुजारी, मन्त्र, तन्त्र, देवता व अन्य धर्म सम्बन्धी तत्वों का विकृत रूप समाज में अधिकता से प्रचलित आभासित होता है। समाज में नैतिक आचरण एवं धर्म के वास्तविक स्वरूप में श्रद्धा रखने वाले लोग भी थे, किन्तु उनकी संख्या नगण्य नहीं रही होगी। लोगों का यज्ञ, देवता, मन्दिर, दान, परोपकार, व्रत उपवास, तीर्थ, तन्त्र, मन्त्र, स्तोत्र एवं श्राद्ध में अपार विश्वास था, किन्तु धन के लोभी धूर्त लोग इसी विश्वास की आड़ में लोगों का शोषण करने लगे, परिणाम स्वरूप धर्म का स्वरूप बिगड़ गया। सभी वैदिक एवं पौराणिक देवताओं के प्रति अटूट विश्वास था। क्षेमेन्द्र ने कहीं कहीं आठ[6] तथा कहीं दस[1] अवतारों का उल्लेख किया है। भगवान् शङ्कर की पूजा

---

1 समयमातृका 1/19

2 कलाविलास 4/10

3 नर्ममाला 1/13-14

4 स महान्तं समासाद्य दुःसहं दंसनं विटम् ।
लीलयैव वशीकृत्य लेभे देवगृहान् बहून् ।। -नर्ममाला 1/65

5 नर्ममाला 1/70

6 नर्ममाला 2/40

किये बिना तो किसी कार्य के आरम्भ न करने की बात कही गयी है।[2] तथा जीवनान्त में भगवान् विष्णु का स्मरण ही सन्तोष देने वाला बताया गया है।[3] गणेश जी की पूजा का भी उल्लेख मिलता है।[4] पाप कर्म से नैतिक आचरण वाला व्यक्ति डरता था, क्योंकि पाप कर्म का प्रतिफल दुःख ही माना गया है।[5] तात्कालिक समय में पूर्व जन्म में लोगों का पूर्ण विश्वास था।[6] जिसके कारण सत्पुरुष कुकृत्यों से बचने का प्रयास करता था। समाज में सत्पुरुषों द्वारा साधु संन्यासी सम्मानित थे।[7] स्वर्ग एवं नर्क आदि के प्रति भी लोगों की धारणा प्रबल थी।[8]

कविवर क्षेमेन्द्र के लघु एवं बृहद् काव्यों में रामायण महाभारत एवं अन्य पौराणिक ग्रन्थों के कथानकों में प्रयुक्त देवताओं एवं अन्य तत्सम्बन्धी पात्रों का भी उल्लेख मिलता है। इससे भी तात्कालिक महाकाव्यों एवं पौराणिक ग्रन्थों के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। परशुराम, सुग्रीव, जगदग्नि, भगवान् राम, कैलाश, रावण, बालि, वृत्रासुर, त्रिनेत्र, कालयवन, मुचुकुन्द, कृष्ण, भीम, कर्ण, अर्जुन, गाण्डीव, भगवान् विष्णु, दुःशासन, भीमसेन, जरासन्ध, बाणासुर, शिशुपाल, दुर्योधन, द्रोण एवं कृपाचार्य।[9] दिलीप, रघु,त्रिशंकु,

---

1 नर्ममाला 2/48

2 चारुचर्या, श्लोक संख्या, 4

3 चारुचर्या श्लोक संख्या, 99

4 समयमातृका 2/77

5 दर्पदलन 2/8

6 चतुर्वर्गसंग्रह 4/3

7 दर्पलदन 4/51

8 नर्ममाला 2/29, 118, 2/128

9 दर्पदलन 5/6-18

सूर्यवंश, बृहस्पति, तारा, बुध, कर्ण, पाण्डव श्रुतनिधि, प्रांशुवंश, मुक्तालता एवं तपोनिधि इत्यादि पौराणिक पात्रो के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[1]

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने उपदेशपरक चारुचर्या नामक शतक लघुकाव्य में सत्पुरुषों के लिए विभिन्न कर्मों का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार, सेवा, महेशार्चन, श्राद्ध, क्षमा, दया, सात्त्विक दान, धैर्यधारण एवं सत्कर्म आदि करणीय हैं तथा शिकार, चुगली, जुआ, विवाद, कटु शब्द का प्रयोग, नीच व्यक्ति से यांचना, रात्रि में विचरण, मद्यपान, ईर्ष्या, कलह वाराङ्गनावचन में विश्वास तथा स्वगुणानुवाद आदि कर्म निषिद्ध हैं।

दम्भ एवं धार्मिक प्रक्रिया का हमेशा से साथ रहा है। शुचि और आत्मशुद्धि के नाम पर जिन आधार विचारों का सृजन हुआ वे ही कालान्तर में ढोंग मात्र रह गये। ग्यारहवीं शदी में तो धार्मिक दम्भ जीवन का एक अंग बन गया था तथा धर्म के नायक पूजा-पाठ, स्पृश्यास्पृश्य दान-दक्षिणा, व्रतोपवास इत्यादि को ही धर्म मान बैठे तथा इनके बावजूद भी वे इसी को अर्थोपार्जन का माध्यम बनाकर लोगों का शोषण भी करने लगे। क्षेमेन्द्र ने ऐसे सभी दम्भिकों की कटु आलोचना की है। कश्मीर के इतिहास एवं नैतिक पतन की कहानी उनके सामने थी और वे यह भी जानते थे कि ये बुराइयाँ भारत की किसी भौगोलिक सीमा तक ही स्थित न रह कर सारे देश में फैलकर जनजीवन को कलुषित कर रही थी तथा उनके विरोध में जनहित था।

क्षेमेन्द्रकालिक आर्थिक दशा

तत्कालिक सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विवेचन के उपरान्त यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज आर्थिक रूप से सम्पन्न था। तात्कालिक महलों, ऊँची अट्टालिकाओं आदि का वर्णन देखकर तात्कालिक

---

1 दर्पदलन 1/4-8

रहनसहन सम्बन्धी सम्पन्नता का ज्ञान होता है। तत्कालीन आभूषणों के व्यापक प्रचलन, मुक्तामणि रत्नादि का व्यावहारिक प्रयोग, तथा वेश्याओं की प्रचुर सम्पन्नता आदि से पूर्ण स्पष्ट है कि लोगों की आर्थिक स्थिति सुदृढ थी। कृषि कार्य ही व्यापक रूप से लोगों को व्यस्त करने वाला कार्य था। शीतकाल में कृषक वर्षभर परिश्रम के उपरान्त पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त करने का अवसर प्राप्त करता था।[1] अन्न का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में होता था। परमार्थ निर्मित कूप उद्यान,[2] धर्मशाला आदि से भी धनवान् लोगों की आर्थिक स्थिति का पता चलता है। कृपण व्यवसायी द्वारा अन्नसंग्रह[3] का भी उल्लेख प्राप्त होता हैं सम्भवतः वह चोरबाजारी के हेतु किया जाता था। खेती अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि से पूर्णतः प्रभावित होती थी।[4]

तात्कालिक समय में शासकीय आय के स्रोत शुल्क एवं कर आदि थे। क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अध्ययन से समग्र शुल्क[5] का भी उल्लेख मिलता हैं पूजा के लिए बर्तन चाँदी व अन्य कीमती धातुओं के होते थे।[6] इससे भी तात्कालिक लोगों की धनसम्पन्नता प्रतीत होती है। तत्कालीन आर्थिक दौड़ में प्रत्येक व्यक्ति इतना अन्धा हो गया था कि वह धोखाकर एक दूसरे का शोषण करने से हिचकिचाते नहीं थे। इसी प्रकार एक धोखाधड़ी का उल्लेख प्राप्त होता है कि लोगों को धतूरा खिलाकर वेहोश कर उनकी सम्पत्ति हरण करने का

---

1 समयमातृका 1/49

2 समयमातृका 2/16

3 देशोपदेश 2/33

4 समयमातृका 2/75

5 शुल्कस्थानेषु सर्वेषु शौल्किकेभ्यः स्वभावतः।
मुहूर्तमोहनं पुष्पं सा दत्वा स्वेच्छया ययौ।। -समयमातृका 2/102

6 क्षिप्रोपदेशलुब्धेन कुलदासेन मन्त्रिणा।
सार्चिता प्रययौ हृत्वा पूजाराजतभाजनम्।। -समयमातृका 2/87

उल्लेख भी प्राप्त होता है।[1] कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य सेव्यसेवकोपदेश में स्वामी और सेवक दोनों का विवेचन किया है। स्वामी की क्रूरता एवं सेवक की शिथिलता से स्वामी परेशान व सेवक शोषण का शिकार होता था।[2] तात्कालिक समय में सामाजिक विषमता भी विद्यमान थी। नीच जाति के लोग मजदूरी कर अपना भरण पोषण करते थे। तात्कालिक समय में बेगारी प्रथा का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[3] तात्कालिक समय में कुछ व्यक्ति उच्छवृत्ति (अनाज के दानेबीन कर आजीविका चलाना) से पेट का भरण पोषण करते थे।[4] गरीब वर्ग के लोग धनवान् लोगों से ऋण लेता था तथा व्याज की ऊँची दरों से वह कभी मुक्त नहीं हो पाता था तथा बन्धक के रूप में भी हो जाता था। इस प्रकार ऋण सम्बन्धी उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।[5]

'कलाविलास' में नगर को रत्नों से जगमगाता हुआ बताया गया है।[6] कविवर क्षेमेन्द्र के अन्य काव्यों में भी प्रसंगतः वर्णित बहुमूल्य महल, मकान वस्त्रालंकरणों से तत्कालीन धन सम्पन्नता का पता चलता है। सोने जवाहरात आदि भेटे जाते थे।[7] अभिसारिकाओं का विघ्नस्वरूप घरों में जड़े स्फटिकों की

---

1 समयमातृका 2/90-91

2 सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 12

3 समयमातृका 2/97

4 शिलोञ्छवृत्तिना पूर्वं विप्रेण क्षेत्रचारिणा।
उपवासकृशेनाप्तं यवस्तोकं कलत्रिणा। -दर्पदलन 6/39

5 ऋणराशिर्लेखशतैर्भुक्तफलो निर्गुटः कुटुम्बिभटैः।
नीराजदण्डभीत्या प्रविशति वर्षेण राजकुलम् ।। -देशोपदेश 8/38

6 अस्ति विशालं कमलाललितपरिष्वङ्गमङ्गलायतनम् ।
श्रीपतिवक्षः स्थलमिव रत्नोज्जवलमुज्ज्वलं नगरम् ।। -कलाविलास 1/1

7 कलाविलास 1/11-12

प्रभा का वर्णन है।[1] तात्कालिक राजा लोगों द्वारा वेश्याओं की अतुल सम्पत्ति से हाथी, घोड़े एवं योद्धाओं से मजबूत बनाना बताया गया है।[2] धनीवर्ग के लोग अपने धन को लौह पत्रादि सम्भवतः सन्दूक (लोहे के बक्सा) आदि में रखते थे। चलते फिरते पैसों को भी वे पर्स आदि की भाँति बने पात्रों में लेकर चलते थे।[3] पर्याप्त धन सम्पत्ति वाले[4] एवं कम धन वाले[5] लोगों द्वारा धन प्राप्त करने का वेश्या द्वारा वर्णन हैं इससे भी आर्थिक असमानता प्रतीत होती है। निर्धन द्विज का उल्लेख प्राप्त होता है, जो अपने गुणों को मांसवत् बेचकर गिर जाता था।[6] समाज में निर्धन लोगों की भुखमरी का भी उल्लेख प्राप्त होता है। यह वर्ग कभी-कभी भूखा ही रह जाता था।[7] धन का समाज में विशेष महत्त्व था। हर वर्ग का व्यक्ति अर्थ प्राप्ति के लिए दूषित कर्मों को करने में भी तैयार रहता था। टका आदि का लेख मिलता है। कौड़ी का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[8] क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य समयमातृका में धनी पुत्र की सम्पूर्ण धन सम्पत्ति का अधिकार पत्र प्राप्त करना दिखाया गया है।

क्षेमेन्द्रकालिक भौगोलिक स्थिति

कविवर क्षेमेन्द्र के विस्तृत भौगोलिक ज्ञान का परिचय हमें उनके लघुकाव्य समयमातृका से प्राप्त होता है। काव्य की चरित्र-स्थली प्रवरपुर अथवा

---

1 कलाविलास 1/3
2 समयमातृका 1/18
3 समयमातृका 8/95, 5/89
4 समयमातृका 1/18
5 समयमातृका 1/18
6 समयमातृका 4/88
7 देशोपदेश 3/26
8 कलाविलास 2/7

अधुनिक श्रीनगर है। इसे प्रवरसेन ने बसाया था। इसके विलासपूर्ण जीवन का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] कङ्काली नाम की कुट्टनी के साहसिक जीवन वृत्त में कश्मीर तथा देश के और दूसरे भागों के नाम आये हैं। वह परिहासपुर में, जिसकी पहचान वितस्ता के बाएं किनारे पर स्थित परस्पोर उदर से की जाती है, रहने वाली एक भटियारिन थी।[2] जवान होने पर वह शंकरपुर[3] जिसकी पहिचान श्रीनगर बारामूला सड़क पर स्थित पटन नामक ग्राम से की जाती है, पहुँची। कुछ समय बाद वह प्रतापपुर[4] में, जिसका उल्लेख 'तापर' नामक गाँव के रूप में उल्लिखित है,[5] एक डामर (सामन्त) की रखैल (प्रेमिका) पत्नी बन गयी। वहाँ से वह विधवा के वेश में वह सुरेश्वरी पहुँची।[6] इसकी पहचान डल झील के किनारे स्थित 'इशबर' नामक ग्राम से, जहाँ आज भी सुरेश्वरी दुर्गा का मन्दिर है, वहीं शतधरा में जिसकी पहचान सुरेश्वर के नीचे एक चश्मे से की जाती है, वहाँ वह पितृतर्पण करने लगी। अपने साहसिक कृत्यों के बाद वह विजयेश्वर[7],

---

1 अस्ति स्वास्तिमतां विलासवसतिः संभोगभङ्गीभुवः।
केलिप्राङ्गणमङ्गनाकुलगुरोर्देवस्य शृङ्गारिणः।
कश्मीरेषु पुरं परं प्रवरतालब्धाभिद्याविश्रुतम्
सौभाग्याभरणं महीवरतनोः संकेतसद्म श्रियः।। -समयमातृका 1/4

2 परिहासपुरे पूर्वं पान्थावस्थपालिका।
बभूव भूमिका नाम .... ।। -समयमातृका 2/3

3 ततः सा यौवनवती रुचिराभरणाम्बरा।
उवास शंकरपुरे म्रह्लणेति कृटाभिधा।। -समयमातृका 2/13

4 समयमातृका 2/21

5 समयमातृका 2/32

6 सदा सुरेश्वरीं गत्वा शतधारातटे चिरम् ।
तिलवालुकदर्भाङ्का सा चक्रे पितृतर्पणम् ।। -समयमातृका 2/29

7 सा भग्ननिगडा प्राप्य रजन्यां विजयेश्वरम् ।
महामात्यसुतास्मीति जगदानुपमाभिधाम् ।। -समयमातृका 2/52

जिसकी पहचान वितस्ता पर स्थित विजब्रोर से की जाती है, पहुँची। इसके उपरानत भ्रमण करती हुई वह कृत्याश्रम नामक बौद्ध विहार[1] में पहुँची कृत्याश्रम की पहचान चीनी यात्री ऊकोङ् के कीचे से की जाती है कृत्याश्रम बारामूला से नीचे पाँच मील दूर वितस्ता के बायें किनारे पर कित्सहोम नामक स्थल है।[2] भ्रमण कर अवन्तिपुर पहुँची।[3] अवन्तिवर्मन् द्वारा स्थापित इस नगर की पहचान वुलर परगना में वितस्ता के दाहिने किनारे पर वांतिपोर से की जाती है।[4] वहाँ से भ्रमण करती हुई वह शूरपुर पहुँची।[5] शूरपुर की पहचान रमब्यार की घाटी में स्थित हुरपोर से की जाती है जिसकी स्थिति पीरपंजाल दुरहल और रूपरी के दर्रों की ओर जाता सड़क पर है, वहीं वह लवणसरणि नामक सड़क पर मेहनत मजदूरी करने लगी।[6] स्टाइन की राय में लवणसरणि से सायद लवणोत्सव का तात्पर्य है जो श्रीनगर से एक दिन की दूरी पर एक ऊँची सड़क पर स्थित है।[7] पीरपंजाल वाला रास्ता शूरपुर से आरम्भ होकर राजपुरी में क्रमशः, क्रमवर्त, हस्तिवंज, पञ्चालधारा, पुष्याण नाड और भैरवताल को जाता था। यही क्षेमेन्द्र की लवणसरणि है, क्योंकि प्राचीन काल में इसी रास्ते से होकर पंजाब और कश्मीर के बीच नमक का व्यापार चलता था, कंकाली की इस यात्रा में

---

1 सा कृत्याश्रमकं गत्वा विहारं हरितस्थितिः।
भिक्षुकी वज्रधण्टाख्या बभूव ध्याननिश्चला।। -समयमातृका 2/61

2 स्टाइनाः राजरङ्गिणी भाग 1/1/147

3 समयमातृका 2/76

4 समयमातृका 2/92

5 ततः सा भूरिधत्तूरमधुना नष्टचेतसाम् ।
पन्थानां सर्वमादाय निशि शूरपुरं ययौ -समयमातृका 2/90

6 एवं कृत्वा लवणसरणौ भारिकं भर्तृसंज्ञं ...। -समयमातृका 2/11

7 स्टाइनः राजतरंङ्गिणी भाग 11/329

पञ्चालधारा का उल्लेख है।[1] अपनी इस लंबी भाग-दौड़ में वह केदार, गया और काशी गयी अथवा नहीं गयी यह तो नहीं कहा जा सकता, पर लोगों से बहाना वह करती थी।[2] कम्बोज, तुरुष्क, चीन, त्रिगर्त, गौड, अंग, बंग इन सब स्थानों से उसके सम्बन्ध का उल्लेख प्राप्त होता है।[3] शतधरा नामक नदी का एवं क्षिप्रा नदी का भी उल्लेख मिलता है।[4] क्षेमेन्द्र के काव्य समयमातृका में अनेक पशुपक्षियों का भी प्रसंग उल्लेख किया गया है। उलूक, कौआ, [5] विल्ली के बच्चे, [6] कबूतर[7] एवं विल्ली का उल्लेख मिलता है। मण्डूक,[8] व्याघ्री,[9] भेड़े,[10] मगर,[11] कुत्ता[12], घोड़ा[13] . . . .

---

1 हेमन्ते वसनावगुण्ठितमुखी पञ्चालधारामठे ...। -समयमातृका 2/92

2 केदाराम्बुगयाश्राद्धगङ्गास्नानादिवादिनी।
तत्फलं बन्धमाधाय सार्थेभ्यः साग्रहीद्धनम् ।। -समयमातृका 2/97

3 पूजासञ्ज्ञा भजन्ते जयनुतिषु नतिं दिक्षु कम्बोजभोजाः।
सेवाशुष्कास्तुरुष्काः परिचरणरसे किं च चीनाः प्रलीनाः।।
उत्कण्ठार्तास्त्रिगर्ताः परिचरणविधौ पीडयन्त्येव गौडा
दम्भारम्भेण तस्या विदधति कुसुमोत्सङ्गतामङ्गवङ्गाः।। -समयमातृका 2/104

4 क्षिप्रोपदेशलुब्धेन कुलदासेन मन्त्रिणा। -समयमातृका 2/87

5 उलूकवदना काकग्रीवा मार्जारलोचना ....। -समयमातृका 4/7

6 -समयमातृका 3/23

7 -समयमातृका 3/13

8 -समयमातृका 1/19

9 -समयमातृका 1/41

10 -समयमातृका 4/53

11 -दर्पदलन 3/34

12 -दर्पदलन 3/44

13 -दर्पदलन 1/8

गाय,[1] हाथी,[2] गधागदर्भी,[3] आदि के भी उल्लेख प्राप्त हीते हैं।

इस प्रकार क्षेमेन्द्र के काव्याध्ययन से ज्ञात है कि तात्कालिक स्थिति आज जैसी ही थी। समाज में सभी वर्गों के लोग रहते रहे हैं और रहेंगे। तात्कालिक समय में सभी प्रकार के दण्डनीय अपराध भी थे। समस्त धर्मशास्त्रों में इनका उल्लेख है। समाज में ऐसी बुराइयाँ सदैव रही होंगीं और रहेंगी, किन्तु मध्यकालीन समाज बहुत रूढ़िवादी हो गया था। तात्कालिक सामाजिक विवेचन से पूर्णतः यह स्पष्ट होता है कि उस समय भी आज की ही भाँति लोगों का सामाजिक स्तर विकसित था, तात्कालिक लोगों का रहन-सहन, वस्त्र-आभूषण आदि आधुनिकता से परिपूर्ण एवं मूल्यवान् थे। समाज में निर्धन वर्ग के लोग भी रहते थे। किन्तु समाज का धनवान् वर्ग निर्धन एवं समाज के निर्बल वर्ग का शोषण कर उसे शक्तिहीन बनाता हुआ स्वतः शक्तिशाली हो जाता था। क्षेमेन्द्र ने अपने काव्यों में जिन जातियों का वर्गों पर कटाक्ष किया है उन्हें आज के संकीर्ण जातिवाद की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। यदि हम उसे एक जाति विशेष के रूप में देखें तो हम उसी जगह पर पहुँच जायेंगे जहाँ हमारा दृष्टिकोण संकुचित होकर सीमा बद्ध हो रहा है। कायस्थ एवं वणिक् वर्ग वस्तुतः जातिपरक न होकर व्यवसाय-परक नाम थे। प्रशासक वर्ग को कायस्थ एवं व्यवसायी को वणिक् कहा जाता था। तत्कालीन समाज में व्याप्त पाखण्ड एवं धन के प्रति अन्धी दौड़ में किये जा रहे अनाचारों का वर्णन कल्हण के ऐतिहासिक महाकाव्य राजतरंगिणी में भी प्राप्त होता है। कृष्णमिश्र महोदय ने भी अपने ग्रन्थ प्रबन्ध-चन्द्रोदय में भी तात्कालिक धार्मिक स्थिति का वर्णन किया है जो कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों से पूर्णतः मेल खाता है। कविवर क्षेमेन्द्र ने जिन

---

[1] -दर्पदलन 1/13

[2] -दर्पदलन 1/25

[3] -दर्पदलन 1/47, 52

धातुवादियों की कटु आलोचना की है, उनकी हंसी उद्योतन सूरि ने भी उड़ाई है। उन्होंने 'कुवलयमाला' में धातुवादियों से सम्बन्धित अनेक परिभाषाएं दी हैं। अन्ततः कहा जा सकता है कि क्षेमेन्द्र अपने काल का प्रतिनधित्व करने वाले एक समाजद्रष्टा एवं युगद्रष्टा कवि हैं।

●●●

चतुर्थ अध्याय

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में व्यङ्ग्य

'व्यङ्ग्य' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ

'व्यङ्ग्य' शब्द वि उपसर्गपूर्वक अञ्ज् धातु से ण्यत् प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है। अंग्रेजी का सेटायर (satire) शब्द इसका समानार्थक है। अंग्रेजी साहित्य में डाइडेन तथा पोप आदि महान् विदूपवादी कवि (satirist poets) हो चुके हैं। सेटायर शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच (satire) अथवा लैटिन (satura) से हुई है।

किसी भी शब्द का रहस्यात्मक अर्थ या वृत्तानुगामी प्रहारमय व्यंजना व्यङ्ग्य होती है। मूलतः किसी व्यक्ति या समाज की बुराई या न्यूनता को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढे शब्दों में व्यक्त करना 'व्यङ्ग्य' है। बोल चाल में इसे ताना, बोली अथवा चुटकी भी कहते हैं।

इसका अर्थ 'चैम्बर्स डिक्शनरी' के अनुसार इस प्रकार है - "A literary composition originally in verse, essentially a criticism of a man and his work whom it holds up either of ridicule or scorn- its chief instruments irony sarcasm inventive wit and humour an inventive poem,-severity of remark denuciation ridicule."

अर्थात् सेटायर (व्यङ्ग्य) का मुख्य अर्थ है किसी पर विद्रूप कसना, खिल्ली पड़ाना, आक्षेप या अधिक्षेप। सत्रहवीं शती में इग्लैण्ड में विद्रूपात्मक साहित्य अपनी चरमसीमा पर था। सेमुअल बटलर की प्रख्यात कृति Hindibaras, 1663 ई0 की आलोचना में श्री कैज़ामियाँ ने जो सामग्री प्रस्तुत की है वह कृतिविशेष के साथ satire की समस्त विशेषताओं को स्पष्ट कर देती है- "The substance of the poem is composed of an interrupted series of epigraphic saying as short as they are pointed, bilingly sarcasted, flung of as if from rebounding spring. The poem becomes a generally crticism of the society of thought and of man."

वस्तुतः हास्य, व्यङ्ग्य, अधिक्षेप एवं अपदेश आदि शब्द मुख्य रूप से व्यङ्ग्य तथा अधिक्षेप के ही परिचायक हैं। इन शब्दों का प्रयोग व्यङ्ग्यप्रधान काव्यों में किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि व्यङ्ग्य (satire) का मुख्य उद्देश्य समाज और व्यक्ति में मिथ्या तौरतरीकों, दोषों और कुरीतियों पर छींटा कसी करना ही है।

व्यङ्ग्य की परिभाषा

पाश्चात्त्य और भारतीय आलोचकों ने व्यङ्ग्य की विभिन्न परिभाषाएँ दीं हैं। पाश्चात्त्य आलोचकों का प्रभाव आधुनिक भारतीय आलोचकों की विचार पद्धति पर पड़ा है। नीचे दोनों की परिभाषाओं का स्वतन्त्रतः परीक्षण किया गया है-

पाश्चात्त्य आलोचकों की दृष्टि में व्यङ्ग्य

'व्यङ्ग्य' एक साहित्यिक विधा है जिसको अपनाकर साहित्यकार अपने समसामयिक समाज पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तथा अपने मन्तव्यानुसार उसकी आलोचना करता है। अनेक पाश्चात्त्य समीक्षकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से इस काव्य-विधा को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। कतिपय पाश्चात्त्य आलोचकों की दृष्टि में व्यङ्ग्य का स्वरूप इस प्रकार है-

"व्यङ्ग्य अपनी साहित्यिक विधा के रूप में परिहासास्पद अथवा विशेष व्यक्ति के प्रति खिल्ली उड़ाने अथवा चोट पहुँचाने की प्रहारात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्यिकता एवं हास्य उसके आवश्यक अवयव हैं। हास्यहीन व्यङ्ग्य गाली गलौज और बिना साहित्यिक विधा के व्यङ्ग्य विदूषक की उक्ति बन जाता है।"[1]

उक्त परिभाषा में यह मन्तव्य चिन्तनीय है कि साहित्यिक विधा के बिना व्यङ्ग्य विदूषक की उक्ति बन जाता है। वस्तुतः संस्कृत-रूपकों में विद्यमान

---

[1] 'एनसाइक्लोपेडिया ब्रिटानिका', खण्ड 20, पृ० 5

विदूषक की उक्तियों में हास्य रस की उद्भावना पूरी तरह साहित्यिकता के अन्तर्गत होती है और वे हास्य-व्यङ्ग्य का अच्छा उदाहण होती हैं।

"ऐसी साहित्यिक रचना जो मानवीय एवं व्यक्तिगत दोषों, मूर्खताओं एवं अभावों को निन्दा, उपहास, आलोचना, वक्रोक्ति आदि माध्यमों के द्वारा रोकती है इसके साथ-साथ वह कभी-कभी सुधार के आशय से की जाती है।[1]"

"व्यङ्ग्य वह पद्यात्मक अथवा गद्यात्मक रचना है, जिसमें तात्कालिक विषमताओं तथा विद्रूपताओं का मजाक उड़ाया जाता है। कभी-कभी गलती के रूप में इस साहित्यिक रूप का उपयोग किसी व्यक्तिविशेष अथवा व्यक्तियों के समूह की मूर्खताओं की खिल्ली उड़ाने के लिए भी किया जाता है।" [2]

"व्यङ्ग्य उस सीमा तक कटु हो सकता है जिसमें हास्य की मात्रा बिल्कुल न हो। व्यङ्ग्य गहरी चोट करता है, इसमें नैतिकता नहीं होती है। इसमें दया, सहानुभूति, विनम्रता किञ्चित् भी नहीं होती है। यह कभी-कभी व्यक्ति की शारीरिक विषमताओं पर भी आक्रमण करता है। किसी को क्षमा किये बगैर सभी लोगों की धज्जियाँ उड़ाता है।"[3]

इस प्रकार पाश्चात्त्य समीक्षकों के मतानुसार व्यङ्ग्य एक कठोर एवं कटु साहित्यिक हथियार है, जिसे समाज की विभिन्न बुराइयों के विरुद्ध प्रयोग किया जाता है। संस्कृत-काव्यशास्त्र में मूलतः व्यङ्ग्य शब्द व्यञ्जना शक्ति द्वारा ध्वनित गम्य अर्थ के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ध्वनिवादी आचार्यों ने इसी अर्थ में इसका बहुशः प्रयोग किया है। इसी अर्थ के समानान्तर व्यङ्ग्य शब्द उपलक्षित अर्थ व्यङ्ग्योक्ति अथवा परोक्ष सङ्केत अर्थ में भी इसका प्रयोग प्राप्त होता है, जो

---

1 'आक्सफोर्ट इंगलिश डिक्शनरी, खण्ड 9, पृ0 119

2 'बैव्सटर्स थर्ड न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी', पृ0 सं0 2016

3 ' एन इण्ट्रोडक्शन टू डेमोक्रेटिक थ्योरी' (न्यू एडीशन) निकाल, पृ0 212

कहीं न कहीं पाश्चात्त्य प्रयोग के निकट जा पहुँचता है। अतः व्यङ्ग्य का प्रहाररूप अथवा अधिक्षेपात्मक अर्थ भी मान्य अर्थ है और वस्तुतः उसका यह रूप ही अधिक व्यापक है। अतः प्रकृत कवि के काव्य के विवेचन-प्रसङ्ग में व्यङ्ग्य का यह व्यापक, पौरस्त्य एवं पाश्चात्त्य दोनों विचार धाराओं द्वारा स्वीकृत अर्थ ही मान्य होगा, और इसी को दृष्टि में रखकर इस प्रबन्ध में इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

भारतीय आलोचकों की दृष्टि में व्यङ्ग्य

कतिपय भारतीय आलोचकों ने आधुनिक काल में नवीन रूप में प्रस्तुत इस व्यङ्ग्य-काव्य विधा पर अपनी लेखनी चलायी है। उनके मन्तव्यों को इस प्रकार देखा जा सकता है-

"व्यङ्ग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है। व्यङ्ग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जबाव देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।"[1]

"व्यङ्ग्य-मतलब ऐसा अर्थ जिसमें सत्य की आत्म है, निर्भीकता की काया है, हास्य का झीना वस्त्र है और सत्य पर प्रहार करने की तत्परता हैं वाक् वैदग्ध्य और विलक्षणता दो नासा-पुट हैं। युद्धोद्धत, प्रहार-धर्मी व्यङ्ग्य धीरोदात्त हाथ में जयी अस्त्र होता है। सींकिया प्रयोगी इसे फैंककर अपना ही दाँव गँवाता है।"[2]

---

1 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'कबीर', पृ0 164

2 श्री मधुकर गंगाधर : 'निराला : जीवन और साहित्य' पृ0 76

"जब किसी समाज या व्यक्ति की बुराइयाँ न्यूनता को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढे शब्दों में व्यक्त किया जाता है, तब व्यङ्ग्य की सृष्टि होती है। व्यङ्ग्य एक प्रकार की आलोचना है, किन्तु जब व्यङ्ग्य में क्रोध आ जाता है तब हास्य की मात्रा कम हो जाती है।"[1]

"व्यङ्ग्य का वास्तविक उद्देश्य समाज या सोसाइटी की बुराइयों कमजोरियों दुर्बलताओं, करनी तथा कथनी के अन्तरों की समीक्षा अथवा निन्दा, भाषा की टेढी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती हैं। वह पूर्णतः अगम्भीर होते हुए भी गम्भीर हो सकती है, निर्दय लगते हुए भी दयालु हो सकती है, मखौल लगते हुए भी बौद्धिक हो सकती है, अतिशयोक्ति एवं अतिरंजन का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है। व्यङ्ग्य में आक्रमण की उपस्थिति अनिवार्य है।"[2]

"हास्य में जब आलम्बन के प्रति सहानुभूति या अनुराग की भावना रहती है तो वह शुद्ध हास्य माना जाता है, जब हास्य में कटुता आ जाती है तो वह व्यङ्ग्य कहलाता है।"[3]

"व्यङ्ग्य एवं विशिष्ट समाजधर्मी प्रेक्षणाविधि अथवा एक विशिष्ट मानसिक भंगिमा है जिसका उद्भव अन्तर्विरोधों के कारण होता है और जिसमें व्यक्ति अथवा व्यवस्थाविशेष के दौर्बल्य की अपेक्षात्मक अभिव्यक्ति द्वारा परिवर्तन का अभीष्ट पूर्ण होता है।"[4]

---

1 'बेढव स्मृति अंक' जनवरी 1969

2 डॉ0 शेर जंगगर्ग : 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यङ्ग्य' पृ0 27-28

3 डॉ0 बालेन्दु शेखर तिवारी : 'हिन्दी का स्वातन्त्र्योत्तर हास्य और व्यङ्ग्य' पृ0 53

4 डॉ0 कृष्णदेव झारी : 'बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य' पृ0 131

ऊपर उद्धृत परिभाषाओं के आधार पर व्यङ्ग्य की समेकित परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है- 'जिस साहित्यरचना में व्यक्ति यासमाज की कमजोरियों, विकृतियों पर टेढी भंगिमा में दयाशून्य एवं सहानुभूतिहीन प्रहार किया जाता है उसे व्यङ्ग्य कह सकते हैं। वह पूर्णतः प्रहारात्मक होते हुए हास्ययुक्त हो सकता हैं। वह पूर्णतः अतिशयोक्ति एवं अतिरंजन पूर्ण होते हुए जीवन से साक्षात्कार करता है। वह प्रहारात्मक होते हुए नैतिक बोध कराता है।' इसीलिए व्यङ्ग्य का उद्देश्य अन्ततः हास्यात्मक कम उपदेशात्मक अधिक होता हैं। अतः हास्यापदेश एवं उपदेश अनेक जगह एक सा ही काम करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। व्यङ्ग्य का प्रहार सहृदय पाठक की एक विशेष अन्तश्चेतना को जगाता है और उसे एक विचित्र अनुभूति प्रदान करता है। व्यङ्ग्य की धार सदा तीक्ष्ण होती हैं। निश्चित रूप से व्यङ्ग्य एक मान्य साहित्यिक विधा है।

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में विभिन्न वर्गों पर व्यङ्ग्य

व्यङ्ग्ययुक्त काव्यों की रचना करने में तो कविवर क्षेमेन्द्र अद्वितीय हैं। इनकी लेखनी समाज के दूषित पहलुओं पर प्रहार करना जानती हैं। कविवर क्षेमेन्द्र ने तत्कालीन समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार में लिप्त समाज के अनेक शोषण करने वाले वर्गों पर सीधा प्रहार किया है, यद्यपि कायस्थ वर्ग ही विशेषतया उनके उपहास का पात्र है तथापि दुर्जन, कदर्य, वेश्या, कुट्टनी, विट, छात्र, दम्भी लोग, मदपूर्ण लोग, विविध धूर्त लोग- वैद्य, ज्योतिषी, स्वर्णकार, संन्यासी कायस्थ वर्ग इत्यादि पर कविवर ने तीखा व्यङ्ग्य किया है। इनके द्वारा विभिन्न वर्गों पर किये गये व्यङ्ग्य क्रमशः इस प्रकार हैं-

दुर्जनों पर व्यङ्ग्य

कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज के शोषकों में मुख्य अंग दुर्जनों पर तीखा व्यङ्ग्य किया है। दुर्जन के विषय में कहा जाता है कि वह बहुत ही स्वार्थवृत्ति

का, अपने सुख तक सीमित रहने वाला, एवं बहुत ही संकुचित मानसिकता का होता है। यह सज्जनों का अकारण ही दोषी होता है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने दुर्जन को बहुमायावी बताते हुए व्यङ्ग्य रूप में उसे नमस्कार किया है।[1] दुर्जन व्यक्ति मूर्ख होकर भी विद्वान् होता है, क्योंकि वह अपने गुणों का वर्णन करने में शेषनाग के समान तथा दूसरों की निन्दा करने में बृहस्पति के समान होता है।[2] नीतिकार भर्तृहरि ने भी दुर्जनों की निन्दा की है। उन्होंने दुष्टों को प्राप्त विद्या, धन व शक्ति को क्रमशः विवाद मद व दूसरों को कष्ट पहुँचाने का कारण बताते हुए उनकी तीखी निन्दा की है।[3] कविवर क्षेमेन्द्र ने दुर्जन को स्वभाव से ही मायामय, रागद्वेष और मद से भरा बड़े व्यक्तियों को भुलावे में डालने वाला कहकर उसकी निन्दा की है।[4] खल व्यक्ति सबके दोषों को कहता है, परन्तु कोई भी दुष्ट खल के दोषों को नही कहता जबकि खल (दुर्जन) ही वास्तविक दोषी होता है।[5] कविवर ने दुर्जन को लज्जा, दुःख और आकर्षण का हेतु, कामोद्दीपक एवं जघनस्थल की तरह सबको नीचा दिखाने वाला बताया है।[6] कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने अन्तर्दुःख को व्यक्त करते हुए राजा

---

1 सदा खण्डनयोग्याय तुषपूर्णाशयाय च।
नमोऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च।। -देशोपदेश 1/5

2 अहो बत खलः पुण्यैर्मूर्खोऽप्यश्रुतपण्डितः।
स्वगुणोदीरेण शेषः परनिन्दासु वाक्पतिः।। - देशोपदेश 1/9

3 विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय। - नीतिशतक, पद्य सं0 72

4 मायामयः प्रकृत्यैव रागद्वेषमदाकुलः।
महतामपि मोहाय संसार इव दुर्जनः।। - देशोपदेश 1/12

5 खलो वक्त्येव सर्वस्य दोषं वक्ति खलस्य कः।
दोषो मलिनवस्त्रस्य कदा केन विचार्यते।। - वही 1/15

6 लज्जाव्यसनसम्मोहहेतुना कामकारिणा।

के दुष्ट स्वभाव होने पर, जिससे राजा की सम्पूर्ण प्रजा का सम्बन्ध है, प्रजा की क्या स्थिति होगी? अर्थात् अत्यन्त दुःखद स्थिति होगी। जब एक सामान्य दुर्जन से अनेक जीव त्रस्त होते हैं तो राजा के दुर्जन स्वभाव होने पर समस्त प्रजा कहाँ जायेगी।[1] कविवर ने दुर्जन (खल) को बड़े लोगों के मध्य में असम्भव कार्यों को करने वाला बताया है।[2] नीतिकार भर्तृहरि ने तो दुर्जन लोगों को निष्कारण ही संसार से वैर रखने वाला बताया है।[3] कविवर ने खल को सज्जन मनुष्यों की बुराई में चारों तरफ आँखे गड़ाने वाला तथा मुँह बनाये रहने वाला इसके विपरीत विद्वानों को सबके दोषों को ढाँके रहने वाला बतया है।[4]

उन्होंने दुष्ट और सर्प की तुलना करते हुए दुष्ट की अपेक्षा सर्प को अच्छा माना है।[5] महाकवि बाणभट्ट ने तो दुष्टों को सभी जनों के भय का हेतु माना है।[6] अन्यत्र भी पुनः सर्प को उपमित करते हुए कविवर क्षेमेन्द्र ने दुष्ट को निष्कारण

को नाम जघनेनेव खलेन न खलीकृतः।। -देशोपदेश 1/13

1 खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रभविष्णुना।
पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे क्व गमिष्यसि।। -देशोपदेश 1/17

2 खचित्रमपि मायावी रचयत्येव लीलया।
लघुश्च महतां मध्ये तस्मात् खल इति स्मृतः।। -वही 1/16

3 मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणमेव वैरिणो जगति।। -नीतिशतक, पद्य सं० 59

4 खलः सुजनपैशुन्ये सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतः श्रुतिमान् लोके सर्वमादृत्य तिष्ठति।। - देशोपदेश 1/10

5 भग्नदन्त इव व्यालः श्रेयान् मूर्खखलो वरम् ।
पक्षवानिव कृष्णाहिर्न त्वेव खलपण्डितः।। -देशोपदेश 1/18

6 अकारणाविष्कृतवैरदारुणादसज्जनात्कस्य भयं न जायते।
-कादम्बरी कथामुख, श्लोक - 5

हिंसक बताया है।[1] उन्होंने खल (दुर्जन) को सदैव दूषण से अनुगत जनस्थान को उजाड़ने वाला, अभिमानी, देवताओं का द्वेषी, नर भक्षक, खर राक्षस तथा बुराइयों से भरा हुआ, बस्तियों को उजाड़ने वाला, अहंकारी, विद्वानों को द्वेषी और मनुष्यों का भक्षण करने वाला बताया है।[2] तथा उन्होंने दुर्जन को टेढ़ी भौंहें करके देखने वाला अल्पधन से ही मद वाला, बढ़ चढ़कर बोलने वाला, यह विधाता की अजीव बनावट है तथा सभी में सज्जनों के कैलास की तरह विस्तृत यश को मलिन करने वाला बताया है।[3] नीतिदर्पणकार चाणक्य ने भी सर्प को दुष्ट से श्रेयस्कर बताया है।[4] कविवर ने गीता के योगि जन्य भावों से साम्य रखते हुए भावों को दुष्टों के प्रति संकेत करते हुए सबको समान भाव से ठगते हुए निर्वाण की प्राप्ति में सहायक बताया है।[5] दुष्ट द्वारा अर्जित सद्वस्तुऐं भी दोष रूप में प्रयुक्त होती हैं। इनके द्वारा थोड़ी सी अर्जित विद्या भी काले नाग की प्रदीप्त मणि की भाँति लोगों के उद्वेग का कारण होती हैं, क्योंकि ये सभाओं में

---

1 निष्कारण नृशंसस्य शौर्यं हिस्रत्वमुच्यते।
यः सर्पः इव संनद्धः प्राणबाधाय देहिनाम् ।। -दर्पदलन 5/22

2 दूषणानुगतो नित्यं जनस्थानविनाशकृत् ।
दुर्मदो विबुधद्वेषी पुरुषादः खरः खलः।। -देशोपदेश 1/19

3 भ्रकुटिकुटिलदृष्टिर्धातुरन्यैव सृष्टिर्धनलवमदलिप्तः प्रौढवादानुलिप्तः।
सदसि कुटिलदोषैर्दुर्जनः सज्जनानां मलिनयति यशांसि स्फारकैलासभांसि।।
-देशोपदेश 1/24

4 दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः।
सर्पो दंशति काले तु दुर्जनस्तु पदे पदे।। -चाणक्यनीतिदर्पण 3/4

5 समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
वृत्तिच्छेकृताभ्यासः खलो निर्वाणदीक्षितः।। - देशेपदेश 1/6

विवाद करते हैं एवं इन्हें दूसरों का यश शूल सदृश आकुल करता है। ये क्रोध से मलिन नेत्रों वाले तथा द्वेष से ऊष्ण निःश्वास वाले होते हैं।[1]

इस प्रकार लघुकाव्यानुशीलन से स्पष्ट होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी व्यङ्ग्यप्रधान शैली एवं तीक्ष्ण शब्दों के माध्यम से दुर्जनों पर व्यङ्ग्य किया है जो वस्तुतः दुर्जनों का नग्न चित्रण ही है। कविवर के व्यङ्ग्य का प्रयोजन सहज-द्वेषी द्वारा त्रस्त सीधे सादे लोगों का दुष्टों से बचना ही आभासित होता है। यदि दुष्टों में अपने प्रति व्यङ्ग्यात्मक दोषों को जानकर सुधार की प्रवृत्ति होती है तो समाज के सरल लोग उनके कुप्रभाव से बच सकते हैं।

कदर्यों पर व्यङ्ग्य

लघुकाव्यों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र वस्तुतः समाज के सूक्ष्म आलोचक थे। जिनके व्यङ्ग्यात्मक प्रहार से समाज का कोई भी दूषित पहलू अछूता नहीं रहा। उन्होंने कदर्य (कंजूस) पर तो अच्छा खासा व्यङ्ग्य कसा है। उन्होंने कंजूसों के ऐसे गुणों का विवेचन किया है, जिससे पूर्णतः यह स्पष्ट हो जाता है कि कदर्य तो सामाजिक प्राणी ही नहीं कहलाये जा सकते हैं। कदर्य लोग धनसंचय कर रात्रि में भी अन्य लोगों से सशंकित उलूक की तरह जागता रहता है। कंजूस की वाणी में रस का सर्वथा अभाव होता है, क्योंकि वह पूर्णरूप से नीरस स्वभाव वाला होता है। कंजूस को कविवर क्षेमेन्द्र ने बड़े ही मनोहारी ढंग से प्रस्तुत किया है।[2] उन्होने कंजूसों को सबका अहित

---

[1] ये संसत्सु विवादिनः परयशः शल्येन शूलाकुलाः
कुर्वन्ति स्वगुणस्तवेन गुणिनां यत्नाद् गुणाच्छादनम् ।
तेषां शेषकषायितोदरदृशां द्वेषोष्णनिः स्वासिनाम्
दीप्ता रत्नशिखेव कृष्णफणिनां विद्या जनोद्वेगभूः।। - दर्पदलन 3/14

[2] नीरसस्य कदर्यस्य माधुर्यं वचने कथम् ।
गृहे लवणहीनस्य लावण्यं वदने कुतः।। -देशोपदेश 2/2

चाहने वाले समस्त कष्टों के घर, लालची कंजूस से रिश्तेदार हमेशा श्मशान से लौटने की तरह, उल्टे लौटते हैं।[1] कविवर ने कदर्यों को रात्रि में जागरण करने वाले उलूक की तरह बताया है तथा उनके दर्शन को भी अकल्याणकारी बताया है।[2] कदर्य को घास-भूसे में भी खोजबीन करने के लिए हजार आँखों वाला (सहस्राक्ष), घर के खर्च में वज्रधारी, खाने एवं कपड़े में काँट-छाँट करने वाला, बज्रपाणि तथा मेघदलन इन्द्र की तरह कहकर उसका उपहास किया है।[3] तथा कदर्य को नंगा, रूखा, न नहाने से सदैव जटियाए बालों वाला, गन्दी गर्दन वाला नमक न खाने से बाघम्बर पहने रूखे, सदा भस्म लगाने से जटाधारी, विष से नीलकण्ठ तथा लवणासुर को मारने वाले शिव की तरह बताया है।[4] कार्य में कष्ट और रुकावट होने पर भी कंजूस पैसा नहीं खरचता धन संचय में ही सर्वदा एक आँख लगाये रहता है, कार्य में बाधा आने पर भी पैसा न खरचने वाले शुक्र की भाँति होता है।[5] कविवर ने निःसत्व समुद्र, छायाहीन वृक्ष और जमीन के लोभी कंजूस की छटा लोकातीत बतायी हैं।[6] कृपण सदृश कोई

---

1 लुब्धात् सर्वजनानिष्ठात् कष्टचेष्टानिकेतनात् ।
विमुखाः सततं यान्ति श्मशानादिव बान्धवाः।। -वही 2/3

2 थूत्कृतस्य जनैर्नित्यं निर्निद्रस्य निशास्वपि।
उलूकस्येव लुब्धस्य न कल्याणाय दर्शनम् ।। -वही 2/4

3 सहस्राक्षस्तृणतुषे वज्रहस्तो गृह व्यये।
अशनाच्छादनच्छेदात् कदर्यः पाकशासनः।। -देशोपदेश 2/7

4 कदर्यश्चर्मवसनो रूक्षोऽस्नानात् सदा जटी।
मलेन श्यामलगलः शूली विलवणाशनात् । -वही 2/9

5 कार्यपीडा-निरोधेऽपि नार्थं मुञ्चति संग्रहः।
संचयेष्वेकदृष्टिश्च कदर्यः शुक्रतां गतः।। -देशोपदेश 2/10

6 निः सत्त्वस्य समुद्रस्य विच्छायस्य पलाशिनः।
लुब्धस्यावनिशक्तस्य लोकातीतं विचेष्टितम् ।। -वही 2/11

दाता भी नहीं है, वह स्वतः भी नहीं खाता का, कवि ने बहुत ही मार्मिक उपहास किया है।[1] क्षेमेन्द्र ने कंजूस को एकाएक अपने घर स्वेच्छा से आये रिश्तेदारों को आया देखकर अपनी पत्नी के साथ लड़ाई का बहाना करके अनशन कर लेने वाला बताकर उसका उपहास किया है।[2] खर्च करने में कायर, पुत्र के भी कामकाज में भी पुरोहित को कुछ न देने वाला बतलाकर कविवर क्षेमेन्द्र ने कंजूसों की निन्दा की है।[3] कृपण बहुत ही स्वार्थी प्रवृत्ति का होता है वह स्वकार्य पूर्ति के लिए लाभप्राप्त्यर्थ चाण्डाल के चरणों को भी चूम लेता है।[4] कृपण निष्ठुर, निरपेक्ष, शठ व आर्जव रहित आदि लक्षणों से परिपूर्ण होता है।[5] तथा निर्धन व उत्सवहीन तथा कथाहीन घर ही कृपण का घर हो सकता है।[6] वह कृपण मन्दाग्नि व पाण्डु आदि रोगों से पीड़ित होता हुआ दुर्गन्धयुक्त होता है।[7] उसके दाँत भी मलपूर्ण होते हैं, कवि ने कृपण की जर्जर मुखावस्था का हीनोपमा के माध्यम से बहुत ही कटु शब्दों में उपहास किया है जो अपने में एक

---

1 कोऽन्यः कदर्यसदृशो दाता जगति जायते।
नाश्नात्यदत्ता योऽर्थिभ्यो गले हस्तं गृहेऽर्गलम् ।। -वही 2/12

2 कदर्यः स्वजनं दृष्ट्वा यदृच्छोपनगतं गृहे।
करोति दारकलहव्याजेनानूशनव्रतम् ।। -वही 2/18

3 भट्टव्ययं निवार्यैव व्ययभीरोः करोत्यलम् ।
पुत्रकार्ये कदर्यस्य भार्याजारोत्सवव्ययम् ।। -देशोपदेश 2/23

4 चण्डालस्यापि साहाय्ये दृष्ट्वा लाभलवोद्गतिम् ।
चरणौ चूषति चिरं कदर्यः कार्यगौरवात् । -देशोपदेश 2/24

5 नैष्ठुर्यं नैरपेक्ष्यं च शाठ्यं क्रौर्यमानार्जवम् ।
कृतविस्मरणं यच् च तत् कदर्यस्य लक्षणम् ।। -वही 2/26

6 अचुल्लीपाकमस्मेरमुखं निर्जनं च यत् ।
यदुत्सवकथाहीनं तत् कदर्यगृहं विदुः।। - वही 2/28

7 मन्दाग्निः पाण्डुरोगी च लालस्यचुल्ललोचनः।
दुर्गन्धवदनो यश्च स कदर्योऽभिधीयते।। -वही 2/29

उच्चकोटि का वर्णन है।[1] जीवित रहते हुए कृपण द्वारा संचित धन में से एक टका भी खर्च नहीं होता है, जबकि म्रियमाण होने पर एक ही बार में सब चला जाता है। वह अर्ध शताब्दी तक अन्न का संचय करता रहता है कि अकाल पड़े जिससे वह संचित अन्न को गला काटने वाले मूल्य पर विक्रय कर सके। वह दुर्भिक्षाकांक्षी अतिवृष्टि व अनावृष्टि में प्रसन्न होता है।[2] कविवर ने कृपण को लाभ की आशा से धन एकत्र करने करने वाला, यति की तरह इन्द्रियों को जला देने वाला तथा खर्च के भय से अपनी पत्नी के साथ रति न करने वाला बताया है।[3] कवि ने उपहास युक्त वर्णन चरम सीमा तक करते हुए कहा है कि कृपण का वस्त्र कभी नष्ट नहीं होता हैं वह अपने पितामह द्वारा खरीदे गये वस्त्र को भी अपने पास रखता है।[4] कृपण वस्तुतः अपनी सम्पत्ति का न तो स्वयं उपभोग करता है और न ही किसी को उपभोग करने देता है। कविवर क्षेमेन्द्र ने श्रावस्ती

---

[1] क. दन्तेषु मलपूर्णेषु कम्बले धूमपिङ्गले।
नूनं स्थिता श्रीर्लुब्धस्य जघन्यजनवासिनी।। - वही 2/30

ख. दन्ता ज्वरितमूत्राभा मुखं पक्वफलोपमम् ।
शुष्काशिनः कदर्यस्य शुष्कचर्मनिभं वपुः।। -वही 2/31

[2] नृत्यत्यवृष्टिषु पुरा ह्यतिवृष्टिषुनृत्यति।
दुर्भिक्षोपप्लवाकांक्षी कदर्यो धान्यगौरवात् ।।- देशोपदेश 2/34

[3] विरमति मतिहीनो लाभलोभेन वित्तं
जरयति यतिं रूपः संयमादिन्द्रियेच्छाम् ।
चरति च रतिविघ्नं सव्ययत्वाद् गृहिण्याः
स्वधननिधनरक्षाचार्यवर्यः कदर्यः।। -देशोपदेश 2/36

[4] पटी पितामहक्रीता तत्पूर्वाप्तश्च शाटकः।
दिव्यवस्त्रस्य लुब्धस्य क्षीयते न युगैरपि।। -वही 2/14

निवासी नन्द नामक कृपण के कथानक में कृपण को सभी जनों के लिए उद्वेगकारी बताया है।[1]

इस प्रकार कृपण के धन की तीन गतियों में से प्रथम दो गतियों से रहित, बहुत दिनों से रक्षित धन की उसकी मृत्यु के बाद तृतीय गति ही सम्भव होती है तथा वह संचित धन को छोड़कर उसी प्रकार चल देता है जैसे चोर भागते समय धन को छोड़कर भाग जाता है।[2] उस कृपण का घर शोभाहीन, सुखरहित, दीपहीन, जलशून्य एवं कपटपूर्ण होता है।[3] अन्यत्र स्थान पर भी कविवर ने कृपण के घिनौने व गंदे तथा धूलधूसरित अंगों पर इन्हीं विशेषणों से युक्त वस्त्रों का भी स्पष्ट वर्णन किया है।[4] वस्तुतः धनहीनों से अधिक कष्ट कृपण को ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह उसका उपभोग भी नहीं करता है तथा राजा, जल, चोर व अग्नि के भय से सदैव सशंकित रहता हुआ रात्रि में निद्राहीन रहता है।[5] कविवर ने इस प्रकार कष्टमय जीवन बिताने वाले कृपण के क्लेश में व दरिद्र के क्लेश में अन्तर नहीं माना है।[6] उन्होंने कृपण को हृदयहीन बताते हुए कहा

---

1 स कदर्यः सदा सर्वजनस्योद्वेगदुःसहः।
मूर्धशायी निधानानां कालव्याल इवाभवत् ।। -दर्पदलन 2/12

2 अदत्तभुक्तमुत्सृज्य धनं सुचिररक्षितम् ।
मूषका इव गच्छन्ति कदर्याः स्वक्षये क्षयम् ।। -वही 2/71

3 विच्छायं निःसुखानन्दं निर्दीपं जलवर्जितम् ।
तस्य कष्टं कदर्यस्य परलोकमभूद् गृहम् ।।-वही 2/15

4 तैलमलकललला‌ञ्छितमूषकजग्धार्धटुप्पिकाविकटः।
शीर्णोर्णाप्रावरणप्रलम्बघनकञ्चुकाञ्चलालोलः।। -समयमातृका 8/55

5 अनिद्रा मन्दोऽग्निर्नृपसलिलचौरानलभयात् ।
कदर्याणां कष्टं स्फुटमधनकष्टादपि वरम् ।।-दर्पदलन 2/10

6 विच्छाययोर्निर्व्यययोः कष्टक्लिष्टकलत्रयोः।
विशेषः क्लेषदोषस्य कः कदर्यदरिद्रयोः।। -वही 2/4

है कि वह सम्पूर्ण जगत् में केवल धन से ही प्रेम करता है, यहाँ तक कि धन प्रेम में वह अपने सगे-सम्बन्धियों की पीड़ा का अनुभव नहीं करता है। सगे सम्बन्धियों का न रहना, धन व्यय से अच्छा होता है। इस तरह की मानसिकता से युक्त कृपण पर कवि ने तीखा व्यङ्ग्य किया है।[1]

इस प्रकार लघुकाव्यानुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृपण का जीवन बड़ा ही विचित्र होता है। वह कमाये हुए धन को एकत्र कर उसका स्वतः उपभोग भी न करता हुआ उसके संरक्षण में जीवन पर्यन्त चिन्तित रहता है तथा मृत्यु के समय चोर की तरह उस एकत्र धन को त्याग कर अस्थिमात्र अवशिष्ट शरीर को भी छोड़ देता है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज में धन प्राप्त कर भी कष्ट भोग रहे कृपणों की कृपणता का अनुभव किया तथा उनके दोषों को हृदयघात करने वाली व्यङ्ग्यात्मक शैली में उसे काव्य बद्ध किया जो वस्तुतः इस शैली की रचनाओं में बेजोड़ रचना है। कविवर ने अपनी व्यङ्ग्यात्मक शैली के द्वारा कृपणों के कापटिक एवं दरिद्रतापूर्ण व्यवहार को सबके सामने उजागर कर अनुभव करने का अवसर प्रदान किया है। इनकी उपदेशपरक शैली वर्ण्य-विषय-वस्तु का नग्नचित्र उपस्थित करने में पूर्ण रूप से समर्थ है।

वेश्याओं पर व्यङ्ग्य

वेश्यायें भी समाज के धन सम्पन्न लोगों, युवावर्ग एवं अन्य वर्ग के लोगों को अपने प्रणय-पाश में फँसाकर उनकी धन-सम्पत्ति का हरण करके विभिन्न प्रकार से शोषण करती हैं। अतएव कविवर क्षेमेन्द्र ने वेश्याओं के

---

[1] निजगृहदिवसपरिव्ययाच्चागतकन्यकाप्रहारोग्रः।
रज्जुग्रथितबुभुक्षितमार्जारीरावनिर्दयप्रकृतिः।। -समयमातृका 8/57

दुर्गुणों को बतलाकर उनका तीखा उपहास किया है। कविवर ने वेश्याओं के प्रच्छन्न प्रयोजन को समाज के सामने नग्न रूप में चित्रित किया है।

ये वेश्यायें नीचों की सम्पत्ति का भोग करने वाला, सदाचार से विमुख, दुःख देने वाली तथा सदाचार से विरत दुःख देने वाली लक्ष्मी की तरह चञ्चल[1] होती हैं। कविवर क्षेमेन्द्र ने सौ वर्ष तक साथ रहने पर भी वेश्या के प्रेम को बनावटी बताया है तथा साथ छूटते ही शीघ्र भाग जाने वाली बताया है।[2] कवि ने वेश्या को पैसे ही सब कुछ हरने वाली, वहाने से आँखे मटकाने वाली, चतुराई से पाँसे फैंककर सब कुछ हरने वाली जुआड़ी की माया की तरह धूर्तों को भी मोह लेने वाली बताया है।[3] तथा वेश्याओं द्वारा दिखाये गये हाव-भाव प्रेम व्यवहार व स्नेह आदि सभी कृत्रिम हुआ करते हैं।[4] कविवर ने वेश्याओं को कामिजनों के द्वारा सदैव घिरी रहने वाली बताया है।[5] कविवर की 'समयमातृका' तो पूर्णतः वेश्याओं के प्रच्छन्न प्रयोजन को सिद्ध करने वाले उपायों से सम्बलित लघुकाव्य है, जिसे कविवर ने स्वतः कहा है।[6] ये वेश्यायें अपने प्रच्छन्न प्रयोजन

---

1 नीचोपभोग्यविभवा सदाचारपराङ्मुखी।
दुर्जन श्रीरिव चला वेश्या व्यसनकारिणी।। -देशोपदेश 3/3

2 अपि वर्षशतं स्थित्वा सदा कृत्रिम रागिणी।
वेश्या शुकीव निःश्वासा निःसङ्गेभ्यः पलायते।। -वही 3/9

3 पणेन हृतसर्वस्वा कृतलोलाक्षविभ्रमा।
वेश्या कितवमायेव धूर्तानामपि मोहनी।। -वही 3/10

4 कृत्रिमं दृश्यते सर्वं चित्तसद् भाववर्जिता।
सूत्रप्रोतेव चपला नर्तकी यन्त्रपुत्रिका।। -वही 3/11

5 निर्यात्येको विशत्यन्यः परो द्वारि प्रतीक्षते।
यस्याः सभेव सा वेश्या कार्यार्थशत सङ्कुला।। -वही 3/12

6 क्षेमेन्द्रेण रहस्यार्थमन्त्रतन्त्रोपयोगिनी।
क्रियते वाररामाणामियं समयमातृका।। -समयमातृका 1/3

की सिद्धि हेतु ही विभिन्न हाव-भाव के माध्यम से प्रेम दर्शाती हैं। कलावती को उपदेश देती हुई जरण वेश्या भी विभिन्न कपटपूर्ण आचरणों की शिक्षा देती है।[1]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने वेश्याओं पर तीखा व्यङ्ग्य करते हुए सिद्ध किया है कि वेश्यायें समाज की दूषिका के रूप में कार्य करती हुई कपटपूर्ण आचरण से समाज के मूर्ख, शास्त्रोन्मादी, मद्यपान करने वालों आदि पथ भ्रष्ट लोगों के तन, मन व धन का शोषण करती हैं।[2] ये वेश्यायें पूर्व में विभिन्न हाव-भाव से दृढानुराग दर्शाकर पल्लव के समान कामी पुरुषों को प्रेमपाश में फँसाकर उनसे धन का दोहन कर घृणा भाव दर्शाने लगती हैं।[3] वेश्यओं के विषय में अन्यत्र भी उल्लेख मिलते हैं। वेश्यायें प्रायः सभी कालों में लोगों को असत् कार्यों में लगाने तथा समाज की दूषिका के रूप में कार्य करती हैं। इसीलिए प्रायः सभी नीतिकारों ने कविवर क्षेमेन्द्र की तरह वेश्याओं को अस्पृश्य माना है। वेश्याओं की भर्त्सना करने में कोई भी नीतिकार चूका नहीं है। नीतिकार भर्तृहरि ने भी वेश्याओं पर व्यङ्ग्य किया है जो महाकवि शूद्रक के भाव से पूर्णतः साम्य रखता है।[4] शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' में जहाँ वेश्याओं को कामाग्नि बताते हुए यह दिखाया है कि इस कामाग्नि में धन व यौवन होम किये

---

[1] क. शिरः शूलादिकं व्याधिमनित्यमजुगुप्सितम् ।
अवहारोपयोगायपूर्वमेव समादिशेत् ।।- वही 5/60

ख. स्वप्ने सदैव प्रलपेत्सरागं सर्वं च तन्नामनिबद्धमेव।
न चास्य तृप्तिं सुरतेषु गच्छेद्वयस्य कुर्याच्च मुहुर्निषेधम् ।। -वही 5/63

[2] गतानुगतिको मूर्खः शास्त्रोन्मादश्च पण्डितः।
नित्यक्षीबश्च वेश्यानां जङ्गमाः कल्पपादयाः।। -वही 5/67

[3] वेश्यालताः सरागपूर्वं तदनुप्रलीनतनुरागम् ।
पश्चादपगतरागं पल्लवमिव दर्शयन्ति निजचरितम् ।। -वही 5/136

[4] वेश्याऽसौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च।। -शृङ्गारशतक, पद्य 90

जाते हैं।[1] और यह भी कहा है कि वेश्यायें कामुकों को धन-हीन करके तन से भी दुर्बल बना देती हैं।[2] लोग कामान्ध होकर सर्वस्व लुटाकर वेश्या संसर्ग में फँसते हैं, तभी तो भर्तृहरि ने भी कटु शब्दों में वेश्याङ्ग पर व्यङ्ग्य करते हुए कुलीन पुरुषों को वेश्याओं की ओर से सचेत किया है।[3] वेश्याओं के जितने हाव-भाव होते हैं वे कृत्रिम ही होते हैं। तभी तो समस्त नीति-कारों ने लोगों को वेश्याओं से दूर रहने के लिए अपनी लेखनी केमाध्यम से उनके कलुषित विचारों का पर्दाफाश कर सन्मार्ग का बोध कराया है। नाटककार शूद्रक ने भी वेश्याओं के हाव-भावों को कृत्रिम बताते हुए इन्हें वर्जनीय बताया है।[4] ये वेश्यायें मोहन क्रिया में तथा सैकड़ों प्रकार की माया दिखाने में क्रमशः बाला, प्रौढा, व वृद्धा भाव दिखाती हुई तृप्त नहीं होती हैं।[5] ये लोगों को पण्डित से मुर्ख, धनी से निर्धन, पवित्र से चोर छोटे से बड़ा बना देती हैं।[6] कविवर ने

---

1 अयं च सुरतज्वालः कामाग्निः प्रणयेन्धनः।
नराणां यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च।। -मृच्छकटिक 4/11

2 इह सर्वस्वफलिनः कुलपुत्र महाद्रुमाः।
निष्फलत्वमलं यान्ति वेश्याविहगभक्षिताः।। -वही 4/10

3 कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि।
चारभटचोरचेटकनटविटनिष्ठीवनशरावम् ।। - श्रृङ्गारशतक, पद्य 91

4 एता हसन्ति रुदन्ति च वित्तहेतो-
र्विश्वासयन्ति पुरुषं न च विश्वसन्ति।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्या श्मशान सुमना इव वर्जनीयाः।। -मृच्छकटिक 4/14

5 मौग्ध्ये बाला रतौ प्रौढा वृद्धा मायाशतेषु च।
सा कामरूपिणी वेश्या रक्तमांसैर्न तृप्यति।। -देशोपदेश 3/14

6 धीमान् मूढो धनी निःस्वः शुचिश्चौरो लघुर्गुरुः।
भवितव्यतयेवायं वेश्यया क्रियते जनः।। -वही 3/15

वेश्याओं को उभरे हुए नकली कुच वाली, सुरत में अयोग्या बाला प्रौढा की तरह भाड़ा ले कर केवल चुम्बनों से ही लोगों को लूटने वाली बताया है।[1]

व्यसनकारिणी, नीचोपभोग्या एवं सदाचारपराङ्मुखी वेश्या कामुक पुरुषों को स्ववश में कर उनके धन वैभव को हस्तगत करने के निमित्त प्रथम पुष्पिता बाला बनकर केवल उसके लिए ही प्रयुक्त होने का बहाना बनाती है।[2] कविवर ने समस्त संसारी भावों को अन्त में नीरस होना बताया है परन्तु के रति समागम को आदि मध्य एवं अन्त में सब नीरस होना बताया है।[3] सैकड़ों विटों से घर्षित की गई जिसकी कमर है, बटोहियों से चूंसा जूठा मुख है, सैकड़ों से मले गये स्तन हैं। वह वेश्या किसकी अपनी होती है।[4] अर्थात् किसी की नहीं होती। कविवर ने कामी पुरुषों द्वारा वेश्या संसर्ग धन विनाश का हेतु बताया है।[5] लोग जानकर भी विषपान करते हैं, [6] फिर भी कविवर ने वेश्याओं के कृत्रिम रागजन्य कष्टों को नग्न रूप में चित्रित करने का साहस किया है।

---

1 स्पष्टकूटकुचा भाटीं प्रौढेवादाय बालिका।
मुष्णाति सुरतायोग्या केवलं परिचुम्बनैः।। -वही 3/17

2 शयनेऽहं तवाद्यैव बाला प्रथमपुष्पिता।
इत्युक्त्वा कामुकान् प्रातर्वेश्या भुङ्क्ते सदोत्सवम् ।। -वही 3/19

3 पर्यन्तविरसाः सर्वेभावाः संसारवर्तिनः।
आदिमध्यान्तविरसो वेश्यारति-समागमः।। -वही 3/24

4 कटिर्विटशतैर्घष्टा पान्थपीतोज्झितं मुखम् ।
स्तनौ सहस्रमृदितौ यस्याः कस्यासु सा निजा।। -वही 3/25

5 विरसा सेव्यते वेश्या जनैर्नित्यरजस्वला।
न कामाय न धर्माय धननाशाय केवलम् ।। -वही 3/30

6 क्व तदस्ति न जानीमः पिबामः किं न तद् विषम् ।
तथैव दृश्यते येन प्रपुराणापि पुंश्चली।। -वही 3/35

ये वेश्याऐं फटे कपड़े ओढ़े हुए, पानीभरी आँखों वाली, धुंधली नजर वाली, बूढ़ी, सब कुछ लूट लेने में कुशल, हल्के अंधेरे का कपड़ा पहने धुंवासी डूबे तारों वाली प्रभात बेला की तरह होती हैं।[1] ये धन के निमित्त अपने अड्ग प्रत्यङ्ग को कामुकों के निमित्त समर्पित कर देतीं हैं।[2] इनके सम्पर्क में चेटी, विटादि का भी वर्णन मिलता है।ये वेश्या कर्म में सहयोगी होते हैं। कवि ने विट चेटादि पर भी तीखा व्यङ्ग्य किया है तथा वेश्या पर भी घृणास्पादक उपहास किया है।[3] वेश्यायें वस्तुतः सर्वगुण-सम्पन्ना होती हैं। वे सत्य विहीन, केवल धन से ही प्रेम करने वाली तथा विचारविहीन होते हुए भी मुखमधुरा होती हैं।[4] ये अत्यधिक चालाक अपने नकली प्रेम से लोगों को लूटने वाली तथा अपने कपटाचार से कुबेर को भी भिखमंगा बना देतीं हैं।[5] ये लुटेरी तरंगी और नीचों का संसर्ग करने वाली वेश्यायें ढहाने वाली तरंगों से भरी चपल और निम्नगा नदियों की तरह होती हैं। जैसे नदियाँ समुद्र में मिलती हैं उसी प्रकार चौंसठ कलाओं से युक्त होती हैं।[6] प्रेमी मात्र को कृत्रिम प्रेम दर्शाने वाली वेश्यायें

---

[1] क्षीणध्वान्तपटा वृद्धा सवाष्पा नष्टतारका।
वेश्या प्रभातवेलेव सर्वस्वापहृतिक्षमा।। -देशोपदेश 3/37

[2] स्तनौ नखमुखोच्छिष्टौ वेश्यायाः खण्डितोऽधरः।
न रागाय न लज्जायै केवलं पण्यवृद्धये।। -वही 3/23

[3] वेश्याभिस्थूत्कृतमुखः सुजनेन विवर्जितः।
अमङ्लाकृतिरिव भ्राम्यते विरतं विटः।। -वही 5/6

[4] एताः सत्यविहीना धवललीलाः सुखक्षणाधीनाः।
वेश्या विशन्ति हृदयं मुखमधुरा निर्विचाराणाम् ।। -कलाविलास 4/22

[5] तत्रापि वेशयोषाः कुटिलतरा कूटराग हृतलोकाः।
कपटचरितेन यासां वैश्रवणः श्रमणतामेति।। -वही 4/1

[6] क. हारिण्यश्चटुलतरा बहुलतरंगाश्च निम्नगामिन्यः।
नद्य इव जलाधि मध्ये वेश्याहृदये कलाश्चतुःषष्टिः।। -कलाविलास 4/2

हृदय से केवल धन के प्रति प्रेम रखने वाली होतीं हैं।[1] वृद्धा वेश्या पर किया गया उपहासपूर्ण व्यङ्ग्य दृष्टव्य है।[2] कविवर ने वेश्याओं पर विस्तार से व्यङ्ग्य कर उनके संसर्ग से दूर रहते हुए तथा कभी भी विश्वास न करने के लिए कहा है तथा साथ ही साथ महाभारत से ऋष्यशृङ्ग ऋषि का वेश्या द्वारा शृङ्गारी बनाया जाना उदाहरण देकर पुष्ट किया है।[3]

कविवर क्षेमेन्द्र ने वस्तुतः वेश्याओं के प्रत्येक हाव-भाव का परमोद्देश्य धनार्जन ही बताया है। 'समयमातृका' में तो कविवर ने वेश्याओं के कुकृत्यों का विस्तार से विवेचन किया है तथा वेश्याओं को फूल बेचने वाली, स्त्री जादूगरनी, भिक्षुणी और संन्यासिनी के विभिन्न वेशों किन्तु सदैव एक गणिका के रूप में इधर-उधर भ्रमण करने वाली बताया है।

इस प्रकार लघुकाव्यानुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि वेश्यायें तत्कालीन समाज में बहुत से लोगों को अपने कपटपूर्ण प्रेम-जाल में फँसाकर उनके तन धन का शोषण करती थीं। इसलिए कविवर क्षेमेन्द्र ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में वेश्याओं पर व्यङ्ग्य के माध्यम से उनके कपटपूर्ण आचरण व व्यवहार को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

ख. वेशकला नृत्यकला गीतकला वक्रवीक्षणकला च।
कामपरिज्ञानकला ग्रहणकला मित्रवञ्चनकला च।। -वही 4/3-11

[1] क. चित्रमियं बहुवित्तं क्षपयतिवेश्यापि मत्कृते तृणवत् ।
प्रीतिपदवीविसृष्टो वेश्यानां धननिबन्धनो रागो।। -वही 4/19

ख. मिथ्या धनलवलोभादनुरागं दर्शयन्ति बन्धक्यः।
तदपि धनं विसृजति या कस्तस्याः प्रेम्णि सन्देहः।। -वही 4/20

[2] भस्मस्मेरा वेश्या वृद्धाः श्रमणाः सदैवता गणिकाः।
एताः कुलनारीणां चरन्ति धनशीलहारिण्यः।। -वही 9/23

[3] वेश्यावचसि विश्वासी न भवोन्नित्यकैतवे।
ऋष्यशृङ्गोऽपि निःसङ्गः शृङ्गारी वेश्यया कृतः।। - चारुचर्या, पद्य सं. 48

<u>कुट्टनी पर व्यङ्ग्य</u>

कुट्टनी और विट वस्तुतः वेश्याओं से सम्बन्धित पात्र ही होते हैं। कुट्टनियाँ वेश्याओं के साथ में रहकर उनके सम्पर्क में आने वाले कामी पुरुषों को वेश्याओं के प्रति आकर्षित करके उनके धन के शोषण करने में सहायक होती हैं। वे वेश्याओं के संरक्षण का भी कार्य करती हैं। इनके कापटिक व्यवहार तथा प्रच्छन्न प्रयोजन को कविवर ने उजागर किया है।

कुटिला कुट्टनी हलाहल विष से युक्त वेश्या की 'रति' के क्षयरक्षा महानागिन की तरह होती है।[1] यह कुट्टनी इन्द्र के भी राज्य को हर लेने में समर्थ, देवताओं से वर्जित शिव को भी भय प्रद, ब्रह्महत्या की तरह इन्द्र के राज्य को भी हड़पने वाली, विद्वान समुदाय में निन्दनीय, संसार को भय देने वाली होती है।[2] कविवर ने कुट्टनी को काल रूपी कापालिक के भयंकर कंकाल के ढाँचे वाली, खून चूंसने वाली, तथा आदमी को खा जाने वाली बतलाकर उसका उपहास किया है।[3] कुट्टनी वस्तुतः सहवास कामी पुरुष का धन शोषण करने के बाद ड़राने व विभिन्न मायावी कार्यों से भगाने का भी कार्य करती हैं। वह धनी कामुक को ही धन प्राप्त करने के लिए प्रेम करती है तथा विभिन्न ठगी के तरीकों से उसे जाल में फँसाने का कार्य करती हैं।[4] तथा वह प्रतीपचारिणी व

---

1 हालाहलोल्बणां कालीं कुटिलां कुट्टनीं नुमः।
वेश्यारतिनिधानस्य क्षयरक्षमहोरगीम् ।।- देशोपदेश 4/1

2 शक्रराज्यापहरणक्षमा विबुधवर्जिता।
कुट्टनी ब्रह्महत्येव भवस्यापि भयप्रदा।। - देशोपदेश 4/2

3 काल कापालिकोत्तालङ्कालाकृतिराकुला।
कुट्टनी मानुषानत्ति रक्ताकर्षणशालिनी।। -वही 4/3

4 सधनं कामुकं धृष्टा विलोक्यानिशमागतम् ।
जिह्वां प्रसार्य निर्याति कुट्टनी कार्यगौरवात् ।। -देशोपदेश 4/16

घोर कष्ट दायिनी होती है।[1] वह अन्य व्यक्ति की जान पहचान की परवाह नहीं करती है। उपकार का भी उसे स्मरण नहीं रहता, सदैव बैरागिन बनी नीरसता में अन्त होने वाली खल की मित्रता की तरह होती है।[2] कविवर ने कुट्टनी को बड़े दाँतों वाली, निर्दयी, जार के साथ खींचतान करने वाली, घोर नाग पाश से युक्त यम की दूसरी मूर्ति बताकर उसकी निन्दा की है।[3] इसे कुत्ते की पूँछ व बकरी के सींग आदि की भाँति व्यर्थ माना गया है।[4] कविवर ने विश्व की कण्टक रूपा ताडका व पूतना का क्रमशः राम और कृष्ण द्वारा माने जाने के बाद विश्वकण्टकरूपा कुट्नी के विनाश न किये जाने पर चिन्ता व्यक्त की है।[5] इस लड़ाई में नुचे बालों वाली, टूटे कानों वाली तथा नकली माना गया है।[6] तथा इसे कसाई की तरह पशु की सींग और खुर देखने वाली माना गया है।[7] कुट्टनी को हर प्रकार से वेश्याओं के काम को साधने वाली बताया गया है।[8] यह दोष-

---

1 न कान्तं न कलावन्तं न शूरं सहते सदा।
प्रतीपचारिणी घोरा राहुच्छायेव कुट्टनी।। -वही 4/6

2 नापेक्षते परिचयं नोपकारं स्मृत्यपि।
सर्वदैव विरागान्ता खलमैत्रीव कुट्टनी ।। -वही 4/7

3 सदंष्ट्रा कुट्टनी क्रूरा भुजङ्गा कृष्टिकारिणी।
याता मूर्तिः कृतान्तस्य नूनमन्यप्रकारताम् ।। - वही 4/8

4 श्वपुच्छैश्छागशृङ्गैश्च व्यालैरुष्ट्रगलैः खलैः।
कुट्टनीहृदयान् मन्येकौटिल्यमुपजीव्यते।। -वही 4/13

5 रामेण ताडका मिथ्या हता कृष्णेन पूतना।
विश्वकण्टकतां याता निहता किं न कुट्टनी।। -देशोपदेश 4/10

6 कलहोल्लुञ्चितकचा त्रुटितश्रवण द्वया।
छिन्ननाशा पिशाचीव घटयत्येव कुट्टनी।। -वही 4/12

7 कुट्टन्या प्रविप्रसन्नेव नरः साभरणाम्बरः।
सविषाणखुरो मेषः सौनिकेनेव गण्यते।। -वही 4/17

8 यौवने मूल्यकुल्येव तुलेन रतिविक्रये।

युक्त एवं बदसूरत व्यक्ति की भी प्रशंसा करके धन लूटने के लिए सर्वदा तत्पर रहती है।[1] तथा यह पिशाचिनी-सदृश एवं कभी भी सन्तुष्ट न होने वाली तथा कार्यों में सदा लिप्त रहने वाली होती है।[2] कविवर ने कुट्टनी को अदृश्य साधनों के द्वारा मनुष्य को खोखला करने वाली बताकर उसकी निन्दा की है।[3] कवि ने कुट्टनी को सब कुछ देने पर भी सन्तुष्ट न होने वाली, अधिक प्रेम करने पर भी उदास दिखलाई देने वाली, नेत्र से नेत्र मिलाने वाली, रक्त व मांस की लोभी सब लोगों को चोट करके अट्टहास करने वाली, तथा संसार में विचरने वाली बताया है।[4]

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी 'समयमातृका' नामक रचना में कुट्टनी का विस्तार से वर्णन किया है। इसमें तो कुट्टनी का बृहद् रूप वर्णित है। कुट्टनी जो नापित के कहने पर कलावती वेश्या को विभिन्न ठगी के उपायों को बताती है,

---

पण्यस्त्रीणामनेकार्था कृता दैवेन कुट्टनी।। -वही 4/14

[1] न ह्यस्त्वत्परः काण खल्वाट शोभसे परम् ।
इति वित्तार्थिनी स्तौति कुरूपमपि कुट्टनी।। वही 4/19

[2] क. हरत्य पक्वं निशं पक्वं गिलति लाघवात् ।
बहूच्छिष्टं विद्यते च लुण्ठिता कुट्टनी नृणाम् ।। -वही 4/20

ख. कामिनः सप्रयत्नस्य बन्धकीभोजकारिणा।
न तृप्यति महाकाली महिषस्यापि कुट्टनी।। -वही 4/21

[3] अदृश्योपक्रमैस्तैस्तैः करोति सुशिरं नरम् ।
यत् सत्यं जृम्भमाणस्य जिह्वां नयति कुट्टनी।। -देशोपदेश 4/22

[4] नयननयनसक्ता रक्तमांसप्रसक्ता
सकलसकललोकग्रासमुक्ताट्टहासा।
कलितकलितरङ्गस्फारसंचारचारा,
भ्रमति जगति पुंसां कुट्टनी कुट्टनी सा।। -वही 4/34

गोदी में खोपड़ी लिये हुए वस्त्राच्छादित प्रेतात्मा की भाँति प्रतीत होती है।[1] कुट्टनी सदैव कुछ प्राप्त करने की इच्छा वाली होती है सब कुछ गृहण कर लेने पर भी और कुछ लेने के लिए वह सैदव मुख फैलाये रहती है। अर्थात् उसमें सन्तोष का स्पर्शमात्र भी नहीं होता है। वह त्रिलोकी को नापने के लिए अङ्क अर्थात् मध्य में सहस्रों अंकों वाली अर्थात् गम्भीर स्थल वाली कलि की तुला की तरह थी।[2] उसका मुख उलूक के मुख की तरह था, उसकी ग्रीवा कौऐ की गर्दन के समान थी, उसके नेत्र बिल्ली के लोचन की भाँति थे। इस प्रकार वह सर्वदा परस्पर स्वभावतः विरोध रखने वाले प्राणियों के अङ्गों से बनी हुई प्रतीत होती थी।[3] उसको वेश्या समूह की अद्वितीय रक्षक बताया गया है तथा कामुक पुरुषों को अतिसंभोग के माध्यम से चिरभोगी बनाकर खटिया की शरण देने वाली बताया है।[4] वह कुट्टनी कलावती वेश्या को माया एवं प्रपञ्च की शिक्षा देती हुई कहती है कि इसी माया व प्रपञ्च के ही माध्यम से वेश्याओं को धन की प्राप्ति होती है।[5] कुट्टनी विनाशिनी, क्षीण, व्यसनी मूढ़ को भी कलहादि के लिए भी प्रेरित करती है।[6] वह लोगों के सर्वस्व का हरण कर भी सन्तुष्ट न रहने वाली

---

1 आस्थियन्त्रशिरातन्त्री लीनान्त्रोदरकृत्तिका।
शुष्ककायकरङ्काङ्कावृतेव कटपूतना।। - समयमातृका 4/3

2 सर्वस्वग्रहणेनापि लम्बमानमुखी सदा।
तुलेवाङ्कसहस्राङ्का त्रैलोक्य तुलने कलेः।। -समयमातृका 4/4

3 उलूकवदना काकग्रीवा मार्जारलोचना।
निर्मिता प्राणिनामङ्गैरिव नित्यविरोधिनाम् ।। -वही 4/7

4 वेश्यावनैकपालिन्या यया रागमहाव्रते।
कृता कामुकलोकस्य खट्वाङ्गशरणं तनुः।। -वही 4/8

5 मुग्धाः प्रत्ययमायाति प्रत्यक्षेऽप्यथा कृतें।
मायाप्रपञ्चसारश्च वेश्यानां विभवोद्भवः।। -वही 4/37

6 क्षीणं व्यसनिनं मूढदुर्दशेव विनाशिनी।

कामी पुरुषों के विघ्न के रूप में वह किस के द्वारा निर्मित की गई? अर्थात् कविवर को कुट्टनीयों की संसार में उपस्थिति सह्य नहीं है।[1]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि तात्कालिक समय में कुट्टनियां विशेषकर वेश्याओं के कार्यों में सहायक, वेश्या समूह की रक्षिका तथा कामी पुरुषों को फँसाने का भी कार्य करती थीं। कविवर के द्वारा इस प्रकार का वर्णन पाठकों के समक्ष साहसिक कार्य ही हो सकता है।

विटों पर व्यङ्ग्य

वेश्या के रक्षक के रूप में कपट और दुष्टता से युक्त विटों पर कविवर क्षेमेन्द्र ने व्यङ्ग्य किया है। चेट, कुट्टनी, विट आदि पर किये गये व्यङ्ग्य को पढ़कर आभास होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज को दूषित करने वाले लोगों के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त की होगी तभी उन पर कटु व्यङ्ग्यों की वर्षा की है।

समाज की वेश्याओं में आसक्त कामी पुरुषों के धन का शोषण करने में विटों की अहम् भूमिका होती है। कविवर क्षेमेन्द्र ने दोषयुक्त, गुणहीन तथा कृष्ण पक्ष के कुटिल चन्द्रमा की तरह गुणों वाले विट को व्यङ्ग्य रूप में नमस्कार किया है।[2] कविवर ने विटों की तुलना अकारण झगड़ा करने वाले ओधी, बदमास और चञ्चल बन्दर से की है।[3] उन्होंने विट को हाथ में सुई लेकर

कुट्टनी प्रेरयत्येव सपत्नकलहादिषु।। -समयमातृका 4/30

1 सर्वस्वेनाप्यसन्तुष्टा रूक्षा स्नेहशतैरपि।
निर्मिता कामिनां विघ्नः कृतघ्ना केन कुट्टनी।। -देशोपदेश 4/33

2 क्षीणाय गुणहीनाय सदोषाय कलाभृते।
विटाय कृष्णपक्षेन्दुकुटिलाय नमो नमः।। -देशोपदेश 5/1

3 सदा विप्लवशीलेन कोपनेन प्रमादिना।

यज्ञोपवीत पहने हुए, कड़े पहनकर क्षीण, सूचीहस्त सूत्रधार और प्रवेशक से युक्त कपट रूपी नाटक में काम करने वाला बताया है।[1] कवि ने विट को कुलटा के घर में कुट्टनी रूपी शूर्पणखा के नाक कान काटकर काकुस्थ राम की तरह विराजने वाला बताया है।[2] यह विट स्त्रियों में शूर, दोषकर, चित्त में बक्र वुद्ध, पाप में गुरु (नक्षत्र) अथवा भारी व्यय में शुक्र (नक्षत्र अथवा कंजूस) तथा रास्ते में शनैचर होता है।[3] कविवर ने विट को गर्मी में मोटा कपड़ा पहनने वाला, तथा माघ के मास में झीना कपड़ा पहनने वाला तथा वेश्या के हाथ से केसरिया थापा लगा हुआ पाजामा पहनने वाला बताया है।[4] विट की महत्ता सर्वथा त्याज्य वेश्याओं की कृपा प्राप्ति पर ही निर्भर करती है वह रंग-विरंगे वस्त्रों को धारण कर वेश्याओं के संभोग से सौभाग्य से इतराता भी है।[5] कविवर क्षेमेन्द्र ने विट के लक्षणों को भी बताया है ताकि सत्पुरुष उसके चंगुल से बचे रहे और फँसे लोग उभरने का प्रयास करें।[6] विट कामुकों को रसायन, योगशास्त्र

चटुलेन विटः स्पष्टं कर्कटेनोपमीयते।। -देशोपदेश 5/4

1 सूचीहस्तः सूत्रधारः सकङ्कण प्रवेशकः।
क्षीणो नटायते स्पष्टं विटः कपटनायके।। -वही 5/7

2 विटो राम इवा-भाति काकुत्स्थः कुलटाग्रहे।
निकृत्तकुट्टनी सूर्पणखाश्रवणा नाशिकः।। - वही 5/8

3 शूरो दोषाकरः स्त्रीणां वक्रश्चित्ते खलो बुधः।
गुरुः पापे व्यये शुक्रो विटः पथि शनैश्चरः।। -वही 5/10

4 निदाधे स्थूलवसनं माघेतनुतराम्बरं।
पिङ्गं धत्ते विटो वेश्याहस्तोत्पुंसन कुङ्कुमैः।। -देशोपदेश 5/13

5 विलेपनाङ्कितपटः स्वदत्तनखमण्डितः।
वेश्यासम्भोगसौभाग्यं याति प्रकटयन् विटः।। -वही 5/14

6 रूक्षैः पश्चात्पुरः स्निग्धैः कचैः कृत्रिमकुञ्चितैः।
शिरोविलोलयन् ब्रूते वेश्यां केशधनो विटः।। -वही 5/18

व गन्ध युक्ति कथाओं के माध्यम से ठगते हैं। उनके ठगी के कार्य बहुत ही साहसपूर्ण एवं अधिपत्यपूर्ण होते हैं। मूढ़ कामियों को तो वे कल्पवृक्ष सदृश मानते हैं।[1] वृद्ध विटों पर भी कविवर क्षेमेन्द्र ने तीखे व्यङ्ग्य किये हैं, वृद्ध विट तो युवा विटों की अपेक्षा कहीं अधिक दुष्ट स्वभाव वाले होते हैं। वे लोगों को ठगने में अपेक्षाकृत अधिक निपुण होते हैं।[2] विट अपने बहुत वैभव के भक्षण के बाद अन्य की भी धन सम्पत्ति का विनाश करने वाले तथा सर्वदा वेश्याओं के वेश तथा मुखादि की प्रशंसा करने वाले होते हैं।[3] वह दुःख, क्रोध, विस्मय व लज्जादि विभिन्न मनोविकारों से युक्त होते हुए तिरस्कृत भी किये जाते हैं तथा कभी-कभी कामुकों को शूल सदृश भी लगते हैं।[4]

विट वस्तुतः कँटीले जाल की तरह बताये गये हैं, जो वेश्याओं को आवृत किये रहते हैं। कुछ निर्धन विट धनी पुरुषों को और उनके लड़कों को बहलाकर वेश्याओं के पास ले जाते हैं और उन वेश्याओं व उन लड़कों एवं पुरुषों से भी पैसा लेकर अपना काम चलाते हैं। पैसा समाप्त होन पर अपना स्वार्थ सिद्ध न होता देखकर वे शिकायत करके उन पुरुषों को उनके अभिभावकों तथा पारिवारिक सदस्यों के कठोर नियन्त्रण में रखवा देते हैं। इसका संकेत

---

1 रसायनैर्बिलज्ञानैर्योगशास्त्रैरसङ्गतैः।
गन्धयुक्ति कथाभिश्च मुग्धान् भुङ्क्ते जरद्विटः।। -वही 5/27

2 टक्कराकोटिटाङ्कार विस्फुटन् मस्तको रटन् ।
खल्वाटः शंकितो याति वेश्यावेश्म जरद्विटः।। - वही 5/23

3 भक्षितनिजबहुविभवाः परविभवक्षपणदीक्षिताः पश्चात् ।
अनिशं वेश्यावेशस्तुतिमुखरमुखा विटाश्चिन्त्याः।। -कलाविलास 9/39

4 इति दुःखकोपविस्मयलज्जाकुलिताः कथां मिथः कृत्वा।
कुसुमारामभ्रष्टा इव मधुपास्ते विटाः प्रययुः।। - समयमातृका 8/49

'समयमातृका' के एक पद्य से प्राप्त होता है जिसमें कुट्टनी द्वारा वणिक् पुत्र धूर्त, विटों के चंगुल से मुक्त होने के लिए कपटपूर्ण सलाह दे रही है[1]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि विटों के भी शोषणपूर्ण कृत्यों के वर्णन को देखकर इनकी चिन्तनीय दशा का ज्ञान होता है। कविवर ने समाज के बहुधा शोषकों पर तीखा व्यङ्ग्य किया है। कविवर ने विटों को समाज के सर्वाधिक दूषण के केन्द्र एवं वेश्याओं के गुप्त प्रयोजन की सिद्धि में पूर्ण रूप से सहायक के रूप में चित्रित किया है।

गौडीय छात्रों पर व्यङ्ग्य

कविवर क्षेमेन्द्र ने तात्कालिक दम्भी छात्रों पर भी व्यङ्ग्य के मध्यम से प्रहार किया है उन्होंने भारत के अनेक भागों से आये विशेषकर गौडदेश के विद्यार्थी जो धर्मशास्त्र के अध्ययन के लिए कश्मीर आते हैं, का उल्लेख किया है जब ये गौडीय विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आये थे तो भूखे और दुर्बल दिखलाई पड़ते थे किन्तु कश्मीर की सुन्दर जलवायु और पोषक भोजन ने इनके शरीर को हृष्ट पुष्ट बना दिया। ये विद्यार्थी यहाँ आकर ज्ञान की अपेक्षा भोजन में अधिक रुचि लेने लगते हैं और धर्मशास्त्राध्ययन के बावजूद भी देवताओं की अपेक्षा तथा गणिकाओं में आसक्ति विकसित करने लगते हैं।

सर्वप्रथम कविवर क्षेमेन्द्र ने विद्यालय में सदा वायीं ओर स्त्री को बैठाने वाले क्रोधी, विषैले, उग्रविषभोगी तथा तीखा त्रिशूल धारण करने वाले छात्रों को व्यङ्ग्य रूप में नमस्कार किया है।[2] पवित्र क्षत्रिय के भी छूने से व्यर्थालाप करने

---

[1] भुक्त्वा पीत्वा भवतः परधनवर्णाः स्ववित्तपरिहीणाः।
धूर्तास्त्वामेव पितुबन्धनयोग्यं प्रयच्छन्ति।। -समयमातृका 8/25

[2] नमश्छात्राय सततं सत्रे वामार्धहारिणे।
उग्राय विषभक्षाय शिवाय निशि शूलिने।। -देशोपदेश 6/1

वाले, दूसरे के भोजन पर मस्त रहने वाले गौडीय छात्रों के ऊपर कविवर ने अच्छा खासा व्यङ्ग्य किया है।[1] कवि ने छात्रों को तिलक लगाकर भोजन और मालिस से साँप के स्वभाव वाला बतलाया है।[2] उन गौड छात्रों को भुलाया नहीं जान सकता जो कश्मीर में विद्याध्ययन के लिए आते हैं, परन्तु बिना लिपि के जाने भी अहंकार से स्तब्ध के छात्र भाष्य तथा प्रभाकर मीमांसा पढ़ने लगते हैं।[3] गौड छात्र इतना दम्भी है कि सड़क पर अपने को सबके स्पर्श से बचाता है और अपनी चादर बगल में इस प्रकार दबाये रहता है कि मानो दम्भ के बोझ से दबे रहने के कारण वह अपने पार्श्व सिकोड़ कर रास्ते में चलता है।[4] कविवर ने गौडीय छात्र को वेश्यागामी बतलाकर उसका उपहास किया है।[5] वह कुट्टनी, वेश्या आदि से संसर्ग करता है और अध्ययन सम्बन्धी व्यय वेश्याओं तथा द्यूतकर्म में करता है।[6] कविवर ने छात्र की वेश्या संसर्ग समबन्धी अश्लील एवं अशोभनीय भावना पर व्यङ्ग्य किया है।[7] वह दैशिक (गौडीय छात्र) चमकते हुए

---

1 क्षत्रिणः सपवित्रस्य स्पर्शहुंकारकारिणः।
लजन्ते मुनयोऽप्यग्रे गौडस्यापरपाकिनः।। -वही 6/3

2 अवाप्ततिलकः सत्रे भोज्यैरुद्वर्तनैश्च सः।
भुजङ्गः कञ्चुकमिव त्यक्त्वा संजायते नवः।। वही 6/5

3 अलिपिज्ञोऽप्यहंकारस्तब्धो विप्रतिपत्तये।
गौडः करोति प्रारम्भं भाष्ये तर्के प्रभाकरे।। -वही 5/8

4 स्पर्शं परिहरन् याति गौडः कक्षाकृताञ्चलः।
कुञ्चितेनैकपार्श्वेन दम्भभारभरादिव।। -वही 5/9

5 लीलाञ्चि लतापाणि भ्रूविलासविकारकृत् ।
वेश्या वेश्माग्ररथ्यासु सायं भ्रमति दैशिकः।। - देशोपदेश 6/13

6 कितवः कुट्टनी वेश्या चर्मकारः सनापितः।
पञ्चगौडशरण्डस्य करण्डग्रन्थिभेदिनः।। -वही 6/14

7 यस्योपस्पृशः शौचे पर्याप्ता नाभवन् नदी
स एव भुङ्क्ते वेश्याभिरुत्सृष्टं मधुभोजनम् ।। -वही 6/19

सोने के कुण्डल त्रिगुण वालकी (तिपेची अँगूठी) पहनकर प्रातः काल कुबेर की भाँति निकलता है।[1] कवि ने गौड़ीय छात्र को छुरी की बहुत सी चोटें से विंधे पेटवाला, मरने मारने को तैयार यक्ष रूपी बताया है।[2] यह गौड छात्र द्वादशी को उपवास करने वाला तथा पकाये हुए मछली के मांस से उस व्रत का पारण करता है।[3] गौड छात्र, नापित, चर्मकार, धीवर व सैनिक आदि निम्न कोटि के वेश्यासक्त भ्रष्ट आचरण वाले लोगों के सम्पर्क में रहकर तथा आचरण हीन होकर छात्र विपरीत आचरण करते थे।[4] ये गौडछात्र वेश्याशक्त द्यूतादि निषिद्ध कर्मों में रहकर चारों आश्रमों में से एक भी आश्रम का पालन नहीं करते थे तथा न करने योग्य भोजन करते थे।[5] तथा परस्त्री के लिए प्रेम की बातें कहकर हँसते थे तथा जब दुकानदार इनसे अपना उधार माँगते थे तो ये उसे चाकू दिखला देते थे। कविवर ने इनको वेश्यावारज्वर से पीड़ित रहने वाला छात्रालय रूपी सन्निपात का रोगी तथा मठ का नाश करने वाला बताया है।[6] यह छात्र निम्न कार्य में लिप्त होकर चौरादि कर्म करने में नहीं चूकता है तथा अहंकार से युक्त

---

1 चञ्चत्कर्णसुवर्णांकः स्थूलत्रिगुणवालकी।
प्रभाते धनदाकारस्तूणं निर्याति दैशिकः।। -वही 6/23

2 अनेकच्छुरिकाघातक्षुण्णकुक्षेः क्षयैषिणः।
को नाम गौडयक्षस्य सत्रे याति विपक्षताम् ।। -वही 6/26

3 द्वादश्यामन्वद् गौडः सत्रच्छेदादुपोषितः।
स्वयं पक्वेन कुरुते मत्स्यमांसेन पारणम् ।। -वही 6/28

4 वेश्यासक्तो द्यूतकरश्चाक्रिकः प्रायकृत् सदा।
कुक्षिभेदी मठवने छात्रः पञ्चतपा मुनिः।। -देशोपदेश 6/31

5 न ब्रह्मचारी न गृही न वानस्थो न वा यतिः।
पञ्चमः पञ्चभद्राख्यश्छात्राणामयमाश्रमः।। -वही 6/32

6 वेश्यावारज्वरः सत्रसन्निपातो मठक्षयः।
न संग्रहैर्न हृदयैः साध्यतामेति दैशिकः।। -वही 6/34

होकर, एवं गर्दन उठाकर चलता है तथा पूछे जाने पर अपने को ठाकुर बताता है।[1]

वेश्या-संसर्ग से बने छात्र के बन्दर-सदृश मुख पर कविवर क्षेमेन्द्र ने व्यङ्ग्य किया है।[2] इसे पिशाच की तरह बताया गया है।[3] कविवर ने इन छात्रों को छात्रालय का माल हड़पने वाले तथा मुर्गेरूप में तूर्य की तरह बांग देने वाले बतलाया है।[4] स्नान, दान, व्रत व श्राद्धादि अकारण क्रोध से जलता हुआ अत्याधुनिक समय में भी प्रचलित गाली का प्रयोग करता हुआ वह छात्र सभी दुष्कर्मों को करता है।[5] कविवर ने गौडीय छात्र को पापी तथा विकारी बताते हुए उसको कुमारी कन्या के साथ रमण करने वाला तथा खिन्नतापूर्ण दिन व्यतीत करने वाला बताया है।[6]

---

1 चाक्रिकः शिवतां यातश्चौरः कर्मकरैर्धृतः।
गौडो गर्वोन्नतग्रीवष्ठक्कुरोऽस्मीति भाषते।। -वही 6/36

2 शीतकाले शिरः शाटी वेश्या वेश्मसु दैशिकः।
हसन् कलामुखः शुक्लदशनो वानरायते।। -देशोपदेश 6/20

3 स पिशाच इवाभाति दिनान्ते द्यूतनिर्जितः।
नग्नो भग्नमुखः पांसुलिप्तसत्रपसत्रपः।। -वही 6/24

4 सत्रान्नेनोदरस्थेन ये मृताः बुद्धदेशिकाः।
ते सत्रतूर्ये क्रोशन्ति जातास्तत्रैव कुक्कुटाः। -वही 6/37

5 स्नाने दाने व्रते श्राद्धे निष्कारणरुषा ज्वलन् ।
मातरं चोदयामीति वदन् सर्वं करोति सः।। - वही 6/44

6 व्रजति दिनमखिन्नं सत्रपां सत्रपालीं,
रमयति च कुमारीं दत्तरूपो विरूपः।
क्षपयति भजमानः स्वां कुलालीं कुलालीं
विलसतिमठचट्टः पापकारी विकारी।। -वही 6/45

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि तात्कालिक समाज में छात्रों की स्थिति बहुत ही शोचनीय थी तथा उनकी दुष्टता व दुश्चरित्रता के कारण समाज के अंकुश का अभाव था। तथा इस दशा में कविवर क्षेमेन्द्र भी चिन्तित से प्रतीत होते हैं। कविवर ने छात्रों के दूषित पक्ष को उनके सामने रखकर उनके सुधार हेतु प्रयास भी किया है जो इनके साहसिक कार्य का प्रतीक है।

दम्भी लोगों पर व्यङ्ग्य

कविवर क्षेमेन्द्र ने इह लौकिक जीवन की अनेक तुच्छ उपलब्धियों पर अहं भावना से युक्त दम्भी लोगों पर बहुत ही तीक्ष्ण एवं वास्तविक व्यङ्ग्य किया है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने दम्भ के विषय में बतलाते हुए कहा है कि यह स्वभाव गम्भीर, कुटिल सर्पों से घिरे धन के कुंडे की तरह इस लोक में स्थित है।[1] यह दम्भ धन के इच्छुओं के लिए माया के रहस्य का मन्त्र तथा चिन्तामणि, प्रभावकारी, धूर्तों की धन दौलत को भी अपने वश में कर लेने वाला है।[2] कविवर नेदम्भ को मनुष्य के हृदय को ठगने वाला, मायामय खंभा, संसार जीतने का आरम्भ तथा माया का प्रारम्भ बतलाकर व्यङ्ग्य रूप में अदृष्ट दम्भ का जयघोष किया है।[3] पानी के अन्दर चलते हुए मच्छ की चाल की तरह दम्भी की गति किसके द्वारा जानी जा सकती है? न उसके हाथ हैं, न पैर हैं, न शिर है

---

1 सोऽयं निधान कुम्भो दम्भो नाम स्वभावगम्भीरः।
कुटिलैः कुहकभुजङ्गैः संवृतवदनः स्थितो लोके।। -कलाविलास 1/41

2 माया-रहस्यमन्त्रश्चिन्तामणिरीप्सितार्थानाम् ।
दम्भः प्रभावकारी धूर्तानां श्रीवशीकरणम् ।।- कलाविलास 1/42

3 जनहृदयविप्रलम्भो मायास्तम्भो जयज्जयारम्भः।
जयति सदानुपलम्भोमायारम्भोदये दम्भः।। -कलाविलास 1/45

और वह दिखलाई भी नहीं देता।[1] अनेक प्रकार के दम्भियों का भी उल्लेख मिलता है कविवर क्षेमेन्द्र ने दम्भियों के विभिन्न भेद बतलाये हैं।[2] कविवर ने दम्भियों के विभिन्न लक्षण बताये हैं और उनके स्वरूप को भी उपस्थित करते हुए कहा है कि वह हल्की दाढ़ी, कटे हुए नाखून और बाल वाला, बाल बढ़ाए हुए, जटाधारी अथवा लम्बी दाढ़ी वाला, बहुत मिट्टी लगाने वाला, कम बोलने वाला, जीव मरने के डर से समलकर जूते रखने वाला, मोटी गाँठ वाली पवित्री पहनने वाला, पीठ पीछे शिकारी डालने वाला, वस्त्र का आँचल रखकर हाथ फंसने से मानो हाथ में बरतन लेकर चलने वाला, अंगुलियाँ न चाकर बहस मुबाहसे में पंडिताई दिखाने वाला ढोंग से जप करने से चलते ओंठों वाला, नगर की गलियों में भीड़ पर ध्यान रखने वाला नाटकीय भाव से चिल्लू रोपकर आचमनों से तथा तीर्थ में देर तक नहाने से सब लोगों को रोक रखने वाला, बार-बार कान की लौर छूने वाला, सी-सी करके तथा दाँतों की कट कटाहट से जाड़े में नहाने की कठिनाई व्यक्त करने वाला, लम्बा तिलक लगाकर विधिपूर्वक देवपूजन दिखलाने वाला, शिर पर फूल खोंसे हुए, कौए की तरह इधर-उधर आँखें चलाने वाला ऐसे रूप का जो पुरुष है वही दम्भी है।[3] निर्गुणों को दंडवत

---

[1] मत्स्यस्येवाप्सु सदा दम्भस्य ज्ञायते गतिः केन।
नास्यकरौ न च पादौ न शिरो दुर्लक्ष्य एवासौ।। -वही 1/43

[2] क. व्रनियमैर्बकदम्भः संवृतनियमैश्च कूर्मजो दम्भः।
निभृतगति नयननियमैर्घोरो मार्जारजो दम्भः।। -वही 1/48

ख. बकदम्भोदम्भपतिर्दम्भनरेन्द्रश्च कूर्मजो दम्भः।
मार्जारदम्भ एष प्राप्तो दम्भेषु चक्रवर्तित्वम् ।। -वही 1/49

[3] क. नीचनखश्मश्रुकचश्चूली जटिलः प्रलम्बकूर्चो वा।
बहुमृत्तिकापिशाचः परिमितभाषी प्रयत्नपादत्रः।।

ख. स्थूलग्रन्थिपवित्रकपृष्ठार्पितहेमवल्लीकः।
कक्षार्पितपटपल्लवरुद्धभुजो भाण्डहस्त इव।।

प्रणाम करने वाला, गुणियों से ठिठाई करने वाला, रिश्तेदारों से द्वेष करने वाला, परायों से दया के साथ भाईचारा रखने वाला, कीर्ति का इच्छुक दंभी धूर्त होता है।[1] काम के समय सिर झुकाने और सैकड़ों खुशामदें करने वाला, काम समाप्त हो जाने पर भौंहें तानकर चुपरह जाने वाला निर्दयी दम्भी होता है।[2] कविवर ने दम्भी को मुण्डक, जटाधारी, नंगा, छत्रधारी, दण्डधारी, गेरुआ कपड़े पहनने वाला और शरीर में भस्म रमाने वाला, भोगी तथा चारों ओर घूमने वाला बतलाया है।[3] दम्भी गंजी खोपड़ी वाला, मोटा-ताजा, दुबला-पतला अथवा तापस का रूप बनाये हुए, शिर पर दुपट्टा लपेटे हुए अथवा ऊँचा साफा बाँधे रहता है।[4]

ग. अङ्गुलिभङ्गविकल्पनविविधविवादप्रवृत्तपाण्डित्यः।
जपचपलोष्ठः सजने ध्यानपरो नगररथ्यासु।।

घ. साभिनयाञ्चितचुलकैराचमनैः सुचिरमज्जनैस्तीर्थे।
संरुद्धसकललोकः पुनः पुनः कर्णकोणसंस्पर्शी।।

ङ. सीत्कृदन्तनिनादावेतिहेमन्तदुःसहस्नानः।
विस्तीर्णतिलकचर्चासूचितसर्वोपचारसुरपूजः।।

च. शिरसा बिभर्ति कुसुमं विनिपतितां काकदृष्टिमिव रचयन् ।
एवं रूपः पुरुषो यो यः स स दाम्भिको ज्ञेयः।। -कलाविलास 1/50-55

1. निर्गुणलोकप्रणतः सगुणे स्तब्धः स्वबन्धुषु द्वेषी।
परजनकरूणाबन्धुः कीर्त्यर्थी दाम्भिको धूर्तः।। -वही 1/56

2. कार्योपयोगकाले प्रणतशिराश्चाटुशतकारी।
सभ्रूभङ्गो मौनी कृतकार्यो दाम्भिकः क्रूरः।। -कलाविलास 1/57

3. मुण्डको जटिलः नग्नश्छत्री दण्डी कषायचीरी वा।
भस्मस्मेरशरीरो दिशि दिशि भोगी विजृम्भते दम्भः।। -वही 1/62

4. खल्वाटः स्थूलवपुः शुष्कतनुर्मुनिसमानरूपो वा।
शाटकवेष्टितशीर्षश्चैत्योन्नतशिखरवेष्टनोवापि।। -वही 1/63

दम्भी वस्तुतः बहुत मायावी होते हैं तथा बहुरुपों वाले होते हैं तथा उनके पारिवारिक सदस्य भी इन्हीं की तरह होते हैं। दम्भी के माता-पिता व स्त्री तथा पुत्रादि भी क्रमशः लोभ, माया, कुटिलता व दम्भ ही होते हैं।[1] कविवर ने दम्भ को ठगों के गुट का कल्पवृक्ष बताया है तथा उदाहरण रूप में दम्भ से विष्णु के द्वारा तीनों लोकों को नाप लिए जाने का भी विवेचन किया है।[2]

मदपूर्ण लोगों पर व्यङ्ग्य

कविवर क्षेमेन्द्र ने मद को ही सम्पूर्ण लोगों का एक मात्र शत्रु माना है जिसके शरीर में प्रवेश करने से व्यक्ति न सुनता है और न देखता ही है।[3] सत् युग में दम (इन्द्रिय निग्रह) की प्रधानता थी किन्तु कलियुग में दम शब्द के विपरीत शब्द मद की प्रधानता है।[4] कविवर ने चुप रहना, बड़बड़ाना, ऊपर देखना, व्यर्थ में इधर-उधर आखें फेरना, बदन ऐंठना, ये मद के रूप बताये हैं।[5] शौर्यमद, रूपमद, शृङ्गारमद, कुल की उन्नति का मद, ये सब प्राणियों के विभवमद की जड़ से पैदा हुए मद रूपी वृक्ष हैं।[6] मद के अनेक हेतुओं का

---

[1] लोभः पितातिवृद्धो जननी माया सहोदरः कूटः।
कुटिलकृतिश्च गृहिणी पुत्रो दम्भस्य हुंकारः।। -वही 1/64

[2] दम्भविकारः पुरतो वञ्चकचक्रस्य कल्पवृक्षोऽयम् ।
वामनदम्भेन पुरा हरिणा त्रैलोक्यमाक्रान्तम् ।। -वही 1/96

[3] एकः सकलजनानां हृदयेषु कृतास्पदो मदः शत्रुः।
येनाविष्टशरीरो न शृणोति न पश्यति स्तब्धः।। कलाविलास 6/1

[4] विजितात्मनां जनानामभवद् यः कृतयुगे दमो नाम।
सोऽयं विपरीततया मदः स्थितः कलियुगे पुंसाम् ।। -वही 6/2

[5] मौनं वदननिकूणनमूर्ध्वेक्षणमन्यलक्ष्यता चाक्ष्णोः।
गात्रविलेपनवेष्टनमेग्र्यं रूपं मदस्यैतत् ।। -वही 6/3

[6] शौर्यमदो रूपमदः शृङ्गारमदः कुलोन्नतिमदश्च।
विभवमदमूलजाता मदवृक्षा देहिनामेते।। -वही 6/4

कविवर ने उल्लेख किया है। उन्होंने 'दर्पदलन' नामक लघुकाव्य में तो मद के सात हेतु कुल, वित्त, श्रुत, रूप, शौर्य, दान व तप बताये हैं। किन्तु 'कला विलास' में कविवर ने शौर्य, रूप, शृंङ्गार, कुलोन्नति, वेभव, व मद्यमद आदि का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया है कि सभी मद दम्भी पुरुष को गर्त में ले जाने में सहायक हैं। उन्होंने बहुत ही सूक्ष्म भाव प्रस्तुत करते हुए कहा है कि शौर्य, रूप, काम व वैभव आदि मदों से पूर्ण पुरुष क्रमशः, भुजा, दर्पण, स्त्री का दर्शी होते हुए भी अन्धा हो जाता है।[1] कविवर ने धन के मद को आत्मराग की तरह बताया है।[2] तपस्वीमद एवं भक्तिमद के विषय में बलताते हुए कविवर ने कहा है कि तपस्वीमद से युक्त पुरुष अभिमान के कारण जमीन को भी नहीं देखता है व सदैव आकाशदर्शी होता है, तथा भक्तिमद से युक्त व्यक्ति अपने शरीर की सुध-बुध भूल जाता है और स्वभाव से चञ्चल होता है।[3] क्रोध से लाल आँखों वाला, दूसरे की जरासी बात भी न सुनने वाला, व्यर्थालाप करने वाला ऐसा भयंकर श्रुतमद व्यक्तियों के शारीरिक विकार का मूर्तस्वरूप है।[4] कविवर ने अपने पुरुषों के प्रताप की कथा से अपने कार्य को भूल जाने वाले कुलमद को पुरुष के दीर्घदर्शी महाज्ञान की तरह बताया है।[5] कविवर ने मद्यमदी को भी

---

1 शौर्यमदो भुजदर्शी रूपमदो दर्पणादिदर्शी च।
कामभदः स्त्रीदर्शी विभवमदश्चैव जात्यन्धः।। -कलाविलास 6/6

2 अन्तः सुखरसमूर्च्छामीलितनयनः समाहितध्यानः।
धनमद एष नराणामात्मारामोपमः कोऽपि।। -वही 6/7

3 स्तम्भान् न पश्यति भुवं खेचरदर्शी सदा तपस्विमदः।
भक्तिमदोऽद्भुतकारी विस्मृतदेहश्चलः प्रकृत्यैव।। -वही 6/9

4 आकोपरक्तनयनः परवाङ्मात्रासहः प्रलापी च।
विषयः श्रुतमदनामा धातुक्षोभो नृणां मूर्तः।। -वही 6/10

5 पूर्वपुरुषप्रतापप्रथितकथाविस्मृतान्यनिजकृत्यः।
कुलमद एकः पुंसा सुदीर्घदर्शी महाज्ञानः।। -वही 6/12

समानदर्शी बताते हुए बहुत ही मनोरञ्जक व्यङ्ग्य किया है।[1] इसी समदर्शी भाव में मद्यमदयुक्त व्यक्ति अपनी तथा परायी बुद्धि से परे होकर अपनी पत्नी को पर पुरुष द्वारा संसक्त देखता हुआ भी कुछ नहीं कर पाता है।[2]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने मद के दोषों एवं मदपूर्ण लोगों के दूषित कार्यों का व्यङ्ग्य रूप में वर्णन कर सज्जन लोगों के प्रति उपकार किया है।

विभिन्न धूर्तों पर व्यङ्ग्य

कविवर क्षेमेन्द्र ने तात्कालिक वैद्य, ज्योतिषी, स्वर्णकार, संन्यासी व दवा विक्रेता आदि के गलत कार्यों पर तीखा एवं मनोरञ्जक व्यङ्ग्य किया है जो आधुनिक परिवेश में भी पूर्णतः प्रासंगिक है।

वैद्यों पर व्यङ्ग्य

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में हम तात्कालिक उस वैद्य का वर्णन पाते हैं, जो मिथ्या चिकित्सकीय औषधियाँ रखता है, जो अनेकानेक रोगियों के धनहरण के साथ ही साथ उन्हें मृत्यु के मुख को प्राप्त करा देता है, परन्तु अन्त में महान् सफलता उसका वारण करती है और वह बहुत ही प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।[3] कविवर ने दुःसह और लालची वैद्य को भयंकर प्यास लाने वाली गर्मी के दिनों की तरह लोगों को सोख लेने वाला बतलाया है।[4] तथा बहुतों को

---

1 विद्यावति विप्रजने गवि हस्तिनि कुक्कुरे श्वपाके च।
मद्यमदः समदर्शी स्वपरविभागं न जानाति।। -कलाविलास 6/16

2 परपतिचुम्बनसक्तां पश्यति दयितां न याति संतापम् ।
क्षीबोऽतिगाढरागं पीत्वा मधुवीतरागः किम् ।। -वही 6/19

3 विविधौषधपरिवर्तैर्योगैर्जिज्ञासया स्वविद्यायाः।
हत्वा नृणां सहस्रं पश्चाद् वैद्यो भवेत् सिद्धः।। -कलाविलास 9/4

4 एते हि देहदाहात् विरहा इव दुःसहा भिषजः।
गीष्मदिवसा इवोग्रा बहुतृष्णा शेषयन्त्येव।। -वही 9/3

मारने वाले, सर्प के समान बहुतों की मृत्यु का कारण विद्याविहीन वैद्य को व्यङ्ग्य रूप में नमस्कार किया है।[1] उन्होंने तात्कालिक वैद्यों द्वारा स्त्री रोगियों के रोग के निरीक्षण के बहाने से गुह्यांग स्पर्श व स्तनस्पर्श जैसे प्रच्छन्न प्रयोजन का भी पर्दाफास किया है। यह वैद्य स्त्रियों के गुह्यांग को छूने वाला, अधिक खाने वाला, लोगों के प्राण हरण करने वाला, मनुष्यों में त्रिदोष उत्पन्न करने वाला भी वास्तव में वैद्य है, ज्वर नहीं।[2] कविवर ने मूर्ख वैद्य, शक्तिशाली कायस्थ और दुराचारी गुरु इन तीनों को प्रजा के क्षय का कारण बताया है।[3] कवि ने वैद्य को कालकूट विष, सर्प अथवा वेताल जो काफी मांस से तुरन्त अनुकूल हो जाने वाला तथा क्रोधी, वायु, आयु का क्षय करने वाला, हाथ के स्पर्श से कफ, वायु और पित्त के दोष को दूर करने वाला तथा इन्द्रियों का नाश करने वाला बतला कर उस पर तीखा व्यङ्ग्य किया है।[4] वैद्यों पर व्यङ्ग्य करते हुए कहा गया है कि वे रोगी के सम्पूर्ण धन का हरण करने वाले होते हैं जबकि ज्ञान चूर्ण के आधे श्लोक का ही रहता है।[5] कविवर ने नेत्रचिकित्सा के वैद्य को सम्पूर्ण जगत्

---

[1] नमो विद्याविहीनाय वैद्यायावद्यकारिणे।
निहितानेकलोकाय सर्पायेवापमृत्यवे।। नर्ममाला 2/68

[2] गुह्याङ्गस्पर्शकृत् स्त्रीणां बह्वशी जीवितापहः।
नृणां त्रिदोषकृत्सत्यं वैद्य एव न तु ज्वरः।। -वही 2/76

[3] विद्याविरहिता वैद्याः कायस्थाः प्रभविष्णवः।
दुराचाराश्च गुरवः प्रजानां क्षयहेतवः।। -वही 2/77

[4] क. स वैद्यः कालकूटो वा व्यालो वेताल एव वा।
भूयसा याति मांसेन यः क्षिप्रमनुकूलताम् ।। -नर्ममाला 2/72

ख. स वैद्य एव कुपितो वायुरायुः क्षयङ्करः।
हस्तस्पर्शेनविमलक्षालकः क्षपितेन्द्रियः।। - वही 2/73

[5] आतुरधनसम्पूर्णचूर्णार्धश्लोकपाठपाण्डित्यः।
वैद्यो गृहमेति गुरोः शिष्यधनव्याधिभक्षस्य।। -देशोपदेश 8/33

को अन्धा करने वाला मात्र बताया है।[1] उन्होंने वैद्यों पर उपहास बहुत ही उपयुक्त भाषा में किया है। समाज में फैले नीम हकीम एवं आतुर व्यक्तियों से भी मोल-चाल करके धन लाने वाले वैद्यों पर उनकी लेखनी ने तीखा प्रहार किया है। उनके लघुकाव्य 'समयमातृका' में कलावती आतुर व्यक्तियों की [illegible] वैद्याधम द्वारा अनुपयुक्त चिकित्सा द्वारा अपनी नानी के बध को अपने मित्र को बताया है।[2] अन्यत्र स्थान पर भी वैद्यों के शोषण पर व्यङ्ग्य का वर्णन प्राप्त होता है। वैध को यमराज का भाई बताते हुए तथा उसे नमस्कार करते हुए कवि ने उसे धन एवं प्राण दोनों का ही हर्त्ता बताया है।[3] कविवर ने वैध को व्यङ्ग्य रूप में नमस्कार करते हुए उसे सब मनुष्यों को नष्ट करने वाला तथा यमराज का भार वाहक बताया है।[4] वस्तुतः वैद्य को अर्थ और प्राण का चिकित्सक है वह व्याधि (रोग) का चिकित्सक नहीं हैं।[5] यदि नगरोत्सव की यात्रा से विवाहादि

---

[1] चक्षुर्वैद्योऽयमायातस्तपस्वी सर्वसंश्रयः।
किंशारुवर्तिभिर्येन सर्वमन्धीकृतं जगत् ।। -नर्ममाला 3/59

[2] क. सा सखे करभग्रीवा मातुर्माता स्थिरस्थितिः।
व्याली गृहनिधानस्य हता वैद्याधमेन मे।। -समयमातृका 1/27

ख. योऽसाववधविद्याविद्वैद्यः सद्यः क्षयोद्यतः।
दर्पादातुरवित्तेन वृद्धोऽपि तरुणायते।। -वही 1/28

[3] वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराजसहोदरः।
यमस्तु हरति प्राणान् त्वं च धनानि च।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, कुवैद्यनिन्दा, पद्य 4

[4] वैद्यराज नमस्तुभ्यं क्षपिताशेषमानवः।
त्वयि विन्यस्तभारोऽयं कृतान्तः सुखमेधते।। -वही पद्य 8

[5] चिकित्सकोऽर्थप्राणानां व्याधीनामचिकित्सकः।
आजीवमीश्वरः शूली येन न त्यज्यते जनः।। - नर्ममाला 2/71

में अतिभोजन से जनता मन्ध रोग से ग्रस्त हो जाय तो वह वैद्य के शनि का फल है।[1]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तात्कालिक समय में वैद्य जो प्राणों का रक्षक माना जाता है वह प्राणों के भक्षक के रूप में प्रतीत होता है। अतः कविवर ने वैद्यों पर बहुत ही तीखा व्यङ्ग्य किया है तथा उनके कपटपूर्ण व्यवहार एवं अश्लील क्रियाकलापों को भी सबके सामने रख दिया है। वस्तुतः इस प्रकार का वर्णन कविवर के गहन सामाजिक अनुभव का ही फल हो सकता है।

ज्योतिषियों पर व्यङ्ग्य

ज्योतिषी स्वभाव से सरल विभिन्न व्यक्तियों को मनानुकूल विचारों को कहते हुए तथा उन्हें विभिन्न प्रकार से विश्वस्त कर धनार्जन करता है। वह साधारण कपटपूर्ण ज्ञान से युक्त होकर ज्योतिष की गणना करता हुआ मूर्खों को ठगता हुआ कार्य करता है तथा वह ग्रह की दुर्बलता देखकर, विविध प्रकार के रोग बतलाकर मिथ्या मन्त्रों द्वारा निदान की भी बात करता है।

सर्वप्रथम कविवर ने ज्योतिषशास्त्र को जानने वाले वर्षा और सूखा के विषय में मछुए से पूछने वाले ज्योतिषी को व्यङ्ग्य रूप में नमस्कार किया है।[2] वह आकाश सम्बन्धी भविष्य कथन को कहते हुए अपने पीठ पीछे विभिन्न लोगों के साथ क्रीड़ासक्त अपनी गृहिणी के बारे में नहीं जानता है।[3] इस प्रकार के

---

1 नगरोत्सवयात्रासु विवाहेष्वतिभोजनात् ।
जनाति याति यन् मान्द्यं तद् वैद्यस्य शनैः फलम् ।। -वही 2/75

2 ज्योतिःशास्त्रविदे तस्मै नमोऽस्तु ज्ञानचक्षुसे।
वर्षं पृच्छत्यवर्षं वा धीवरान् यो विनष्टधीः।। -नर्ममाला 2/82

3 गणपति गगने गणकश्चन्द्रेण समागमं विशाखायाः।
विविध भुजंगक्रीड़ासक्तां गृहिणीं न जानाति।। -कलाविलास 9/6

साधारण ज्ञान से युक्त होता हुआ वैद्यक व ज्योतिषशास्त्र दानों का ज्ञानी बनने का दावा करता है।[1] वह (ज्योतिषी) स्त्रियों को भूतपिशाचादि से ग्रस्त बतलाकर उन्हें नग्नादि अवस्था में कर पिशाच मुक्त करने का उपाय बताता है।[2] वह जनश्रुति से वधु के चरित्र को जानता हुआ झूठे राशि चक्रादि बनाकर अन्त में धीरे-धीरे कहता हुआ स्पष्ट करता है वह वधू रतिकाम से पीड़ित है।[3] ज्योतिषी राशिचक्र फैला कर, मुँह बनाकर, ग्रहचिन्ता की नकल करते हुए बहुत देर बाद प्रश्न कर्त्ता का जवाब देता है।[4]

छद्मरूपी ज्योतिषियों द्वारा समाज के रूढ़िग्रस्त, भूतभीत भोले-भाले स्त्री पुरुषों का किस तरह शोषण किया जाता है और किस तरह स्त्रियों को अपने शील तक का शोषण कराने को विवश होना होना पड़ता है इसका यथार्थ चित्रण कवि ने किया है। यही कविवर क्षेमेन्द्र की यथार्थ दृष्टि है।

स्वर्णकारों पर व्यङ्ग्य

कविवर क्षेमेन्द्र ने तात्कालिक स्वर्णकारों पर भी खुले भावों में तीखा व्यङ्ग्य किया है, जो विभिन्न प्रकार के स्वभाव से सरल लोगों की सम्पत्ति का

---

1 इति साधारण ज्ञानमन्त्रवैद्यकमिश्रितम् ।
ज्योतिःशास्त्रं विगणयन् यो मुष्णाति जडाशयान् ।। -नर्ममाला 2/87

2 दुर्निवारश्च नारीणां पिशाचो रतिरागकृत् ।
पुनः शून्यगृहे स्नाता गुह्यकेन निरम्बरा।
गृहीतेत्यत्र पश्यामि चक्रे शुक्रसमागमात् ।। -वही 2/91

3 क. प्राङ्‌नियोगिवधूवृत्तं जानन्नपि जनश्रुतम् ।
धूर्तो धूलिपटे चक्रे राशिचक्रं मुधैव सः।। -वही 2/88

ख. ततोऽवदन् मन्दमन्दं प्रोक्षिप्तभ्रूलतो मुहुः।
इयमापाण्डुरमुखी रतिकामेन पीडिता।। -वही 2/90

4 विन्यासस्य राशिचक्रं ग्रहचिन्तां नाटयन् मुखविकारैः।
अनुवदति चिराद् गणको यत् किंचित् प्राश्निकेनोक्तम् ।। -कलाविलास 9/5

हरण करते हैं। कविवर ने लोक प्रचलित बात कहते हुए स्वर्णकार को पापी व चाण्डाल इत्यादि शब्दों के द्वारा धिक्कारा है। कविवर ने धनों का सार, सम्पत्ति का विभूषण तथा विपत्ती में रक्षक सोने को इन पापी स्वर्णकारों के द्वारा तेज हरने के बाद चुराये जाने का उल्लेख किया है।[1] कवि ने स्वर्णकारों की तुलना चाण्डाल से करते हुए उसे सदैव गन्दा, पापी, चाण्डाल, जैसे [illegible] छूकर ब्राह्मण को दूषित कर देते हैं। उसी प्रकार हमेशा के गन्दे, पापी, चाण्डाल स्वर्णकार स्पर्शमात्र से ही स्वर्ण की कान्ति को दूषित कर देते हैं।[2] कविवर ने स्वर्ण कारों की विभिन्न मिश्रण वस्तुओं का भी उल्लेख किया है।[3] स्वर्णकारों की सोना तौलने की कपटपूर्ण सोलह कलाओं को भी कविवर ने उपास्थापित किया है।[4] कविवर ने स्वर्णकार की प्रश्न करना, विचित्र बातें कहना, खुजलाना भीतर की ओर दुपट्टे का पल्ला खींचना, दिन देखना, सूर्य देखना, अधिक हँसना, मक्खी हाँफना, तमासा देखना, अपनों से खिलवाड़ करना, पानी का बर्तन तोड़ना एवं बार-बार बाहर जाना इन बारह कपट पूर्ण चेष्टाओं का भी उल्लेख किया है।[5] स्वर्णकार सरल लोगों का स्वर्ण का हरण करने में विविध उपायों को

---

[1] सारं सकलधनानां संपत्सु विभूषणं विपदि रक्षा।
एते हरन्ति पापाः सततं तेजः परं हेम।। -कलाविलास 8/2

[2] सहसैव दूषयन्ति स्पर्शेन सुवर्णमुपहतच्छायम् ।
नित्याशुचयः पापाश्चण्डाला हेमकाराश्च।। -वही 8/3

[3] द्विपुटा स्फोटविपाका सुवर्णरसपायिनी सुताम्रकला।
सीसमलकाचचूर्णग्रहणपरा षट्कला मूषा।। -वही 8/6

[4] क. वक्रमुखी विषमपुटा सुषिरतला न्यस्तपारदा मृद्वी।
पक्षकटा ग्रन्थिमती सिक्थकला बहुगुणा पुरोनम्रा।। -वही 8/7

ख. वातभ्रान्ता तन्वी गुर्वी वा पुरुषवातधृतचूर्णा।
निर्जीवना सजीवा षोडश हेम्नस्तुलासु कलाः।। - वही 8/8

[5] क. प्रश्नः कथा विचित्रा कण्डूयनमंशुकान्तराकृष्टिः।

अपनाता हुआ स्वर्णनिर्मित आभूषणों के बदलने की कपटपूर्ण चालाकी का भी व्यङ्ग्य पूर्ण वर्णन किया है जो कविवर क्षेमेन्द्र के सूक्ष्म निरीक्षण का बोध कराता है।[1] कविवर ने इनको चौंसठ कलाओं से युक्त तथा ग्राहक के सामने ही उनके धन को चुराने में सक्षम कहकर उसकी निन्दा की है।[2] यह रसिक धनी को विनष्ट करने में भी सक्षम होता है।[3]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने तात्कालिक स्वर्णकारों के कपटपूर्ण व्यवहारों एवं उनके ठगने की विभिन्न कलाओं को पाठकों के समक्ष रखकर साहसिक कार्य किया है जो उनके गहन अनुभव का ही फल हो सकता है।

संन्यासियों पर व्यङ्ग्य

कविवर क्षेमेन्द्र ने संन्यासियों पर भी तीखा व्यङ्ग्य करते हुए उनके कपटपूर्ण बाह्य मिथ्या वेषों को निरर्थक बताया है।[4] इनके सम्बन्ध में विचार कर कविवर पाते हैं कि उन्होंने जिस वस्तु का परित्याग किया है वह केवल इनके मुड़े हुए शिरों का केशमात्र ही हैं। ये धूल के रंग के पीले परिधान धारण करते है जो क्षेमेन्द्र को इनके हृदय के कालुष्य का प्रतीक प्रतीत होते हैं।

दिनवेलार्कनिरीक्षणमतिहासो मक्षिकाक्षेपः।। -कलाविलास 8/11

ख. कौतुकदर्शनमसकृत् स्वजनकलिः सलिलपात्रभङ्गश्च।
बहिरपि गमनं बहुशो द्वादश चेष्टाकलास्तेषाम् ।। -वही 8/12

1 उज्ज्वलनेऽपि न तेषां पातनमतिसुकरमश्मकाले च।
सदृशविचित्राभरणे परिवर्तनलाघवप्रसारश्च।। -वही 8/16

2 एता हेमकराणां विचारलभ्याः कलाश्चतुःषष्टिः।
अन्या गूढाश्च कलाः सहस्रनेत्रोऽपि नो वेत्सि।। -वही 8/19

3 प्रथमं स्ववित्तमखिलं कनकार्थी भस्मसात् कृत्वा।
पश्चात् सधनान् रसिकान् विनाशयत्येव वर्णिकानिपुणः।। -वही 9/7

4 सरागकाषायकषायचित्तंशीलांशुकत्यागदिगम्बरं वा।
लौल्योद्भवद्भस्मभरप्रहासं व्रतं न वेषोद्भटतुल्यवृत्तम् ।। -दर्पदलनम् 7/13

इस प्रकार इनके अतिरिक्त भी कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज के अन्य वर्गों व जातियों में विद्यमान दोषों पर तीखा व्यङ्ग्य किया है। उन्होंने कुलवधू, गुरु, भट्ट, वणिक्, कवि, धातुवादी, द्यूतकर, निर्गुट पण्डित, जटाधर व लेखक आदि लोगों के दूषित पक्षों पर भी तीखा व्यङ्ग्य कसा है जो उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण का प्रतिफल हो सकता है।

कायस्थों पर व्यङ्ग्य

कविवर क्षेमेन्द्र की व्यङ्ग्ययुक्त रचनाओं का एकमात्र उद्देश्य न केवल सहृदयजनों का मनोरञ्जन करना है, अपितु समाज में फैली हुई कुप्रवृत्तियों, व्यभिचारों, अनाचारों व प्रवञ्चनाओं का उन्मूलन कर स्वच्छ वातावरण का निमार्ण करना भी था। उन्होंने ग्रामपटवारी (लेखपाल) आदि से लेकर जज (न्यायाधीश) के कार्यों तक की समान आलोचना की है। तात्कालिक समय में कायस्थ वर्ग ही जज, पटवारी, दिविर (क्लर्क) व अन्य प्रशासनिक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर स्थित था। कायस्थ वर्ग विभिन्न प्रवञ्चना के तरीकों को अपना कर समाज के सीधे-सादे लोगों का शोषण करता था।

कविवर ने सर्वप्रथम अपनी माया से समस्त संसार को मोह लेने वाले अजित कायस्थ को व्यङ्ग्य रूप में परमेश्वर बताया है।[1] तथा कवि ने सम्पूर्ण प्रपञ्च व माया से परिपूर्ण कायस्थ पर प्रसन्न कलि द्वारा साधु लोगों के विनाश हेतु पृथ्वी पर भेजा बतलाया है।[2] पृथ्वी पर जाकर कायस्थ ने विभिन्न पदों पर

---

[1] येनेदं स्वेच्छया सर्वं मायया मोहितं जगत् ।
स जयत्यजितः श्रीमान् कायस्थः परमेश्वरः।। -नर्ममाला 1/1

[2] क. कृतविश्वप्रपञ्चाय नमो मायाविधायिने।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणे पुरहारिणे।। -नर्ममाला 1/7

ख. तुष्टस्मेत्य वरदः कलिः साक्षादभाषत।
सर्वदेव विनाशाय गच्छ वत्स महीतलम् ।। -नर्ममाला 1/11

आरूढ़ होकर विभिन्न लोगों का शोषण करना आरम्भ कर दिया। इन विभिन्न पदों में दिविर (क्लर्क) पद सबसे व्यापक था जो विभिन्न क्षेत्रों में कार्यकारी था। दिविर शब्द से उस पद का बोध होता है जिसे आधुनिक भाषा में 'क्लर्क' कहा जाता है। दिविर शब्द को कविवर ने बहुत ही व्यङ्ग्यात्मक ढंग से परिभाषित किया है।[1] इस (कायस्थ वर्ग) की कलम (लेखनी) को कवि ने अस्त्र की संज्ञा दी है जिसके माध्यम से लोगों के धन व सम्पत्ति का शोषण किया जाता था।[2] कविवर ने उसको सेवा काल में लुभाने तथा ठगने में बहुरूपों वाला बताया है।[3] वह देवताओं को लूटने वाला, गायों का भोजन काटने वाला तथा दिन रात शास्त्र निन्दा का कार्य करता था।[4] अन्यत्र भी कायस्थ को दैवी प्रकोपों की भाँति ही जनता के दुःख का कारण माना गया है और उसे धूर्तता एवं क्रूरता का मिश्रित रूप माना गया है।[5] दिविर (क्लर्क) पद पर आधिष्ठित कायस्थ वर्ग अपनी लेखनी के दुरुपयोग से सारे विश्व को आक्रान्त कर काले हाथों से शोषित

---

[1] दैत्यक्षये कृते यस्माद् भवता दिवि रोदितम् ।
तस्मात् त्वं दिविरो नाम भुवि ख्यातो भविष्यसि।। -नर्ममाला 1/15

[2] क. अनेन कलमास्त्रेण मद्दत्तेन प्रहारिणा।
विच्छिन्नदीपकुसुमान् धूपहीनान् निरम्बरान् ।। -वही 1/12

ख. भ्रष्टालयान् धूलिलिप्तान् हाहा भूतान् स्वभिर्वृतान् ।
करिष्यसि सुरान् सर्वान् भक्तपानीयकांक्षिणः।। - वही 1/13

[3] सेवाकाले बहुमुखैर्लुब्धकैर्बहुबाहुभिः।
वञ्चने बहुमायैश्च बहुरूपैः सुरारिभिः।। -वही 1/23

[4] देवापहारिणा तेन गोघासलवणाच्छिदा।
भुज्यते पीयते भूरि दिविरेण दिवानिशम् ।। -वही 1/26

[5] काकाल्लौल्यं यमात् क्रौर्यं स्थपतेर्दृढघातिताम् ।
एकैकाक्षरमादाय कायस्थः केन निर्मितः।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, कायस्थनिन्दा, पद्य 1

धन का दुरूपयोग करता था।[1] ग्राम दिविर व जीवन दिविर भी जो कायस्थ वर्ग के ही थे, जो लोगों का शोषण करते थे, कविवर क्षेमेन्द्र ने बहुत ही तीखे शब्दों में इन पर व्यङ्ग्य है।[2] कविवर ने कायस्थों के साथ ही साथ कायस्थ सुन्दरियों पर भी व्यङ्ग्य करते हुए उन्हें गलत ढंग से उपार्जित धन का खर्च करने वाली व चरित्रहीन बताया है।[3] तथा उन्होंने अपने उपहास प्रधान लघुकाव्य 'कलाविलास' में भी कायस्थ वर्ग पर व्यङ्ग्य करते हुए कहा है कि कायस्थ वर्ग अपनी लेखनी का दुरुपयोग कर रेखामात्र को हटाकर सहित को रहित करने में थोड़ा भी संकोच नहीं करता था।[4] इसके अतिरिक्त सभी अंको को मिटा देना, व्यय वृद्धि करना, उत्पन्न तथा गोपन इत्यादि विभिन्न ठगी की क्रियाओं के माध्यन से यह वर्ग समाज के सीधे-सादे लोगों की सम्पत्ति और धन से हीन करने में पूर्णतया सफल था। इस प्रकार ठगने की विभिन्न विधाओं को कला संज्ञा देते हुए कविवर क्षेमेन्द्र ने कायस्थों की ठगी का चरमोत्कर्ष रूप में पर्दाफाश किया है।[5] कविवर ने कायस्थ के घृणित कार्यों पर व्यङ्ग्य करते हुए कहा है कि माता के उदर में स्थित

---

1 कलमाक्रान्तविश्वस्य मषीकृष्णस्य भोगिनः।
आसन्नबन्धस्यान्ते दिविरस्य धनेन किम् ।। -नर्ममाला 1/55

2 लिलेखचीरीचीत्कारतारं कलमरेखया।
अन्त्याङ्गुल्या सनिर्घोषं लालयोत्पुसिताक्षरः।। - वही 1/32

3 या पपौ याचितं चामं भग्नस्यूताश्मभाजने।
तयैव पीयते रौप्यपात्रे कस्तूरिकामधु।। - वही 1/47

4 एते हि चित्रगुप्ताश्चित्रधियोगुप्तकारिणो दिविराः।
रेखामात्रविनाशात् सहितं कुर्वन्ति ये रहितम् ।। -कलाविलास 5/11

5 क. वक्रलिपिन्यासकला सकलाङ्कनिमीलनकला च।
सततप्रवेशसंग्रहलोककला व्ययविवर्धनकला च।। -कलाविलास 5/13

ख. उत्पन्नगोपनकला नष्टविशीर्णप्रदर्शनकला च।
क्रयमाणैर्भरणकला योजनचर्यादिभिः क्षयकला च।। -वही 5/15

कायस्थ ने मांस समझकर उसकी आतों को नहीं खाया तो उसका कारण है दाँत न होना अर्थात् यदि उसके दाँत होते तो अपनी मा की आँतों तक को खा जाता।[1] तथा स्वर्ग में विद्यमान दिविर (क्लर्क) बिना मांस खाये, बिना मद्य पिये, बिना दूसरे के धन का अपहरण किये और दूसरे की निन्दा किये बिना रोता रहता है।[2] 'समयमातृका' में तो कविवर क्षेमेन्द्र ने जजों (भट्टों) द्वारा रिश्वत लेकर स्वयं को छल-कपट का आकार सिद्ध करते हुए वेश्या को ही धनी कामुक की सम्पत्ति की स्वामिनी बनने का विजयपत्र देना दिखाया गया है।[3] कायस्थ दिविर के द्वारा अनपेक्षित लोगों के भी ठगे जाने का कविवर ने वर्णन कर यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति यम के पाश से तो मुक्त हो सकता है, किन्तु इस संसार में कौन है, जो इसके पाश में न फँसे? वे सम्पूर्ण देवता, ब्राह्मण, पुर, नगर, ग्राम आदि को ठगने के साथ ही साथ अपने गुरु को भी ठगने की इच्छा वाले होते हैं।[4] कायस्थ की कलम की नोंक के द्वारा जनता मारी जाकर चिल्लाती है, फिर भी वह अपनी उन्नति के लिए यज्ञ करने की इच्छा करता है।[5]

---

1 कायस्थेनोदरस्थेन मातुरामिषशङ्कया।
अन्त्राणि यन्न मुक्तानि तत्र हेतुरदन्तता।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, कायस्थनिन्दा, पद्य2

2 विना मद्यं विना मांसं परस्वहरणं विना।
विना परापवादेन दिविरो दिवि रोदिति।। -वही, पद्य संख्या 3

3 उत्कोचारब्धसंघट्टैर्भट्टैः कूटरथादिभिः।
सादिष्टाभीष्टसम्पत्तिर्जग्राह जयपट्टकम् ।। -समयमातृका 2/42

4 लुण्ठितसकलसुरद्विज पुरनगरग्रामघोषसर्वस्वः।
पुनरपि हरणाकाङ्क्षी व्रजति गुरूं दीक्षतो दिविरः ।। -देशोपदेश 8/5

5 कलमशिखाहतजनता दीनतराक्रन्दलब्धविभवस्य।
दिविरस्योन्नति हेतोर्यागविधाने मतिर्भवति।। -वही 8/6

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा समाज के शोषकों व दूषित पक्षों पर किये गये व्यङ्ग्यपूर्ण वर्णनों के द्वारा स्पष्ट होता है कि तात्कालिक समाज में दूषित पक्ष दबने की अपेक्षा उग्र रूप से उठा हुआ था। कविवर क्षेमेन्द्र के द्वारा किये गये व्यङ्ग्य बहुत ही तीखे तथा हृदय को भेदने वाले हैं। यत्र तत्र इनके द्वारा किये गये व्यङ्ग्य अश्लील भी दिखाई पड़ते हैं, फिर भी इनकी भावना मुख्यतः समाज-सुधारक के रूप में हमारे सामने आती है। कविवर ने समाज में व्याप्त दूषित लोगों, तरीकों, प्रथाओं व व्यवसायों पर गृध्र-दृष्टि से अवलोकन कर तीखा व्यङ्ग्य लिखा है जिसके माध्यम से तात्कालिक समाज के दूषित पक्षों का पूर्णतः पर्दाफाश किया है उनके नग्न चित्र सबके समक्ष उपस्थित किये हैं, जो उनका तात्कालिक समाज को सुधारने का प्रयास है।

●●●

पञ्चम अध्याय

क्षेमेन्द्रोक्त विचार

भूमिका- बहु आयामी कर्तृत्व के कवि होने के कारण कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी लेखनी को समाजोपयोगी एवं मनुष्य के दैनिक जीवन से सम्बन्धित आदर्श-रूप विचारों में प्रयुक्त किया है। उन्होंने अपनी उपदेशप्रधान एवं सूक्त्यात्मक शैली में अपने विचारों को व्यक्त कर संस्कृत-साहित्य को समृद्ध ही नहीं, अपितु उपदेशपरक बना दिया है। इसीलिए उनके लघुकाव्य सहृदय-पाठक के लिए उपदेष्टा का कार्य करते हैं। उन्होंने एक ओर कुल, धन, विद्या एवं धर्म-सम्बन्धी विचार व्यक्त किये हैं, वहीं दूसरी ओर दान, तप, काम, रूप, शौर्य एवं मानव-आचरण सम्बन्धी विचारों को प्रदान कर समग्र भारतीय समाज के लिए उपकार का कार्य किया है। उन्होंने अपनी सूक्तिपरक, उपदेशप्रधान, सरल एवं सरस भाषा से युक्त विचारों के माध्यम से भारतीय समाज को कुमार्ग से हटकर सुमार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया है। उनमें कवि और उपदेष्टा का समन्वित रूप परिलक्षित होता है। उनकी रचनाएँ नीतिपरक विचारों एवं सुभाषितों की आकर हैं। समाजोपकारक विचारों को प्रदान करने में कविवर क्षेमेन्द्र भर्तृहरि कृत नीतिशतक, विष्णु शर्मा-कृत पञ्चतन्त्र, एवं चाणक्य-कृत नीतिदर्पण आदि से कम नहीं हैं। यदि उनके काव्यों का ठीक ढङ्ग से अवलोकन किया जाय तो कविवर क्षेमेन्द्र का अपना एक स्वतन्त्र सुभाषित कोष तैयार किया जा सकता है और यह अर्वाचीन कवि-समुदाय के लिए अनुकरणीय होगा।

क्षेमेन्द्रोक्त विचारों का सम्बन्धानुसार वर्गीकरण

आदि कवि वाल्मीकि एवं वेदव्यास को आदर्श मानने वाले कविवर क्षेमेन्द्र ने प्रायः ऐसे लघुकाव्यों की रचना की है, जो तात्कालिक समाज के साथ ही साथ आधुनिक समाज के लिए भी उपादेय हैं। उन्होंने मनुष्य के मनोभावों, विचारों, पुरुषार्थों व समाज-सम्बन्धी नीतियों को आदर्श रूप में वर्णित किया है।

कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा प्रतिपादित विचार सर्वथा आदर्श व समाजोपयोगी हैं। जिनको निम्नलिखित रूप से सम्बन्धानुसार विभाजित किया जा सकता है-

कुल-सम्बन्धी विचार

कविवर क्षेमेन्द्र ने कुल समबन्धी विषय पर गुण को प्रधानता देते हुए कुल की अपेक्षा गुण को श्रेष्ठ बतलाया है तथा पुष्टि के लिए सबके मन को आकृष्ट करने वाले कमल का कुल अग्राह्य पङ्क (कीचड़) कहा है।[1] इसीप्रकार का भाव प्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ पञ्चतन्त्र में भी प्राप्त होता है।[2]

सम्भवतः इसी को आदर्श मानकर कविवर क्षेमेन्द्र ने भी ऐतिहासिक महापुरुषों के मूल की विवेचना की है। दिलीप, रघु और राम के पूर्वज त्रिशङ्कु थे, जो स्वयं चाण्डाल की सन्तान थे।[3] वशिष्ठ गणिका की सन्तान थे। कर्ण की माता कन्या ही थी और पाण्डव भी क्षेत्रज पुत्र थे।[4]

इस प्रकार मानव-जीवन में कुल का कोई महत्त्व दिखलाई नहीं पड़ता है। महाभारत के अनुसार भी वृत्त के अभाव में कुल का कोई महत्त्व नहीं है।[5] क्षेमेन्द्र के पूर्ववर्ती अनेक़ ग्रन्थों में कुल व शील की तुलना करते हुए कुल की

---

1 कुलस्य कमलस्येव मूलमन्विष्यते यदि।
दोषपङ्कप्रसक्तान्तस्तदावश्यं प्रकाशते।। -दर्पदलन 1/7

2 कौशेयं कृमिजं सुवर्णमुपलाच्छर्वापिगौरोमतः।
पङ्कात्तामरसं शशाङ्कमुदधेरिन्दीवरं गोमपात् ।। -पञ्चतन्त्र 1/103

3 सूर्यवंशे त्रिशङ्कुर्यश्चण्डालोऽभून् महीपतिः।
दिलीपरघुरामाद्याः क्षितिपास्तत्कुलोद्भवाः।। -दर्पलन 1/17

4 कन्यायास्तनयः कर्णः क्षेत्रजा पाण्डुनन्दनाः।
सामान्यकुलचर्चाभिः किमन्याभिः प्रयोजनम् ।। -दर्पदलन 1/19

5 न कुलं वृत्तहीनानां प्रमाणमिति मे मतिः।
अन्वेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते।। -महाभारत 5/11/34

अपेक्षा वृत्त, गुण या शील को ही श्रेष्ठ माना है। पञ्चतन्त्रकार विष्णु शर्मा ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि उत्तम वंश से निर्मित धनुष भी गुणहीन होने पर व्यर्थ हो जाता है।[1] कूर्मपुराण के अनुसार भी वृत्त के अभाव में कुलों का कुलत्व समाप्त हो जाता है।[2] महाकवि शूद्रक ने भी कुल और शील के सम्बन्ध में उक्त भाव को मान्यता प्रदान की है।[3] आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी उन्हीं विचारों को आदर्श मानकर नूतन उपमाओं के साथ उन्हें अपने ढंग से प्रस्तुत किया है।[4] उन्होंने गुणवान् कुल में उत्पन्न निर्गुण पुरुष को पूजा का पात्र न मानते हुए कुलों के सम्मान का कारण गुण ही माना है साथ ही साथ प्रमाण देते हुए कहा है कि जैसे उत्तम घोड़े की सन्तान के विषय में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह उत्तम जाति से उत्पन्न नहीं हुआ है, उसी प्रकार गुणवान् के कुल में उत्पन्न होने से उसके पुत्र को निर्गुण नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता है।

संसार में कोई भी कुल तब तक कुलीन माना जाता है जब तक उस कुल में सुन्दर गुणों की अविच्छिन्न परम्परा चलती रहे। गुण के प्रभाव के विच्छिन्न हो जाने पर कुल समाप्त हो जाता है।[5] कुलरूप तटों को काटने वाली नदियों के

---

1 धनुर्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति। -पञ्चतन्त्र, पद्य सं. 1/12

2 कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि वृत्ततः।
विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वैकुलम् ।। -कूर्मपुराण 15

3 किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम् ।
भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रेकण्टकिद्रुमाः।। -मृच्छकटिक 9/7

4 क. गुणवत्कुलजातोऽपि निर्गुणः केन पूज्यते।
दोग्ध्रीकुलोद्भवा धेनुर्वन्ध्या कस्योपयुज्यते।। -दर्पदलन 1/13

ख. यथा जात्यतुरंगस्य न शक्यज्जात्यगुच्यते।
तथा गुणवतः सूनुर्निर्गुणस्तत्कुलोद्भवः।। -दर्पदलन 1/8

5 लोके कुलं कुलं तावद् यावत् पूर्वसमन्वयः।
गुणप्रभावे विच्छिन्ने समाप्तं सकलं कुलम् ।। -दर्पदलन 1/10

समान मर्यादाहीन स्त्रियाँ ही जिनकी जननी हैं उनके जघन्य स्थान से जन्म लेने वाले लोगों को कुलाभिमान कैसा?[1] स्वयं ही विचार कर कुल सम्बन्धी विचार छोड़ देना चाहिए, क्योंकि कुलों के सम्मान का कारण गुण है, अथवा कुल गुणों के आधीन होते हैं।[2] कुलाभिमान को ही आभूषण मानने वाले व्यक्ति की माता, पितामही (दादी) अथवा प्रतिपितामही (परदादी) यदि स्त्री स्वभाववश दोषयुक्त हो जाती है, तो इस दोष से कुल मूल से ही नष्ट हो जाता है।[3]

कविवर ने कलंकहीन विवेकशील प्राणियों की दया को ही प्रशस्त विद्या, सत्य को ही अक्षय धन और निर्मल शील को ही उत्तम कुल माना है।[4] कवि का कहना है कि ऐसे उस त्यागी से क्या प्रयोजन जो दरिद्र है? और ऐसे कुलीन अर्थात् श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न व्यक्ति से क्या लाभ? जो पापी है, सन्तुष्ट हुए कंजूस व्यक्ति से क्या लाभ? इसीप्रकार दर्पान्ध विद्वान से भी क्या लाभ? [5] कविवर क्षेमेन्द्र ने जिसका भविष्य छिपा हो ऐसे कुल का अभिमान त्यागने के लिए तथा जो देखते ही देखते नष्ट हो जाता है। ऐसे धन का अभिमान छोड़ने के लिए पण्य (विकाऊ) रूप विद्या के अभिमान को छोड़ने के लिए, तथा काल के द्वारा

---

1 कुलाभिमानः कस्तेषां जघन्यस्थानजन्मनाम् ।
कुलकूलंकषा येषां जनन्यो निम्नगाः स्त्रियः।। वही 1/11

2 स्वयं कुलकृतस्तस्माद् विचार्य त्यज्यतां मदः।
गुणाधीनं कुलं ज्ञात्वा गुणेष्वाधीयतां मतिः।। -वही 1/14

3 कुलाभिमानाभरणस्यमातापितामही वा प्रपितामही वा।
योषित् स्वभावेन यदि प्रदुष्टा तदेष दोषः कुलमूलघातः।। वही 1/16

4 दयैव विदिता विद्या सत्यमेवाक्षयं धनम् ।
अकलंक-विवेकानां शीमेवामलं कुलम् ।। -दर्पलदन 1/30

5 त्यागिना किं दरिद्रेण किं कुलीनेन पापिना।
तुष्टेन किं कदर्येण दर्पान्धेन बुधेन किम् ।। - वही 1/33

(समय) निगल लिये जाने वाले रूप अभिमान को छोड़ने के लिए कहा है।[1] धन एवं यौवन जन्य अभिमान की कलिमा से आप्लावित स्त्रियाँ, उन्नत पद से परिभ्रष्ट नीचे की ओर जाने वाली नदियों की भाँति किसके द्वारा रोकी जा सकतीं हैं।[2] कविवर ने शील से पतित होने वाली स्त्रियों के विषय में बताते हुए कहा है कि शील त्यागने के लिए उद्यत स्त्रियां न तो पतियों के गुणों से रोकी जा सकती है न परीक्षकों के द्वारा देखी जा सकती हैं, और न वे धन से ही रोकी जा सकती हैं।[3] कविवर क्षेमेन्द्र ने शरीर और कुल के आच्छादित होने पर ही दोनों शोभा पाते हैं,[4] ऐसा विचार किया है। कविवर कुल के विषय में विचार व्यकत करते हुए कहा है कि सम्मोह रूपी पाताल लोक के विशाल सर्प के सदृश कुल जाति का अभिमान कभी नहीं करना चाहिए। शान्ति, दान और दया का आश्रय लेने वाले लोगों के लिए शील ही विशाल कुल होता है।[5] जिसकी माता विवेक राशि नहीं है और न जिसका पिता पुनर्जन्म रूप (भव) सागर है न तृष्णा जिसकी आसक्त पत्नी है, वही सकुशल और कुलीन है।[6] प्रस्तुत कुल विचार में कविवर क्षेमेन्द्र ने सांस्कृतिक अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान

---

1 कुलाभिमानं त्यज संवृताग्रं धनाभिमानं त्यज दृष्टनष्टम् ।
विद्याभिमानं त्यज पण्यरूपं रूपाभिमानं त्यज काललेह्यम् ।। -वही 1/39

2 धनयौवनसंजातदर्पकालुष्यविप्लवाः।
कन्नोन्नत परिभ्रष्टा वार्यन्ते निम्नगाः स्त्रियः।। - वही 1/65

3 न बाध्यन्ते गुणैः पत्युर्न लक्ष्यन्ते परीक्षकैः।
न धनेन निवार्यन्ते शीलत्यागोद्यताः स्त्रियः।। - दर्पदलन 1/64

4 संवृतान्येव शोभन्ते शरीराणि कुलानि च।। - वही 1/75

5 संमोहपातालविशालसर्प स्तस्मान् न कार्यः कुलजातिदर्पः।
शमक्षमादानदयाश्रयाणां शीलं विशालं कुलमानमनन्ति।। - वही 1/81

6 माता न यस्यास्त्यविवेकराशिः पुनर्भवाब्धिर्जनको न यस्य।
यस्य प्रसक्ता दायिता न तृष्णा स एव लोके कुशली कुलीनः।। वही 1/82

की है। इनके समय में कुलीनता या वर्ण व्यवस्था पैतृक परम्परा से संक्रान्त होती रही है। यद्यपि उत्तम कार्यों द्वारा क्षेत्रज भी समाज में सम्मान के पात्र होते थे।[1]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के कुल सम्बन्धी विचारों से स्पष्ट होता है कि मनुष्य को कभी भी कुल का अभिमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि उन्होंने गुण को प्रधानता देते हुए कुल की अपेक्षा गुण को ही श्रेष्ठ बताया है। इनके कुल सम्बन्धी विचारों में हमें सांस्कृतिक सामग्री पर्याप्त मात्रा में मिल जाती है। सत्कुल की गरिमा स्वीकार करते हुए भी कवि क्षेमेन्द्र ने केवल कुल की उच्चता के कारण किसी को बड़ा बताने के पक्ष में नहीं हैं। अतः उच्चता की कसौटी है गुण और गुण ही सर्वत्र प्रधानतया रहते हैं। अतः कविवर को कुलक्रमागत उच्चता स्वीकार्य नहीं है। एक तरह से यह समाज में फैली हुई विसंगति के विरुद्ध हैं और यही प्रतिपादन उन्होंने अपने काव्यों में किया है।

धन-सम्बन्धी विचार

वस्तुतः मानव-जीवन में धन का बहुत ही महत्त्व होता है। चारों पुरुषार्थों में अर्थ का स्थान अनुपम माना गया है तथा सभी आश्रमों के लोगों की पूर्ति ग्रहस्थाश्रम से ही सम्भव होती है, जिसमें धन की प्रमुख भूमिका होती है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने धन के महत्त्व को स्वीकार करते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डाला है। दानादि क्रियाएँ धन से ही होती है और धन ही त्रिवर्ग का मूल है।[2] धन के महत्त्व को बताते हुए कविवर ने कहा है कि व्यक्ति की पूजा सत्कुल से, कीर्ति पराक्रम से, रूप यौवन से तथा क्रिया जीवन से नहीं होता अपितु धन से

---

[1] क. एकश्चेत्पूर्वपुरुषः कुले यज्वा बहुश्रुतः।
अपरः पापकृन्मूर्खः कुलं कस्यानुवर्तताम् ।। -दर्पदलन 1/9

ख. रौद्रः शूद्रेण जातोऽयम् . . . .।। -दर्पदलन 1/54

[2] दानादिधर्मः क्रियते धनेन धनेन धन्या धनमाप्नुवन्ति।
धनैर्विना कामकथापि नास्ति त्रिवर्गमूलं धनमेव नान्यत् ।। - चतुर्वर्गसंग्रह 2/2

ही सम्भव है।[1] और भी वृद्ध, प्रसिद्ध, विबुध, विदग्ध अर्थात् समाज के शूर, कवि, कुलीन व अन्य प्रतिभाशाली भी धनिकों के आश्रय को चाहते हैं और उन्हीं की जयजयकार करते है।[2] समाज का हर वर्ग धनाभिलाषी है। किसी का धनाभाव में कोई कार्य नहीं हो पाता है ऐसा कविवर के द्वारा प्रतिपादित किया गया है।[3] वास्तव में वित्ताभाव में भूखे व्यक्ति को धर्मकथा भी अच्छी नहीं लगती है।[4] अन्यत्र भी नीतिकार चाणक्य ने धन से ही मित्र, बन्धु-बान्धव, सम्मान व यशः प्राप्ति बताया है।[5] धन से ही धर्म भी सम्भव है, तब सुख की प्राप्ति होती है।[6] स्तोत्रकार ने भी लक्ष्मी को ही रूप, कुल व विद्या तथा सभी की शोभा का कारण बताया है।[7] व्यक्ति के पास गाँठ में पैसा न होने पर भोजन की चिन्ता लगी हो तो कुछ और नहीं सूझता है।

दूसरे परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर आभासित होता है कि धन की समाज में अहं भूमिका होते हुए भी धन ही व्यक्ति के सुख का साधन नहीं है, अपितु सन्तोष ही सुख का हेतु है, जिसको योगदर्शनकार पतंजलि[8] एवं सांख्यदर्शनकार

---

1 पूजा धनेनैव न सत्कुलेन कीर्तिर्धनेनैव न विक्रमेण।
रूपं धनेनैव न यौवनेन क्रिया धनेनैव न जीवितेन।। -चतुर्वर्गसंग्रह 2/4

2 वृद्धाः प्रसिद्धा विबुधा विदग्धाः शूराः श्रुतिज्ञाः कवयः कुलीनाः।
विलोकयन्तः सधनस्य वक्त्रं जयेति जीवेति सदा वदन्ति।। -चतुर्वर्गसंग्रह 2/5

3 गुरुगणकैरबुधानां क्षयचतुरैश्चौरमूषकैर्वणिजाम् ।
कायस्थगायनगणैर्भूमिभुजां भुज्यते लक्ष्मीः।। - चतुर्वर्गसंग्रह 2/14

4 तावद्धर्मकथा मनोभवरुचिर्मोक्षस्पृहा जायते . . .. । चतुर्वर्गसंग्रह 2/24

5 चाणक्य नीतिदर्पण 7/15 व 17/15

6 धनाद् धर्मं ततः सुखम् । -हितोपदेश, कथामुख, पद्य संख्या 6

7 लक्ष्मीर्भूषयते रूपं लक्ष्मीर्भूषयते कुलम् ।
लक्ष्मीर्भूषयते विद्या स्वाल्लक्ष्मीर्विशिष्यते।। - लक्ष्मी स्तोत्र, पद्य 12

8 सन्तोषादनुत्तमं सुखलाभः .... योगदर्शन 2/42

कपिल[1] ने माना है। धन की नश्वरता व अस्थिरता पर जहाँ ईशावस्योपनिषद् ने 'मा गृधः कस्यस्विद् धनम् '[2] उपनिषद्कारों ने 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'[3] 'अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति'[4] एवं 'नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति'[5] के रूप में किया है तथा योगभाष्यकार व्यास ने धन को हेय मानते हुए दुःख का मूल कारण बताया है।[6]

धन की इसी निस्सारता को सहृदय पाठकों के समक्ष रक्षते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि लक्ष्मी तो नेत्र-कटाक्ष की भाँति चञ्चल होती है तथा इस धन को अग्राह्य बताते हुए अन्त समय में एक पग भी साथ न जाने वाला बताया है।[7] चञ्चल लक्ष्मी को बाँधने के लिए गुणों का संग्रह आवश्यक है।[8] अर्थात् इस धन पर अभिमान ही निरी मूर्खता है। हितोपदेश के पद्य[9] के भाव से साम्य रखता हुआ भाव क्षेमेन्द्र द्वारा भी प्रतिपादित है, जिसमें उन्होंने कहा है कि सुवर्ण कैसे श्लाघ्य हो सकता है जिसके अर्जन, रक्षण व

---

1 सन्तोषादनुत्तमं सुखलाभः .... सांख्यदर्शन

2 ईशावास्योपनिषद् , पद्य संख्या - 2

3 कठोपनिषद 2/27

4 बृहदारण्यकोपनिषद् 2/42

5 छान्दोग्योपनिषद् 8/9/2

6 यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ।। -योगभाष्य 2/45

7 धनेनदर्पः किमयं नराणां लक्ष्मीकटाक्षाञ्चलचञ्चलेन।
यत् कन्धराबद्धमपि प्रयाति नैकं पदं कालगतस्य पश्चात् ।। -दर्पदलन 2/1

8 श्रियः कुर्यात् पलायिन्या बन्धाय गुणसंग्रहम् ।
दैत्यांस्त्यक्त्वाश्रिता देवा निर्गुणान्सगुणाः श्रिया।। -चारुचर्या पद्य सं. 84

9 जनयन्त्यर्जने दुःखं तापयन्ति विपत्तिषु।
मोहयन्ति च सम्पत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः।। -हितोपदेश, 1/173

व्यय की चिन्ता से कृशता की प्राप्ति होती है।[1] महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में रघुवंशियों में धन का संग्रह त्याग निमित्तक बताया है।[2]

नारायण पण्डित ने तो धनवान् लोगों को संसार में सबसे बलवान् बताया है तथा राजा की प्रभुता धन से ही सम्भव है।[3] संसार में जिसके पास धन होता है उसके सब मित्र बन जाते हैं, जिसके पास धन हो उसी के सब बान्धव भी बन जाते हैं जिसके पास धन हो वह मनुष्य बड़ा गिना जाता है तथा जिसके पास द्रव्य हो वही पण्डित कहा जाता है।[4] धन हीन तथा बुद्धि विहीन मनुष्य की सब क्रियायें ग्रीष्मकाल में छोटी नदियों की तरह सूख जाती हैं।[5] नीतिकार भर्तृ-हरि ने धनवान् को कुलीन, पण्डित, गुणज्ञ, वक्ता और दर्शनीय बताया है।[6] जिसके पास प्रचुर मात्रा में धन होता है उसके चाण्डाल होने पर भी पूजा होती है।[7] कविवर ने चारों ओर से रक्षा किये जाने पर लक्ष्मी को क्षणभर में नष्ट होने

---

1 सुवर्णवान्विवर्णोऽभूत् संपूर्णश्चिन्तया कृशः। -दर्पलन 2/16

2 त्यागाय सम्भृतार्थानाम् । -रघुवंश 1/7

3 धनवान् बलवांल्लोके सर्वः सर्वत्र सर्वदा।
प्रभुत्वं धनमूलं हि राज्ञामप्युपजायते।। -हितोपदेश 1/117

4 यस्याऽर्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः।। -हितोपदेश 1/120

5 अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याऽल्पमेधसः।
क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा।। -हितोपदेश 1/119

6 यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।।
- नीतिशतक, पद्य सं0 1/39

7 विभवो यथा हि लोके न शरीराणि देहिनाम् ।
चाण्डालोऽपि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम् ।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, धनप्रशंसा, पद्य सं. 4

वाली बताया है।[1] लोक जीवन के परखी क्षेमेन्द्र ने जिस सुन्दर एवं काव्यात्मक ढङ्ग से धनादि भोग सम्बन्धी साधनों की अस्पृहणीयता का चित्रण किया है, वह चित्रण हृदय में एक गहन प्रभाव कर जाता है। एक धनी व्यक्ति जो रोग से पीड़ित है, सभी औषधियां निष्फल हो रही हैं, वह निरन्तर कष्ट के कारण कराहते हुए तीव्र व्यथा से मृत्यु के आगमन के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करता है उस समय तो भोग के साधनों से वह आँखे फेर लेता है।[2]

इसी प्रकार का एक अन्य चित्रण भी है जिसमें एक धनी व्यक्ति चिरकाल से रोग से ग्रसित, शय्या पर पड़ा हुआ रात्रि भर पीड़ा के कारण कराहता रहता है, बन्धु-वान्धव और पड़ोसी उसके करुण-क्रन्दन से झुँझला उठते हैं वैद्य भी उत्तम से उत्तम औषधियों को निष्फल देख झुँझला उठता है तथा परिवार के लोग भी प्रतिदिन काढ़ा बनाते-बनाते परेशान हो जाते हैं यहाँ तक कि स्वास्थ्य के प्रति निराश उसकी प्रिय पत्नी के पग भी उसकी आरे बढ़ने से रुक जाते हैं। आयु की अवसान वेला में शल्य-सदृश पीड़ादायक धन किस काम का?[3] संसार की

---

[1] लक्ष्मीः क्षणक्षयवती परिरक्षितापि
कायोऽप्यपायनिचयस्य निकाय एव।
संभोगयोगसुखसंगतिरप्यतथ्या
मिथ्याभिमानकलनाघन एष शापः।। -दर्पदलन 1/44

[2] रोगार्दितः स्पृशति नैव दृशापि भोज्यं
तीव्रव्यथः स्पृहयते मरणाय जन्तुः।
सर्वौषधेषु विफलेषु यदा विरौति
धान्यैर्धनेन च तदा वद किं करोति।। -दर्पदलन 2/63

[3] निद्राच्छेदसखेदबान्धवजनः सोद्वेगवैद्योज्झित
पाकक्वाथकदर्थितः परिजनैस्तन्द्रीभयात् क्षोभितः।
भग्नस्वास्थ्यमनोरथः प्रियतमावष्टब्धपादद्वय
पर्यन्ते वपुषः करोति पुरुषः किं शल्यतुल्यैर्धनैः।। -दर्पदलन 2/64

असारता और धन भी पीड़ादायकता का इससे मार्मिक उदाहरण क्या होगा? आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्त्री व पुत्र के सम्बन्ध को भी धनाश्रित बताया है। धन के नष्ट हो जाने पर स्त्री और पुरुष भी साथ नहीं देते हैं।[1] धन के संचय को धर्मार्थ बताते हुए कहा गया है कि धर्माचरणहीन लोगों का धन-संचय मलसंचय है।[2] कलियुग, दुष्टमित्र, दुर्व्यसनी पुत्र, चोर व लालची राजा के रहते धन से लाभ नहीं हो सकता है।[3] अन्त में कविवर क्षेमेन्द्र ने धनी व निर्धन दोंनो को दुःखी व सुखी देखकर सुख व दुःख को भाग्याधीन मानते हुए धन को महत्त्वपूर्ण माना है।[4]

इस प्रकार लघुकाव्याध्ययन से ज्ञात होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने धन को लौकिक जगत्, में समाज का आधार स्वीकार करते हुए तज्जन्य अभिमान की भर्त्सना की है, जैसा उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है ठीक ऐसा ही मिला- जुला भाव अन्य ग्रन्थों में भी धन से सम्बन्धित नीति के रूप में प्राप्त होता है।

विद्या-सम्बन्धी विचार

प्रायः सभी नीतिकारों ने विद्या के सम्बन्ध में अपनी-अपनी लेखनी का प्रयोग कर इसे समस्त धनों में सर्वश्रेठ बताया है। यजुर्वेद ने तो विद्या को

---

1 पुत्रदारादिसंबन्धः पुंसां धननिबन्धनः।
क्षीणात् पुत्राः पलायन्ते दारा गच्छन्ति चान्यतः।। - दर्पदलन 2/29

2 सान्तः कुर्वन्ति यत्नेन धर्मस्यार्थे धनार्जनम् ।
धर्माचारविहीनानां द्रविणं मलसंचयः।। -दर्पदलन 2/32

3 कलौ काले खले मित्रे पुत्रे दुर्व्यसनान्विते।
तस्करेषु प्रवृद्धेषु लुब्धे राज्ञि धनेन किम् ।। -दर्पदलन 2/39

4 निर्धनाः सुखिनो दृष्टाः सधनाश्चातिदुःखिताः।
सुखदुःखोदये जन्तोर्दैवाधीने धनेन किम् ।। -दर्पदलन 2/57

अमरत्व का एकमात्र साधन बतलाया है।[1] नीतिकार भर्तृहरि ने भी विद्या का परिणाम विनय बताते हुए परम्परया उसे धन, धर्म व सुख का मूल माना है,[2] तथा विद्या को मनुष्य का छिपा हुआ अन्तर्धन, भोग, यश और सुख का सम्पादन करने वाली गुरुओं की गुरु, विदेश में बन्धुओं के समान, परमदेवता, राजा लोगों में पूजी जाने वाली बतलाकर तथा इससे विहीन मनुष्य को पशु बतलाया है।[3] नीतिकार नारायण पण्डित ने विद्या के विषय में इस प्रकार बतलाया है कि जैसे- निम्न प्रदेश में बहने वाली नदी तुच्छ तृणकाष्ठादि को लेजाकर समुद्र में जा मिलाती है उसी प्रकार नीच पुरुष को प्राप्त होकर विद्या ही उस पुरुष को बड़े राजा से मिलाती है।[4] अन्यत्र भी विद्या को माता की भाँति रक्षा करने वाली पिता की तरह हितकारी कार्यों में नियुक्त करने वाली इत्यादि बतलाकर उसकी प्रशंसा की गयी है।[5] महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी उक्त आदर्शों के अनुरूप विद्या को समस्त दोषों की शन्ति का हेतु माना है।[6] नलचन्पूकार

---

1 विद्ययाऽमृतमश्नुते। -यजुर्वेद 40/14

2 विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मः ततः सुखम् ।। -नीतिशतक 1/39

3 विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम् ।
विद्या भोगकारी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।।
विद्या बंधुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता।
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः।। -नीतिशतक 1/21

4 संयोजयति विद्यैव नीचगाऽपि नरं सरित् ।
समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम् ।। -हितोदेश, कथामुख, पद्य संख्या 5

5 मातेव रक्षति पितवे हिते नियुंक्ते
कान्ते चापि रमयत्यपनीय खेदम् ।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दक्षिु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।-भगवान् व्यास,

6 चेतः शान्त्यै द्वेषदर्पोज्झितेन

त्रिविक्रम भट्ट ने भी विद्या के साथ विनय को आवश्यक बताते हुए विनय के अभाव में विद्या धन आदि की जननी नहीं हो सकती है, यह स्वीकार किया है।[1] क्षेमेन्द्र ने भी इसे आदर्श मानकर शील, परहित की भावना निरभिमानिता, क्षमा, धैर्य और अलोभ को विद्या का फल माना है।[2] कविवर की दृष्टि में अभिमान का विनाश करने वाली विद्या ही है।[3] जो विद्या के गौरव के वशीभूत होकर शील का त्याग करता है, वह पण्डित मूर्ख उपहास के ही योग्य होता है।[4] लोभ और द्वेष के कारण विद्या निन्दनीय हो जाती है। लज्जा के द्वारा यथा कुलाङ्गना की शोभा होती है उसी प्रकार नम्रता से विद्या की शोभा होती है।[5] विद्या तभी तक स्पृहणीय होती है, जब तक उसके साथ-साथ सन्तोष हो, राजाओं के समक्ष दान प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होकर वह निन्दनीय हो जाती है।[6] जो अभिमानी सभा में विवादोद्यत रहते हैं जिन्हें दूसरे का यश शूल की भाँति पीड़ादायक होता है। उनकी विद्या शान्तिदायिनी नहीं होती है।[7] अशील और द्वेष से विद्या अपवित्र हो

यत्नः कार्यः सर्वथा पण्डितेन।
विद्यादीपः कामकोपाकुलाक्ष्णां
दर्पान्धानां निष्फलालोक एव।। दर्पदलन 3/151

1 विवेकः सह सम्पत्त्या विनयो विद्यया सह। - नलचम्पू 3/27

2 शीलं परहिता सक्तिरनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम् । -दर्पदलन 3/24

3 सा विद्या या मदं हन्ति सा श्रीर्याथिषु वर्षति ... -दर्पदलन 3/3

4 यो विद्यागुरुरायाति लघुतां शीलविप्लवात् ।
तस्मै पण्डितमूर्खाय विपरीतात्मने नमः।। -दर्पदलन 3/5

5 विद्या श्रीरिव लोभेन द्वेषेणायाति निन्द्यताम् ।
भाति नम्रतयैवैषा लज्जयेव कुलाङ्गना।। -दर्पदलन 3/6

6 स्पृहणीया सतां तावद् विद्या सन्तोषशालिनी।
यावन् न पार्थिवास्थानपण्यस्थाने प्रसारिता।। दर्पदलन 3/7

7 ये संसत्सु विवादिनः परयशः शल्येन शूलाकुलाः

जाती है तथा दर्पयुक्त होने पर अपने साथ ही जीवन का भी अन्त कर देती है।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि दुर्जनों की विद्या उसे स्वभावानुकूल कुपथगामी होने से नहीं बचा पाती है।[2] हितोपदेश में इससे साम्य रखते हुए स्वभाव पर बल दिया है, गौ के दूध की भी मधुरता तो स्वभाविक ही होती है।[3]

इसी प्रसङ्ग में सूक्ष्मदर्शी कविवर क्षेमेन्द्र ने सन्मार्ग से विपरीत ले जाने वाली विद्या के इक्कीस भेदों का सूक्ष्म विवेचन किया है।[4] महाकवि कालिदास ने भी इन सूक्ष्म भेदों में एक भेद पण्य विद्या पर क्षेमेन्द्र के समान ही भाव प्रकट किया है।[5] अनेक दर्शनकारों ने भी विद्या की साधना द्वारा प्राप्त तत्त्वज्ञान को

कुर्वन्ति स्वगुणस्तवेन गुविनां यत्नाद् गुणाच्छादनम् ।
तेषां रोषकषायितोदरदृशां द्वेषोष्णनिः श्वासिनां
दीप्ता रत्नशिखेव कृष्णफणिनां विद्या जनोद्वेगभूः।। -दर्पदलन 3/14

1 शोच्यतां यत्नशीलेन विद्वेषेणापवित्रताम् ।
दर्पशापहता विद्या नश्यत्येव सहायुषा।। -दर्पदलन 3/15

2 न श्रुतेन न वित्तेन न वृत्तेन न कर्मणा।
प्रवृत्तं शक्यते रोद्धुं मनोभवपथे मनः।। -दर्पदलन 3/87

3 न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवाऽत्र तथाऽतिरिच्यते यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः।। -हितोपदेश 1/17

4 क. उपकाराय या पुंसां न परस्य न चात्मनः।
पत्र संचयसी‌रैः किं तया भारविद्यया।। -दर्पदलन 3/28

ख. अन्यायः प्रौढवादेन नीयते न्यायतां यया।
न्यायश्चान्यायतां लोभात् किं तया क्षुद्रविद्यया। -दर्पदलन 3/29

ग. अनुष्ठानेन रहितां पाठमात्रेण केवलम् ।
रञ्जयत्येव या लोकं किं तया शुकविद्यया।।
- इत्यादि विद्या के प्रकार दर्पदलन श्लोक 3/28 से 48 तक।

5 क. यस्यागमः केवलं जीविकायै। तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।। मालविकाग्निमित्रम. . .

ख. परोत्कर्ष समाच्छाद्यविक्रियाय प्रसार्यते।

अपवर्ग का हेतु माना है।[1] विद्या के सम्बन्ध में क्षेमेन्द्र का यह विवेचन निःसन्देह विद्याभिमान के प्रति हेय भावना को प्रबल करता है। लौकिक परिणामों पर विचार करने पर भी कवि की विचारधारा मानसपटल से तिरोहित नहीं होती।[2] विद्या-प्राप्ति में अभ्यास को कविवर क्षेमेन्द्र ने प्रमुखता देते हुए कहा है कि शिक्षा और अभ्यास से पक्षी भी स्पष्ट रूप से वेदशास्त्र पढ़ते है।[3] उन्होंने बिना अभ्यास के पाण्डिय को आकाशकुसुम के समान माना है।[4]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के विद्या सम्बन्धी विचारों से स्पष्ट है कि उन्होंने विद्या को तभी महत्त्व दिया है जब वह नम्रता से युक्त हो तथा अहङ्कार से मुक्त हो।

धर्म-सम्बन्धी विचार

'धर्म' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ

'धर्म' शब्द 'धृ धारणे' धातु से मप् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ धारण करने वाला होता है। प्रजा को एक सूत्र में धारण करने के

या मुहुर्धनिनामग्रे किं तया पण्यविद्यया।। -दर्पदलन 3/33

[1] क. मुक्तिः प्रतिज्ञानात् ...-वेदान्तदर्शन 4/4/2

ख. षोडश पदार्थानां ज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः - न्यायदर्शन 1/1/1

ग. विवेकान्निः॰शेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यो नेतरान्नेतरात् । -सांख्यदर्शन 3/84

घ. ज्ञानान्मुक्तिः बन्धो विपर्ययात् - वेदान्तदर्शन 3/23/24

[2] स्पृशति मतिं न हि तेषां द्वेषविषः कलिसर्पः।
यदि शमविमलमतीनां स्वमनसि भवति न दर्पः। -दर्पदलन 3/154

[3] शिक्षाभ्यासेन सुव्यक्तं पठन्त्यपि विहंगमाः।
क एष विद्यया दर्पः कष्टप्राप्तैकदेशया।। -दर्पदलन 3/2

[4] अनधीता गुरुमुखात् कथं विद्याधिगम्यते।
अनभ्यासेन पाण्डित्यं नभः कुसुमशेखरः।। -दर्पदलन 3/22

कारण ही धर्म की धर्मता है। इस प्रकार धर्म के अन्तर्गत उन शाश्वत सिद्धान्तों के समुदाय को लिया जाता है, जिसके द्वारा मानव-समाज सन्मार्ग पर प्रवृत्त होकर एवं उन्नतिशील बनकर अपने अस्तित्व को सार्थक करता है। 'सनातन धर्म' शब्द इसी अर्थ को द्योतक है।

'धर्म' शब्द नितान्त व्यापक महनीय एवं सारगर्भित है। मानव-जीवन की कोई ऐसी दिशा नहीं, ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं, जिस पर धर्म का साक्षात् प्रभाव अथवा परम्परा रूप से न पड़ा हो, आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि तो जिस रूप तथा मात्रा में पशुओं में पाये जाते हैं, मनुष्य में भी वे उसी तरह व्यापक रूप में उपलबध होते हैं। मनुष्य की विशिष्टता दिखलाने वाली यदि कोई वस्तु है तो वह धर्म है। धर्मप्राण भारतीयों का जीवन धर्ममय है। इसीलिए कालिदास ने धर्म को ही त्रिवर्ग का सार बताया है।[1] वैशेषिक दर्शन के अनुसार धर्म वही है जिससे मानव मात्र का अभ्युदय हो तथा जो मंगलमय होने के साथ ही साथ निरापद भी हो।[2] वैदिक वाङ्मय में किसी वस्तु अथवा व्यक्ति में चिर स्थायिनी वृत्ति को धर्म की संज्ञा दी गयी है।

कविवर क्षेमेन्द्र एक प्रबल धार्मिक समाजद्रष्टा थे, जिन्होंने समाज का सूक्ष्म से सूक्ष्म अवलोकन करके धर्म के विभिन्न पहलुओं दान, तप, दिनचर्या तथा आचार-व्यवहार पर बहुत ही उपयोगी विचारों का प्रतिपादन किया है। कविवर का 'चारुचर्या' लघुकाव्य तो शतप्रतिशत मनुष्य के नित्योपयोगी आचार-व्यवहार से सम्बन्धित लघुकाय ग्रन्थ है। भर्तृहरिकृत नीतिशतक, चाणक्यनीतिदर्पण, विदुरनीति व मनुस्मृति आदि नीतिशास्त्रों की ही भाँति कवि की नीति सम्बन्धी यह शतक है। इसमें कविवर ने रामायण, महाभारत, हरिवंश, बृहत्कथा व कथासरित्सागर आदि ग्रन्थों में उपदिष्ट कथानकों के माध्यम से मानव

---

1. कुमारसम्भव 5/38
2. "यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः।" -वैशेषिक सू. 1/1/2

जीवनोपयोगी आचार-व्यवहार सम्बन्धी नीतियों का प्रतिपादन किया है। कवि ने धर्म को मानव जीवन का अभिन्न अङ्ग बताते हुए इसे दुःख में भी न छोड़ने के लिए कहा है।[1]

इसी प्रकार सत्य व्रत को भी न छोड़ने तथा सत्संगति करने के लिए उपदिष्ट किया है।[2] कविवर ने माता, पिता, गुरु एवं ब्राह्मण का सम्मान तथा उचितानुचित पर ध्यान रखते हुए योगियों व तपस्वियों के धैर्य में सहयोग करने का उपदेश दिया है। इन्होंने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास तथा वृद्धों की सेवा सम्बन्धी विचारों का प्रतिपादन किया है।

मनुस्मृति में धैर्य, क्षमा, दम, चोरी न करना, शुचिता, इन्द्रिय-संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना, ये धर्म के दश लक्षण बताये गये हैं।[3] धर्म के तीन स्कन्ध माने गये हैं - यज्ञकर्म, अध्ययन और दान प्रथम स्कन्ध है। तप द्वितीय स्कन्ध है और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए आचार्य के कुल में अपने शरीर को कृश करके निवास करना तृतीय स्कन्ध है। ये सब पुण्य लोक के भागी है। ब्रह्म में सम्यक् रूप से अवस्थित व्यक्ति अमरत्व को प्राप्त करता है।[4] धर्म ही एक ऐसा मित्र है जो मरने पर भी साथ जाता है। अन्य सब तो

---

[1] न त्यजेद् धर्ममर्यादामपि क्लेशदशां श्रितः।
हरिश्चन्द्रो हि धर्मार्थी सेहे चाण्डालदासताम् ।। - चारुचर्या, पद्य संख्या 13

[2] न सत्यव्रतभङ्गेन कार्यं धीमान् प्रसाधयेत् ।
ददर्श नरकक्लेशं सत्यनाशाद् युधिष्ठिरः।। - चारुचर्या, पद्य संख्या 14

[3] धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधोदशकं धर्मलक्षणम् ।। - मनुस्मृति 8/15

[4] त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप
एव द्वितीयो ब्रह्माचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्य-
न्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका
भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्त्वमेति।। -छान्दोग्योपनिषद् 2/23/1

शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं।[1] धर्म से अर्थ उत्पन्न होता है, धर्म से सुख प्राप्त होता है। धर्म से सब कुछ मिलता है। धर्म ही संसार का सार है।[2] नष्ट हुआ धर्म ही मनुष्य का नाश करता है, सुरक्षित धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है अतः धर्म को नष्ट नहीं करना चाहिए।[3] अहिंसा, सत्य, अस्तेय शुचिता और इन्द्रिय निग्रह संक्षेप में मनु ने चारों वर्णों के लिए यह धर्म बताया है।[4] परोपकारी व्यक्ति की ही शरीर की सार्थकता को कवि ने दर्शाया है।[5] कविवर क्षेमेन्द्र ने शरीर के सभी अङ्गों को धर्मयुक्त करने में ही उनकी सार्थकता बतायी है।[6] क्योंकि धर्म नियम को छोड़ देने वाले व्यक्ति क्या नहीं करते?[7] अर्थात् वे पाप कर्म करने में भी नहीं चूकते, जबकि पाप ही सब आपत्तियों का मूल हैं।[8] इस प्रकार उनके लघुकाव्यानुशीलन से ज्ञात होता है कि उन्होंने जो धर्म सम्बन्धी

---

1 एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।। -मनुस्मृति 8/17

2 धर्मादर्थः प्रभवति धर्माद् प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसंसारसारमिदं जगत् ।। -रामायण, अरण्यकाण्ड 9/30

3 धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।। - मनुस्मृति 8/25

4 अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चतुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः।। - मनुस्मृति 10/63

5 वन्द्यः स पुंसां त्रिदशाभिवन्द्यः कारुण्यपुण्योपचयक्रियाभिः।
संसारसारत्वमुपैति यस्य परोपकाराभरणं शरीरम् ।। - चतुर्वर्गसंग्रह 1/16

6 कर्णे धर्मकथा मुखे परिचितं धर्माभिरामं वच-
श्चित्ते धर्ममनोरथः प्रणयिनी सर्वत्र धर्मस्थितिः।
काये धर्ममयी क्रिया परिकरः सोऽयं शुभप्राप्तये
कल्पापायपदेऽप्युपप्लवलवैरस्पृष्टवेलाफलः।। -चतुर्वर्गसंग्रह 1/4

7 उत्सृष्टधर्मनियमाः किं न कुर्वन्त्यवारिताः।। -दर्पदलन 3/101

8 पापं हि पदमापदाम् । -दर्पदलन 2/92

विचार प्रस्तुत किये हैं, वे मानव समाज के लिए अनुकरणीय हैं। उनके ये धर्म सम्बन्धी विचार रामायण एवं मनुस्मृति आदि ग्रन्थों से भी भाव साम्य रखने हैं। जिससे उनके बहु आयामी कर्तृत्व का ज्ञान होता है।

दान-सम्बन्धी विचार

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने नीतिविषयक काव्यों में आचार-व्यवहार आदि के अतिरिक्त दान, तप, व धर्म के अन्य पहलुओं पर समाजोपयोगी नीतियों का वर्णन किया है। दान के महत्त्व की गौरवगाथा गाते हुए कविवर कभी नहीं अघाते हैं। वस्तुतः समाज आदान-प्रदान की भित्ति पर अवलम्बित है। धनी व्यक्तियों का संचित धन केवल उन्हीं की आवश्यकता अथवा व्यसन पूरा करने के लिए नहीं, अपितु उसका सदुपयोग उन निर्धनों की उदर-ज्वाला शान्त करने में भी है, जो समाज के विशेष अङ्ग हैं। दानाभाव में समाज छिन्न-भिन्न सा हो जायेगा। तभी तो प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद ने भी दान को मानव-जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक बतलाया है।[1] महाकवि कालिदास ने भी दिलीप के साथ साथ अन्य रघुवंशियों के स्वभाव की श्रेष्ठता को बताते हुए प्रजा से संगृहीत सम्पत्ति का सूर्य की भाँति अवसर पर विसर्जन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण के रूप में स्वीकार किया है।[2] नीतिकार भर्तृहरि ने भी धन की दान, भोग और विनाश तीन गतियाँ बताते हुए दान को श्रेष्ठता प्रदान की है।[3] उन्होंने नदी, वृक्ष व मेघ की परोपकारिता का संकेत करते हुए दान द्वारा परोपकार करने वाले धनवान् व्यक्ति

---

1 "शतहस्त समाहार सहस्रहस्त संकिर" -ऋग्वेद 7/25

2 प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।। - रघुवंश 1/18

3 दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
या न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।। - नीतिशतक, पद्य संख्या 41

को सत्पुरुष माना है।[1] गीता[2] व मनुस्मृति[3] में भी ब्राह्मणों के कार्यों में दान को प्रमुखता प्रदान की गयी है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी उपर्युक्त आदर्शों के अनुरूप धन का वास्तविक फल दान ही स्वीकार किया है, उनकी दृष्टि में सात्त्विक विचारों के साथ निःस्वार्थ भावना से किया गया थोड़ा दान भी महाफलदायक होता है।[4] सत्त्विक भावना रखकर ही दान देना चाहिए तथा उसके बदले में कुछ पाने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए।[5] इस दान की भी उत्तम कोटि है जिसे गीता ने भी 'सात्त्विकदान'[6] कहा है। कविवर क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार किये गये दान को ही धन की वास्तविक सुरक्षा या उसका उपयोग माना है, अन्यथा उसकी दृष्टि में उस धन को विनष्ट ही समझना चाहिए। लोक प्रसिद्धि हेतु व यशः प्राप्त्यर्थ दिया दान तो कोरा सौदा है।[7] कविवर ने दान के बराबर किसी दूसरे धन की कल्पना नहीं की है।[8]

---

[1] पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
धराधरो वर्षति नात्महेतवे, परोपकाराय सतां विभूतयः।। - नीतिशतक, पद्य 76

[2] शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।। -गीता 18/42

[3] अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।। -मनुस्मृति 1/88

[4] सर्वथा सत्त्वशुद्धाय दानायातिलधीयसे।
नमो महाफलायैव न भोगांगप्रसंगिने।। - दर्पदलन 6/52

[5] दानं सत्तवमितं दद्यान्न पश्चात्तापदूषितम् ।
बलिनात्मार्पितो बन्धे दानशेषस्य शुद्धये।। - चारुचर्या, पद्य संख्या 18

[6] दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।। -गीता 17/20

[7] लोकप्रसिद्धिसिद्धयै यः प्रयच्छति गुणस्तवैः।
करोति वित्तयशसोः स सदा क्रयविक्रयम् ।। -दर्पदलन 6/4

[8] न दानतुल्यं धनमन्यदस्ति न सत्यतुल्यं व्रतमन्यदस्ति।

तप-सम्बन्धी विचार

धर्म का प्रमुख अङ्ग तप, जो भारतीय संस्कृति का मूल मन्त्र है, की साधना से मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाओं की ही पूर्ति नहीं करता, अपितु परोपकार के यथावत सम्पादन की योग्यता का भी अर्जन करता हैं। तप की महिमा से हमारा साहित्य भरा पड़ा है। महाकवि कालिदास ने तप का महत्त्व बड़े ही भव्य शब्दों में अभिव्यक्त किया है।[1] अग्निपुराण ने तो तप द्वारा पापक्षय, स्वर्ग प्राप्ति, रूप, सौभाग्य, ज्ञान–विज्ञान और यशआदि की प्राप्ति बताया है। इतना ही नहीं तप परम तत्त्व का भी अनन्य साधन है।[2] कविवर ने भी तप के प्रसङ्ग में होने वाली विभूतियों में उत्पन्न अभिमान को तप द्वारा साध्य शान्ति के मार्ग में बाधा रूप स्वीकार करते हुए शुद्ध और निर्मल बुद्धि के साथ तप में प्रवृत्त होने के लिए सङ्केत किया है। उनकी दृष्टि में चित्त की निर्मलता ही समस्त तपों का फल है। अतएव चित्त के निर्मल रहने पर जहाँ तप को अनावश्यक माना है, वहीं अभिमान रागादि मलों के रहते हुए तप को निष्फल भी।[3] इस नीरस असार संसार में कविवर ने तीर्थाटन, साधुसम्पर्क व पूज्यजनों की पूजा

न शीलतुल्यं शुभमन्यदस्ति न क्षान्तितुल्यं हितमन्यदस्ति।। -चतुर्वर्गसंग्रह 1/10

1 वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् । - रघुवंश 1/10

2 क. तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ।
तपसा क्षीयते पापं मोदते सह देवतैः।।

ख. तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसाप्राप्यते यशः।
तपसा सर्वमवाप्नोति तपसा विन्दते परम।।

ग. ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः सौभाग्यं रूपमेव च।
तपसा लभते सर्वं तथैवाध्ययनेन न।। -अग्निपुराण 2/17

3 चित्तं विरक्तं यदि किं तपोभिश्चित्तं सरागं यदि किं तपोभिः।
चित्तं प्रसन्नं यदि किं तपोभिश्चित्तं सकोपं यदि किं तपोभिः।। - दर्पदलन 7/3

का आनन्द ही सार माना है।[1] नीतिपूर्ण कथन के रूप में उन्होंने कहा है कि यदि बालक, युवक, वृद्ध व मूर्ख क्रमशः तपस्वी, वनाभिलाषी, रागयुक्त व निर्णायक हों तो स्थिति उपहसनीय, अनुपयुक्त व शोचनीय होगी।[2]

भारतीय दर्शन की समस्त शाखाओं में मानव जीवन का परम पुरुषार्थ मोक्ष माना गया है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी जीवन का पर्यावसान मोक्ष में ही माना है। इसीलिए मोहादि राजदोषों की सहसा ही शान्ति दिखलाकर मुनिजनों की मुक्ति का दर्शन कविवर ने करा दिया है।[3] वृद्धावस्था के आने पर मनुष्य को तपोवन की ओर रुचि रखते हुए मोक्ष प्राप्त करने के लिए अन्यत्र भी महाकवि ने उपदिष्ट किया है।[4] अन्तकाल में सन्तोष देने वाले विपत्ति नाशक भगवान् विष्णु का ध्यान ही श्रेयस्कर है।[1]------

---

[1] तीर्थाप्तिः सुधासम्पर्कः पूज्यपूजामहोत्सवः।
अस्मिन् विरसनिःसारे संसारे सारसङ्ग्रहः।। -दर्पदलन 4/51

[2] बालस्तपस्वी किमतोऽस्ति हास्यं
युवा वनैषी किमतोऽस्त्ययोग्यम् ।
वृद्धः सरागः किमतोऽस्ति निन्द्यं
मूर्खः प्रमाता किमतोऽस्ति शोच्यम् । -दर्पदलन 7/15

[3] क. देव्यार्थितोऽथ भगवान् कृपया स्मरारि-
स्तेषामनुग्रहमयेन विलोकनेन।
चक्रोस्मितस्नपितदिग्वदनो मुनीनां
लीनस्य मोहरजसः सहसैव शान्तिम् ।। -दर्पदलन 7/71

ख. प्रशान्तोऽन्तस्तृष्णाविषमपरितापः शमजलै-
रशेषः संतोषामृतरविसरपानेन वपुषः।
असङ्गः संभोगः कमलदलकीलालतुलया
भवारण्ये पुंसां परहितमुदारं खलु तपः।। -दर्पदलन 7/73

[4] पुनर्जन्मजराच्छेदकोविदः स्यात् वयः क्षये।

इसके अतिरिक्त भी कविवर क्षेमेन्द्र ने शील परोपकार, दया, आचरण तथा व्रतोपासनादि सम्बन्धी विचारों का विस्तृत रूप से प्रतिपादन किया हैं, जो आदर्श समाज की स्थापना हेतु आज भी उपादेय है। आडम्बरहीन जीवन व्यतीत करने पर बल देते हुए उन्होंने कहा है कि मनुष्य में यदि करूणा प्रवाहित करने वाली अहिंसा है तो उस तीव्र तपों से क्या? यदि शान्ति से निर्मल हुआ मन सत्यभूत है तो दूर-दूर के तीर्थों से क्या प्रयोजन? यदि बुद्धि परोपकाररत है तो दिखावे के दान पुण्यों से क्या?[2] सांसारिक क्षणभुङ्गुरता और वैराग्य की महत्ता का प्रतिपादन कविवर ने बहुत ही हृदयस्पर्शी भावों से युक्त किया है।[3]

मनः सौन्दर्य, सुखोपभोग, यौवन, स्वप्न एवं शरीर को कविवर क्षेमेन्द्र ने एसे अनित्य व क्षणभङ्गुर सुख प्रदान करने वाली वस्तुओं से जोड़ा है जिसके नित्य चिन्तन से सज्जन संसार ग्रन्थियों में बार-बार वहीं नहीं बाँध सकते हैं - ऐसा कविवर क्षेमेन्द्र का विश्वास है कविवर ने मन को पवन के द्वारा बहाये गये धूलि कणों का मित्र, सौन्दर्य को दिन के अन्त में अस्त होने वाला सूर्य सुखोपभोग को दुःखस्थिति प्राप्त घर की हिलने वाली संधियों, यौवन के फूलों

विदुरेण पुनर्जन्मबीजं ज्ञानानले द्युतम् । - चारुचर्या, पद्य संख्या 96

1 अन्ते सन्तोषदं विष्णुं स्मरद्धन्तारमापदाम् ।
शरतल्पगतो भीष्मः सस्मार गरुडध्वजम् ।। - चारुचर्या, पद्य संख्या 99

2 तप्तैस्तीव्रव्रतैः किं विकसतिकरुणास्यन्दिनी यद्यहिंसा
किं दूरैस्तीर्थसारैर्यदि शमविमलं मानसं सत्यपूतम् ।
यत्नादन्योपकारे प्रसरति यदि धीर्दानपुण्यैः किमन्यैः
किं मोक्षोपाययोगैर्यदि शुचिमनसामुच्यते भक्तिरस्ति।। -चतुर्वर्गसंग्रह 1/27

3 न कस्य कुर्वन्ति शमोपदेशं स्वप्नोपमानि प्रिय संगतानि।
जरानिपीतानि च यौवनानि कृतान्तदष्टानि च जीवितानि।। -चतुर्वर्गसंग्रह 4/15

का खिलना, स्वप्न में सम्बन्धियों से मिलना, तथा शरीर को आवागमन के रास्ते में पुण्यप्रदपनशाला माना है।[1]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने धर्म सम्बन्धी विचारों का प्रतिपादन करते हुए दान, तप, ज्ञान, परोपकार, अहिंसा, नम्रता आदि लौकिक एवं पारलौकिक दोनों क्षेत्रों में फलदायक गुणयुक्त नीति उपदेशों का यथार्थ चित्रण किया है। कविवर ने धर्म के बाह्याडम्बर रूप का खण्डन करते हुए अन्तःकरण की शुद्धि के साथ ही धर्म युक्त कर्म करने को जीवन में महत्त्व दिया है। इससे उनकी धर्म सम्बन्धी दृढ ज्ञान व यर्थाथता का भी आभास होता है, जो पाठकों के हृदयों में प्रेरणा का भाव उत्पन्न करने में भी सहायक है, क्योंकि उपदेशक जब स्वतः स्वकथन का पालक होता है, तब उसके उपदेशों का पाठक पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अतः कविवर क्षेमेन्द्र को यथार्थवादी कवि कहा जा सकता है।

काम-सम्बन्धी विचार

वस्तुतः विभिन्न नीतिकारों ने काम को भी मानव जीवन का महत्त्वपूर्ण तथ्य माना है, जिसका गृहस्थ से गहरा सम्बन्ध है। काम प्रसङ्ग में सर्वप्रथम स्त्री की भूमिका का प्राधान्य है। स्त्री के प्रति पुरुष के मन में आसक्ति तथा भावना भड़काने वाले कामदेव का चरित्र बहुत ही अद्भुत होता है। इसीलिए ही नीतिकार भर्तृहरि ने अपने शृङ्गार शतक में सर्वप्रथम कामदेव की वन्दना की है।[2] इसी

---

[1] चित्तं वातविकासि-पांसुसचिवं रूपं दिनान्तातपं
भोगं दुर्गतगेहबन्धचपलं पुष्पस्मितं यौवनम् ।
स्वप्नं बन्धुसमागमं तनुमपि प्रस्थानपुण्यप्रपां
नित्यं चिन्तयतां भवन्ति न सतां भूयो भवग्रन्थयः।। - चतुर्वर्गसंग्रह 4/23

[2] शम्भुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां ।
येनाक्रियन्त सततं गृहकुंभदासाः।।
वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय।

प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने भी अपने लघुकाव्य 'समयमातृका' के आरम्भ में कामदेव को नमस्कार किया है।[1] स्त्रियों के आकर्षक अङ्ग ही उसके आभूषण हैं तथा विभिन्न हाव-भाव ही काम जन्य भावों के हेतु हैं। भर्तृहरि, अमरुक आदि कवि स्त्री प्रसंगों पर अपनी लेखनी के माध्यम से उत्कृष्ट भाव पिरोकर सहृदय पाठकों को मन्त्रमुग्ध करने में पूर्णतः सक्षम हैं। जहाँ एक आरे भर्तृहरि मुख, नेत्र, केशराशि, स्तन युगल आदि अवयवों का विभिन्न उपमाओं से वर्णन करते हैं।[2] वही कविवर क्षेमेन्द्र भी इसी तरह का भाव स्पष्ट करते हैं।[3] स्त्री प्रसंग में नीतिकार चाणक्य ने जहाँ स्त्रियों को बहुप्रेमी वाली बताया है।[4] वहीं भर्तृहरि ने भी उसी के साम्य का भाव दिया है।[5] इसी प्रकार क्षेमेन्द्र ने भी स्त्रियों पर विश्वास न करने की नीति का प्रतिपादन किया है।[6] भोग विलास बढ़ाने वाली स्त्री सर्वथा

तस्मै नमो भगवते मकरध्वजाय।। - शृंगारशतक, पद्य संख्या 1

1 अनङ्गवातलास्त्रेण जिता येन जगत्त्रयी।
विचित्रशक्तये तस्मै नमः कुसुमधन्वने।। - समयमातृका 1/1

2 वक्त्रं चन्द्रविकासि पङ्कजपरीहासक्षमे लोचने।
वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानां चयः।।
वक्षोजाविभवकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली।
वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम् ।।
-शृङ्गारशतक,श्लोक संख्या-5

3 स्तनस्थले हारिणि सुन्दरीणां नितम्बबिम्बे रसनासनाथे।
धत्ते विशेषाभरणाभिमानलीला नवोल्लेखलिपिः प्रपञ्चम् ।। -चतुर्वर्गसंग्रह 3/9

4 जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।
हृदये चिन्तयत्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः।। -चाणक्यनीतिदर्पण 16/2

5 जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।
हृदये चिन्तयत्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ।। -शृङ्गारशतक, पद्य संख्या 81

6 न कुर्यात् परदारेच्छां विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत् ।
हतो दशास्यः सीतार्थे हतः पत्न्या विदूरथः।। - चारुचर्या, पद्य संख्या 10

त्याज्य है।[1] काम अपनी कमनीयता से मनुष्य में अत्यन्त मोह उत्पन्न करके भयंकर विष की तरह, सहसा अपनी मधुरता से जीवन का अन्त कर देता है।[2] कविवर क्षेमेन्द्र के विचार में बहुत दिनों का व्यसनी और चितवनों की चाल जानने वाला विषयासक्त (कामी) मनुष्य स्त्रियों द्वारा पालतू मयूर की तरह नचाया जाता है।[3] काम विषयक दोष पक्ष का प्रतिपादन करते हुए कविवर ने काम विषयक दोषों से युक्त व्यक्ति को वृद्धत्व की प्राप्ति बताया है।[4] अनुरक्तों से आसक्त स्त्रियाँ माया मोह रूपी अँधेरे से भरी रात्रियों में कामी पुरुषों का हृदय उसी तरह हर लेती हैं जैसे- खून पीने वाली डाकिनियाँ अन्धकारमयी रात्रियों में मुग्धों का हृदय अपनी माया से खींच लेती है।[5] कविवर ने स्त्री जन्य चेष्टाओं को संसार के रहस्य से भी अधिक आश्चर्य और गूढ़[6] बताते हुए स्त्रियों के मन को पीपल के पल्लव हाथी के कान के अग्रभाग व विद्युत-विलास से भी अधिक चंचल माना है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि धन एवं यौवन से जन्य

---

1 नष्टशीलां त्यजेन्नारीं रागवृद्धिविधायिनीम् ।
चन्द्रोच्छिष्टाधिकप्रीत्यै पत्नी निन्द्याप्यभूत् गुरोः।। -चारुचर्या, पद्य संख्या 75

2 कामः कमनीयतया किमपि निकामं करोति संमोहम् ।
विषमिव विषमं सहसा मधुरतया जीवनं हरति।। -कलाविलास 3/1

3 दीर्घव्यसननिरुद्धो भ्रूभङ्गज्ञो विधेयतां यातः।
विषयविवशो मनुष्यः केलिशिखण्डीव नर्त्यते।। -कलाविास 3/4

4 रूपं क्षणस्वीकृतरक्तमांसग्रासप्रसक्ता कृतकामदोषा।
केशग्रहेणैव जरा जनानां वेश्येव वित्तं कवलीकरोति।। - दर्पदलन 4/5

5 रक्ताकर्षणसक्ता मायाभिर्मोहतिमिररजनीषु।
नार्यः पिशाचिका इव हरन्ति हृदयानि मुग्धानाम् ।। - कलाविलास 3/5

6 लज्जाकरमसत् कर्म कथं तत् कथयामि ते।
संसारादपि साश्चर्यं गहनं स्त्रीविचेष्टितम् ।। -दर्पदलन 1/62

अभिमान की कालिमा से युक्त स्त्रियाँ परिभ्रष्ट होने से रोकी नहीं जा सकती हैं।[1] कविवर ने मानव इन्द्रियों पर विश्वास न करने की नीति का भी प्रतिपादन किया है।[2] कवि ने स्त्रियों की स्वतन्त्रता अहितकर मानते हुए कहा है कि जिस घर में स्त्रियां पति से छिपकर कार्य करने में स्वतन्त्र हो जाती हैं, वह घर निश्चय ही आपत्तियों का घर बन जाता है।[3]

कविवर क्षेमेन्द्र ने काम का विस्तृत वर्णन किया है तथा इसके दूषित पहलुओं को जन सामान्य के समक्ष रखकर उससे बचने के लिए उपदिष्ट किया है। चञ्चला स्त्री के विभिन्न रूपों में अनेक प्रेमियों से रमण करने वाली और स्वभाव से बहुरूपों वाली होना कवि ने बताया है।[4] वस्तुतः स्त्री के चञ्चल मन के दोष के ही कारण स्त्रियां सहज अनुरक्ता होती है। इनके मन की चञ्चलता सहज ही होती है जिसे कविवर ने चञ्चलता के विभिन्न उपमानों से बढ़कर बताया है।[5] अन्यत्र भी कामिनी द्वारा चित्ताकर्षण शक्ति के प्राबल्य क वर्णन किया गया है।[6] कवि ने स्त्री के शृंङ्गारिक चरित्र का अतिरञ्जित एवं एकाङ्गी वर्णन किया है।

---

1 धनयौवन-सञ्जातदर्पकालुष्य-विप्लवाः।
केनोन्नतपरिभ्रष्टा वार्यन्ते निम्नगाः स्त्रियः।। -दर्पदलन 1/65

2 तीव्रे तपसि लीनानामिन्द्रियाणां न विश्वसेत् ।
विश्वामित्रोऽपि सोत्कण्ठः कण्ठे जग्राह मेनकाम् ।। -चारुचर्या पद्य संख्या 36

3 स्त्रियो यत्र प्रगल्भन्ते भतुर्राच्छाद्य कर्तृताम् ।
गृहं भवत्यवीयं तदास्पदं परमापदाम् ।। -दर्पदलन 2/23

4 नयनविकारैरन्यं वचनैरन्यं विचेष्टितैरन्यम् ।
रमयति सुरतेनान्यं स्त्री बहुरूपा स्वभावेन।। -कलाविलास 3/14

5 अपि कुञ्जरकर्णाग्रादपि पिप्पलपल्लवात् ।
अपि विद्युद्विलसिताद् विलोलं ललनामनः।। - दर्पदलन 1/63

6 चलितं हि कामिनीनां धर्तुं शक्नोति कश्चितम् । -कलाविलास 3/41

इससे सामान्य स्त्रीचरित केवल एक पक्ष अर्थात् दूषित पक्ष ही सामने आता है, जबकि उसका एक उज्ज्वल पक्ष भी है।

कविवर ने स्त्री को मनुष्य की जन्मदात्री, प्राणों को हरने वाली, भीरू स्वभाव वाली व अग्नि में प्रवेश करने जैसी साहस वाली, कठोर व कोमल तथा मुग्ध होते हुए भी विदग्ध जनों को ठगने वाली बताया है।[1] वस्तुतः काम प्रतीका युवतियाँ काम पीड़ित व्यक्ति के लिए अग्नि सदृश ताप पहुँचाने वाली हैं तथा यह भी निश्चित है कि काम, क्रोध व मद से उद्धत जन स्त्रियों के सान्त्वायुक्त वचनों द्वारा ठगे जाते हैं।[2] काम मोहित जन दुष्प्राप्य को भी सुलभ ही मानते हैं।[3] कुसुम के सामने शरीर वाली, हीरे के समान कठिन हृदय लेकर भी सद्भाव दिखलाने वाली, ऐसे विचित्र आचरणों वाली स्त्रियाँ किस के मन में मोह पैदा नहीं करती।[4] अर्थात् सबके मन में मोह पैदा करती हैं। कवि के अनुसार स्त्रियों को प्रेमियों से विरक्त नम्रों से अभिमान दिखाने वाली, विरक्तों की बातों में अनुरक्त, ठगों की बात पर विश्वास करने वाली तथा सद्भाव से शंकित होती हैं।[5]

प्रिय मिलन के अवसर पर हर्षविभोर नायिका की चेष्टायें देखते ही बनती हैं-

---

1 देहप्रदाः प्राणहरा नराणां भीरुस्वभावाः प्रविशन्ति वह्निम् ।
क्रूराः परं पल्लवपेशलाङ्ग्यो मुग्धा विदग्धानपि वञ्चयन्ति।। -दर्पदलन 1/66

2 अयं स्मरातुरस्तावद् वचसा न निवर्तते।
वञ्च्यन्ते सान्त्ववादेन कामक्रोधमदोद्धताः।। -दर्पदलन 3/102

3 दुष्प्राप्यमपि मन्यन्ते सुलभं काममोहिताः।। -दर्पदलन 1/105

4 कुसुमसुकुमारादेहा वज्रशिलाकठिनहृदयसद्भावाः।
जनयन्ति कस्य नान्तर्विचित्र चरिताः स्त्रियो मोहम् ।। -कलाविलास 3/8

5 अनुरक्तजनविरक्ता नम्रोत्सिक्ता विरक्तरागिण्यः।
वञ्चकवचनासक्ता नार्यः सद्भावशङ्किन्यः।। -कलाविलास 3/9

"पति बहुत दिनों बाद घर लौटा है, उसे देखते ही सुनयना गृहिणी की आँखों में हर्ष के आंसू भर आये हैं। भाव विभोर होकर वह अपने आँचल से उस घोड़े के गले की धूल झाड़ने लगती है जो उसके प्रिय को घर तक ले आया है प्रेमातिरेक का कैसा स्वाभाविक अंकन है।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने स्त्री को ही काम का आश्रयभूत माना है तथा कामीजनों का तज्जन्य ताप में जलना निश्चित माना है वैसे इसके सहानुभूतिपूर्ण पक्ष पर विचार करते हुए इसे पुरुषार्थ का प्रमुख अङ्ग माना है कामाधिक्य ही वस्तुतः उसका दोष पक्ष है तथा प्रतिलोम जाति व सर्वोपलब्धा स्त्रियों का संसर्ग विशेषतः निषिद्ध माना गया है। वस्तुतः काम प्रशंसा के प्रसंग में नारी के सौन्दर्य प्रियजन के विरह की पीड़ा व मिलन की घड़ियों के हर्षातिरेक का अङ्कन किया गया है। जो नारी की संयोगावस्था में आनन्द सन्दोह है वही विरहावस्था में दुःखजनिका हो जाती है- यह क्या बात है कि वही प्रिया जिसके चञ्चल नयन नील कमल से है, भौहें तरङ्गों सी, मुख सौ चन्द्रों के समान तथा गात्रमृणाललता की तरह है और जिसका स्पर्श चन्दन की तरह शीतल है, वही प्रिया विरह में क्यों अग्निमयी सी हो जाती है और उसकी याद भी विषम ताप को उत्पन्न करने लगती है।[2]

---

1 समायाते पत्यौ बहुतरदिनप्राप्य पदवीं
समुल्लङ्घ्याविघ्नागमनचतुरं चारुनयना।
स्वयं हर्षोद्बाष्पा हरति तुरगस्यादरवती
रजः स्कन्धालीनं निजवसनकोणावहननैः।। - चतुर्वर्गसंग्रह 3/18

2 कुवलयमयी लोलापाङ्गे तरङ्गमयी भ्रुवोः
शशिशतमयी वक्त्रे गात्रे मृणाललतामयी।
मलयजमयी स्पर्शे तन्वी तुषारमयी स्मिते
दिशति विषमं स्मृत्या तापं किमग्निमयीव सा।। - चतुर्वर्गसंग्रह 3/7

इस प्रकार लघुकाव्यानुशीलन से स्पष्ट होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने जहाँ नारी की लौकिक जीवन में प्रमुख भूमिका को स्वीकार करते हुए उसके शृङ्गार व संयोग विषयक पक्ष का सहानुभूतिपूर्ण वर्णन किया है, वहीं उसे वियोगावस्था में दुःखदायिनी व स्वभावतः चञ्चला एवं सहज गुणानुरक्ता माना है।

रूप-सम्बन्धी विचार

कविवर क्षेमेन्द्र ने रूप के सम्बन्ध में अन्य पूर्व विचारकों की तरह इसे अनित्य और निस्सार बताते हुए इस पर अभिमान न करने का उपदेश दिया है। हितोपदेश में तो विद्या के अभाव में रूप और यौवन को उसी प्रकार अस्पृहणीय बताया है, जैसे गन्धाभाव में किंशुक का पुष्प[1] कठोपनिषद् में भी रूप, सौन्दर्य तथा इन्द्रिय सम्बन्धी तेजस्विता की अनित्यता का वर्णन यम-नचिकेता के संवाद से ही प्राप्त होता है।[2] कठोपनिषद् के उपर्युक्त भाव का विकास हमें हितोपदेशादि की अपेक्षा क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में अधिक सुन्दर रूप में देखने को मिलता है। कविवर ने कमलों के तुल्य मनुष्यों के सौन्दर्याभिमान को अस्थिर बताते हुए कहा है कि जैसे धूम में चित्र तुषारापात से पद्म, कृष्णपक्ष के कारण चन्द्रबिम्ब और गर्मी के कारण जल की शीतलता शोभारहित हो जाती है अर्थात् समाप्त हो जाती है उसी प्रकार वृद्धावस्था के अवतीर्ण होने पर सुन्दर रूप भी शोभाहीन हो जाता है।[3] रूप की असारता व अनित्यता के सम्बन्ध में क्षेमेन्द्र के ये चित्र भूरि-भूरि

---

1 रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।
- हितोपदेश कथामुख, पद्य संख्या 38

2 श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः। -कठोपनिषद् 1/26

3 क. पद्मोपमानां दिनसुन्दराणां कोऽयं नृणामस्थिररूपदर्पः।
रूपेण कान्तिः क्षणिकैव येषां हरिद्ररागेण यथांशुकानाम् । - दर्पदलन 4/1

ख. धूमेन चित्रं तुहिनेन पद्मं तमिस्रपक्षेण सुधांशुबिम्बम् ।

प्रशंसनीय हैं। कितना भी रूपवान् व्यक्ति क्यों न हो, जब वह शोक और दुःख के वशीभूत हो, खान-पान को भी तिलांजलि दे बैठता है, फलतः निर्बल होता हुआ वह एक दिन अपने शरीर की स्वच्छता में भी असमर्थ हो जाता है उठ-बैठ भी नहीं सकता, तब क्या उसकी यौवनश्री या सौन्दर्य शोभा स्थिर रह पाती है।[1] इसी प्रकार अतिशय रूप का व्यक्ति भी कारागृह में सूखकर धूलि-धूसरित तथा दीर्घ केश, श्मश्रू हो प्रेत की भाँति प्रतीत होता है।उसका शरीर चीलरों और जुँओं का एकमात्र निवास स्थान हो जाता है ऐसी स्थिति में भी क्या रूप पर अभिमान करना उचित है।[2] इसी प्रसंग में अन्यत्र भी दमयन्ती, सीता, अहल्या, आदि रूपवती नारियों के दुःख के प्रति रूप को ही हेतु बताया गया है।[3]

शीतं निदाधेन न भाति तोयं जरावतारेण च चारुरूपम् । - दर्पदलन 4/4

ग. न लक्ष्यते कालगतिः सवेगचक्रभ्रमभ्रान्तिविधायिनीयम् ।
ह्यो यः स स्फुटयौवनोऽद्यप्रातर्जराजीर्णतनुः स एव।। - वही 4/7

घ. पुंसामवस्थात्रितयतिभागे रूपप्रदं यौवनमेव नान्यत् ।
तस्मिन् मदोन्मादगदाङ्गभङ्गव्यङ्गादिदोषोपहते क्व रूपम् ।। - वही 4/8

1 यदा नरः शोचति दुःखतप्तस्त्यक्ताशनः शौकविवर्णवक्त्रः।
न स्नाति नोत्तिष्ठति नैव शेते तदा क्व रूपं क्व च यौवनश्रीः। -दर्पदलन 4/9

2 यदास्थितः प्रेत इवास्थितशेषः कारागृहे धूसरितोर्ध्वकेशः।
प्रकीर्णयूकामलकालकायस्तदा क्व रूपस्य गतोऽभिमानः।। -वही 4/10

3 रूपातिशयसम्पन्ना नानागुणसमन्विताः
किमर्थं दुःखिता जाता कान्तसौख्यविवर्जिताः।
दमयन्ती तथा सीता रूपातिशयपारगा
दुःखिता तेन संजाता कान्तसौख्यविवर्जिता।।
अहल्या बन्धकी जाता कपिलस्य तु योषिता।
रूपस्य तु प्रभावेण दासी जाता तिलोत्तमा।।
अतिरूपेण स्वल्पायुः पुरुषो योषितोऽपि वा।
अथवा सौख्यहीनस्तु जायते स महातपे।। -देवीपुराण, नन्दाकुंड, प्रवेशाध्याय

आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी प्रस्तुत प्रसंग में राजा पुरुरवा और अश्विनी कुमारों की कथा द्वारा बहुत ही आकर्षक रूप से रूप की असारता का प्रतिपादन किया है।

पुरुरवा की प्रस्तावना में उर्वशी के स्वरूप का वर्णन करते हुए महाकवि ने उर्वशी के मुखचन्द्र और पद्म की एक साथ उपस्थिति की ओर संकेत किया है। इस स्थल पर उन पर कालिदास की स्पष्ट छाप दृष्टिगत होती है।[1] प्रस्तुत विचार में उनकी मनोविज्ञान सम्बन्धी सूक्ष्म जानकारी की ओर संकेत किया गया है।[2]

शौर्य-सम्बन्धी विचार

शौर्य के सम्बन्ध में जैसा कि भर्तृहरि ने परिचय में 'शक्तिः परेषां परपीडनाय' कहकर दूसरों को कष्ट देने वाली शक्ति को हेय तथा रक्षिका शक्ति को उपादेय बताया है, उसी प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने बताया है कि प्राणों की रक्षा ही शौर्य है, प्राणों का हर्ता शूर नहीं हो सकता।[3] शौर्य की शोभा तो औचित्य, विनय और दया के साथ ही मानी जाती है। इनके अभाव में तथा दर्प से युक्त होने पर शौर्य 'शौर्य' नहीं रह जाता है।[4] कविवर क्षेमेन्द्र ने निर्बलों पर

---

[1] क. उर्वशीस्वमुखे मैत्रीं वदन्ती वेन्दुपद्मयोः।। -दर्पदलन 4/19

ख. चन्द्रं गता पद्मगुणान् न भुङ्क्ते
पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला
द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः।। -कुमारसम्भव 5/10

[2] रूपसाम्येन शीतांशुवंशे जातः स लज्जते ।
न करोति रतेरग्रे तत्कथां मत्सरी स्मरः।। -दर्पदलन 4/35

[3] एतदेव परं शौर्यं यत्परप्राणरक्षणम् ।
न हि प्राणहरः शूरः शूरः प्राणप्रदोऽर्थिनाम् । दर्पदलन 5/2

[4] शौर्येण दर्पः पुरुषस्य कोऽयं दृष्टस्तिरश्चामपि शूरभावः।
औचित्यहीनं विनयव्यपेतं दयादरिद्रं न वदन्ति शौर्यम् ।। - वही 5/2

क्रोध की तीक्ष्णता, महापापियों के प्रति धीरता, बुद्धि में छल व वाणी में कटुता नीच लोगों में शौर्य को माना है।[1]

ऋग्वेद में "अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु" आदि वाक्यों द्वारा जिस वीरत्व को समस्त सफलताओं का साधन माना गया है। रामायण में भी 'सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण धैर्येण च तेजसा च' इत्यादि द्वारा शौर्य आदि से ऐश्वर्य और सफलताओं की सिद्धि का संकेत किया गया है। वह शौर्य भी अभिमान जनक होकर न केवल सफलता में बाधक होता है, किन्तु अत्यन्त परिभव (तिरस्कार) का कारण बनता है।[2] पञ्चतन्त्र में भी भासुरक और शशक की कहानी की प्रस्तावना करते हुए उक्त कहानी द्वारा शौर्य की वास्तविकता की ओर संकेत मिलता है।[3] कविवर क्षेमेन्द्र ने भी पञ्चतन्त्रकार के भाव से साम्य रखते हुए उनकी उक्ति की यथार्थता अपने पद्य के द्वारा स्पष्ट की है।[4] कविवर ने शौर्य को चपल और अस्थिर बताया है।[5] इस प्रसंग में उन्होंने इन्द्र वृत्रासुर, परशुराम और सहस्त्रार्जुन, रावण और बलि, जरासंध-दुःश्शासन और भीम, कर्ण और भीम, कर्ण और अर्जुन और शिशुपाल और कृष्ण आदि का अत्यन्त पराक्रमी वीरों के पराजय की कहांनियाँ अंकित की हैं। कविवर ने शौर्य के साथ दर्प की सत्ता को

---

1 अशक्यते रौद्रतातैक्ष्ण्यं तीव्रतापेषु धीरता।
छद्मधीर्वाचि पारुष्यं नीचानां शौर्यमीदृशम् ।। - वही 2/21

2 भवत्यन्तर्दर्पः परिभवपदं कालगलितः। दर्पदलन 5/1

3 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्
पश्य सिंहो मदोन्यत्तः शशकेन निपातितः।' -पञ्चतन्त्र 1/237

4 न कश्चिद् बुद्धिहीनस्य शौर्येण क्रियते गुणः।
पर्जन्यगर्जितामर्षी श्वभ्रे पतति केसरी।। -दर्पदलन 5/24

5 भीरुः शूरत्वमायाति शूरोप्यायाति भीरुताम् ।
न क्वचित् चपलस्यास्य शौर्यस्य नियता स्थितिः।। -दर्पदलन 5/14

सर्वथा हेय माना है।[1] उनका कहना है कि दर्प से विकृत शौर्य गुणहीन माना जाता है। दर्प के द्वारा शौर्य का विनाश उसी प्रकार हो जाता है जैसे कुपुत्र से कुल का, लोभ से गुणों का, दुर्नीति से ऐश्वर्य का।[2] शौर्य विक्रीतकायस्य सेवकस्य किमद्भुतम् । मेषस्येव वधो यस्य सूनाबद्धस्य निश्चितः।। के द्वारा कविवर क्षेमेन्द्र ने तात्कालिक भारत की परिस्थिति के अध्ययन के लिए सहायक सामग्री प्रस्तुत कर दी है। इससे समाज में सामान्य रूप से प्रचलित [illegible] तथा दास प्रथा का स्पष्ट संकेत मिलता है। उस काल में पराक्रम की ही सर्वाधिक महिमा थी। शरणागत के लिए अभयदान या प्राणदान भी वीर समाज में विशिष्ट गुण के रूप में मान्य था।[3]

सम्भवतः उस काल में शौर्य के सर्वाधिक महत्त्व के कारण शौर्य की आलोचना कविवर खुलकर न कर सके और इसलिए उनका यह शौर्य विचार अन्य विचारों के बीच दबा हुआ सा प्रतीत होता है।

आचरण-सम्बन्धी विचार

कविवर क्षेमेन्द्र ने पूर्वोक्त विचारों के अतिरिक्त अन्य आचरण सम्बन्धी विचारों का भी प्रतिपादन किया है। स्वप्रशंसा, बाण सदृश चुभने वाली कटु वाणी, कृतघ्नता, स्त्री के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण परवशता, चुगलखोरी, सम्मान को मिटा देने वाली याचना, भाई-बन्धुओं एवं संबंधियों का अपमान, एवं विवाद में मदान्धता आदि को वर्जित बताया है तथा प्रमाणस्वरूप रामायण व

---

1 न दर्पविकृतं शौर्यं न मायामलिनं मनः।
न द्वेषोष्णं श्रुतं येषां गण्यन्ते तद्गुणा बुधैः ।। -दर्पदलन 5/27

2 कुलं कुतनयेनेव लोभेनेव गुणोदयः।
ऐश्वर्यं दुनयेनेव शौर्यं दर्पेण नश्यति।। - वही 5/28

3 निष्कारणनृशंसस्य शौर्यं हिंस्रत्वमुच्यते।
यः सर्प इव संनद्धः प्राणबाधाय देहिनाम् ।। - वही 5/22

महाभारतादि ग्रन्थों के कथानकों को उद्धृत किया गया है।[1] क्रोध के प्रसंग में कविवर क्षेमेन्द्र ने क्रोध के वशीभूत न होने का उपदेश दिया है तथा क्रोधी को भी कभी नाराज न करने के लिए कहा है।[2]

''क्रोधः पापस्य कारणम् '' मनीषियों द्वारा कहा गया है। गीता भी क्रोध को सर्वनाश का हेतु मानती है।[3] कविवर ने मनुष्य को ब्राह्ममुहूर्त में आलस्य त्याग कर जगना, भगवान् महेश्वर की पूजा किये बिना कोई कार्य न करना, अच्छी तरह स्वच्छ होकर ही देवताओं की अर्चना करना, पराई स्त्री पर विश्वास न करना, मद्य का व्यसन न करना, धर्म की मर्यादा का त्याग न करना, सदैव सत्पुरुषों की संगति करना, अपनी भक्ति से माता पिता को प्रसन्न रखना, सात्त्विक भावना से ही दान देना, ब्राह्मण का कभी अपमान न करना, सेवा के योग्य व्यक्ति की सेवा करना व दम्भपूर्वक उद्धत होकर धर्म का आचरण न करना आदि मानव आचरण सम्बन्धी विचारों के द्वारा जनसामान्य को उपदिष्ट किया है।[4] सज्जन पुरुष श्रुतियों व स्मृतियों द्वारा बताये गये आचरण को न छोड़ें

---

[1] क. अविस्मृतोपकारः स्यान्न कुर्वीत कृतघ्नताम् ।
हत्वोपकारिणं विप्रो नाडीजंघमधश्च्युतः।। -चारुचर्या, पद्य संख्या 25

ख. न विवादमदान्धः स्यान्न परेषाममर्षणः।
वाक्पारुष्याच्छिरश्छिन्नं शिशुपालस्य शौरिणा।। -वही, पद्य संख्या 32

[2] न क्रोधयातुधानस्य धीमान् गच्छेदधीनताम् ।
पपौ राक्षसवद् भीमः क्षतजं रिपुवक्षसः।। - चारूचर्या, पद्य संख्या 38

[3] क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। -गीता 2/64

[4] क. ब्राह्मे मुहूर्ते पुरुषस्त्येन्निद्रामतन्द्रितः।
प्रातः प्रबुद्धं कमलमाश्रयेच्छ्रीर्गुणाश्रया।। - चारुचर्या, पद्य संख्या 2

ख. न कुर्वीत क्रियां काचिदनभ्यर्च्य महेश्वरम् ।
ईशार्चनरतं श्वेतं नाभून्नेतुं यमः क्षमः।। - वही 4

अग्नि, गौ, गुरु और देवताओं को पैर से तथा घी को झूठे हाथों से स्पर्श न करें तथा किसी के वध के लिए मारण आदि तान्त्रिक प्रयोग न करें ऐसा उपदेश कविवर क्षेमेन्द्र ने आदर्श मानवीय वृत्ति हेतु दिया है।[1] इस प्रकार के उपदेश मनु स्मृति से प्रेरित लगते हैं क्योंकि मनुस्मृति में ऐसे उपदेशों की बहुलता है प्रतिलोभ विवाह निषेध करते हुए ययाति द्वारा शुक्र की कन्या से विवाह कर प्राप्त म्लेच्छता के दुष्परिणाम द्वार पुष्ट प्रमाण भी दिया गया है।[2] कविवर क्षेमेन्द्र ने द्वेष, प्रेम, अभिमान, व नम्रता को क्रमशः दोष उन्नति, पतन सर्वोन्नति का कारण माना है।[3]

ग. न कुर्यात् परदारेच्छां विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत् ।। - वही 10

घ. न मद्यव्यसनी क्षीबः कुर्याद् वेतालचेष्टितम् ।। -चारुचर्या, पद्य -11

ङ. न त्यजेद् धर्ममर्यादामपि क्लेशदशां श्रितः।। -वही 13

च. कुर्वीत संगतं साद्भिर्नासद्भिर्गुण वर्जितैः।। -वही 15

छ. मातरं पितरं भक्त्या तोषयेन्न प्रकोपयेत् । -वही 16

ज. ब्राह्मणान्नावमन्येत ब्रह्मशापो हि दुःसहः।। -वही 20

झ. दम्भारम्भोद्धतं धर्मं नाचरेदन्तनिष्फलम् ।। -वही 21

[1] क. श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं न त्यजेत् साधुसेवितम् ।
दैत्यानां श्रीवियोगोऽभूत् सत्यधर्मच्युतात्मनाम् ।।- चारुचर्या, पद्य संख्या 83

ख. पदाग्निं गां गुरुं न चोच्छिष्टः स्पृशेद घृतम् ।
दानवानां विनष्टा श्रीरुच्छिष्टस्पृष्टसर्पिषाम् ।। -वही 85

ग. न कुर्यादभिचारोग्रवध्यादिकुहकाः क्रियाः।
लक्ष्मणेनेन्द्रजित कृत्याद्यभिचारमयो हतः।। -वही 91

[2] प्रतिलोम विवाहेषु न कुर्यादुन्नतिस्पृहाम् ।
ययातिः शुक्रकन्यायां सस्पृहो म्लेच्छतां गतः।। -वही 86

[3] द्वेषः कस्य न दोषाय प्रीतिः कस्य न भूयते।
दर्पः कस्य न पाताय नोन्नत्यै कस्य नम्रता।। -दर्पदलन 1/32

दया, सत्य व निर्मल शील की महत्ता का वर्णन करते हुए कविवर ने कहा है कि विवेकशील लोगों की दया, सत्य व निर्मल शील ही क्रमशः प्रशस्त विद्या, अक्षय धन व उत्तम कुल है।[1] कविवर क्षेमेन्द्र ने स्वभाव को अपरिवर्तनीय मानते हुए कहा है कि प्राणियों का सहज स्वभाव बदला नहीं जा सकता है।[2] वे भाग्यवादी थे तथा भाग्य पर विश्वास करते थे। उन्होंने सुख दुःख को दैवाधीन मानते हुए कहा है,[3] कि मनस्वी लोग अपने कष्ट के लिए भाग्य को ही कारण मानते हैं।[4]

इन सभी उपदेशों एवं नीति परक तथ्यों के पालन में ही इनकी सार्थकता मानते हुए कविवर क्षेमेन्द्र ने कहा है कि दूसरों को उपदेश देने में तो सभी पण्डित होते हैं।[5]

याचना करने वाले को सर्वोपरि महत्ता देते हुए कविवर ने कहा है कि कुलीन आदरणीय होता है, कुलीन से कलावान् की अपेक्षा विद्वान, विद्वान् की अपेक्षा सत्पुरुष, सत्पुरुष की अपेक्षा धनवान् आदमी, उसकी भी अपेक्षा दानशूर

---

1 दयैव विदिता विद्या सत्यमेवाक्षयं धनम् ।
अकलङ्कविवेकानां शीलमेवामलं कुलम् ।। -दर्पदलन 1/30

2 इत्युक्तोऽप्यसकृत् पत्न्या स्वलोभान् न चचाल सः।
स्वभावः सर्वभूतानां सहजः केन वार्यते।। -दर्पदलन 2/69

3 निर्धनाः सुखिनो दृष्टाः सधनाश्चातिदुःखिताः।
सुखदुःखोदये जन्तोर्दैवाधीने धनेन किम् ।। -दर्पदलन 2/57

4 मिथ्यापवाददानेन नैव भ्रात्रे चुकोप सः।
निकारे कारणं दैवं मन्यन्ते हि मनीषिणः।। -दर्पदलन 3/43

5 इत्युक्ते मुनिपुत्रेण ब्राह्मणस्तमभाषत।
अहो परोपदेशेषु सर्वो भवति पण्डितः।। -दर्पदलन 3/59

व्यक्ति होता है, लेकिन जो कभी भी याचना नहीं करता वह व्यक्ति दानशूर की कीर्ति को भी जीत लेता है।[1]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के उपदेशपरक विचारों से ज्ञात होता है कि क्षेमेन्द्र बहुत ही उदार विचारज्ञ एवं उपदेशक थे। उन्होंने धर्म, विद्या, काम, रूप, धन, परोपकार, विनय, अहिंसा, बाह्य एवं अन्तःकरण की सुचिता, दान, तप, मोक्ष, ब्रह्मचर्य एवं सभी लौकिक एवं पारलौकिक जीवनोपयोगी एवं सद् पक्षों का बहुत ही यथार्थ रूप में प्रतिपादन किया है। इन विभिन्न प्रकार के विचारपरक वर्णनों से उनके एक गहन अध्ययन एवं अनुभव का ज्ञान प्राप्त होता है। ये सभी वर्णन पाठकों के हृदय में अपना अमिट स्थान बनाने में पूर्ण रूप से सक्षम हैं। क्षेमेन्द्र विविध धर्मशास्त्रों, निगमागम आदि में प्रतिपादित नीतिसम्बन्धी एवं जीवन-व्यवहारसम्बन्धी अनेक उपदेशपरक विचारों को अत्यन्त सहज सरल शैली में पाठकों के समक्ष उपस्थापित करते हैं, प्रायः पौराणिक आख्यानों एवं पूर्वकथाओं के प्रमाणों द्वारा अपने कथन की पुष्टि करते हैं। उनमें कवि और उपदेष्टा का समुचित समन्वय है। उनकी रचनाएँ नीतिपरक वचनों एवं सुभाषितों का भण्डार हैं। इस क्षेत्र में वे भर्तृहरि के नीतिशतक, चाणक्यनीतिदर्पण, पञ्चतन्त्र आदि से कम नहीं हैं। इसीलिए सभी बड़े सुभाषित संग्रहों में उनके सुभाषितों एवं सूक्तिवाक्यों को स्थान मिला है। अतः क्षेमेन्द्र का अपना एक स्वतन्त्र सुभाषितकोष तैयार किया जा सकता है और यह एक संग्रहणीय संग्रह होगा।

कविवर क्षेमेन्द्र के विचारपरक लघुकाव्य

कविवर द्वारा रचित विचारपरक लघुकाव्य निम्नलिखित हैं-

---

[1] मान्यः कुलीनः कुलजात् कलावान् विद्वान्कलाज्ञाद्विदुषः सुशीलः।
धनी सुशीलात् धनिनोऽपि दाता दातुर्जिता कीर्तिरयाचकेन।। -चतुर्वर्गसंग्रह 1/26

1. चारुचर्या

यह कविवर क्षेमेन्द्र का शतप्रतिशत मानव आचरण सम्बन्धी उपदेशात्मक लघुकाव्य है जो नीतिकार भर्तृहरि, चाणक्य आदि के नीतिग्रन्थों तथा मनुस्मृति आदि की भाँति मानवजीवनोपयोगी विचारों का उपदेशात्मक विवरण हैं। इस लघुकाव्य में 'अनुष्टुप् ' छन्द में रचित सौ पद्य हैं जिसकी प्रथम पंक्ति में किसी एक नैतिक उक्ति का प्रतिपादन है और द्वितीय पंक्ति में अर्थान्तरन्यास शैली में पुराणों, रामायण एवं महाभारतादि महाकाव्यों से उदाहरण देकर उसका समर्थन किया गया है। इस लघुकाव्य ग्रन्थ का संस्कृत साहित्य में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रो0 कीथ के अनुसार इस लघुकाव्य का महत्त्व इसलिए अधिक है, क्योंकि 'द्या' द्विवेदी ने नीतिमञ्जरी का निर्माण 'चारुचर्याशतक' के आधार पर ही किया है।[1]

2. चतुर्वर्गसङ्ग्रह

यह चार वर्गों में विभक्त उपदेशपरक लघुकाव्य हैं जिसमें कविवर क्षेमेन्द्र ने चारों पुरुषार्थों धर्म, अर्थ काम, व मोक्ष पर मनोहारी विचारों को व्यक्त किया है। इस लघुकाव्य का उद्देश्य उन्होंने स्वतः मनीषियों के सन्तोष व शिष्यों के उपदेश के लिए बताया है।[2] इस लघुकाव्य में धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष की अहं भूमिका का उल्लेख है। इसमें कविवर ने काम का विस्तृत वर्णन किया है।

3. सेव्यसेवकोपदेश

यह कविवर द्वारा रचित 61 पद्यों का एक लघुकाव्य है जो स्वामी और सेवक के बीच होने वाले आवश्यक आदर्श व्यवहारपरक विचारों से युक्त है

---

1 **Prof. A.B. Keith 'History of Sanskrit Literature' p. 239**

2 **उपदेशाय शिष्याणां सन्तोषाय मनीषिणाम् ।**
क्षेमेन्द्रेण निजश्लोकैः क्रियते वर्गसंग्रहः।। -चतुर्वर्गसंग्रह 1/2

इसमें कविवर ने उपदेशात्मक ढंग से स्वामी और सेवक दोनों के लिए हितकारी नीतियुक्त विचारों का संक्षेप में प्रतिपादन किया है।

4. दर्पदलन

यह क्षेमेन्द्र द्वारा रचित सात विचारों में विभक्त उपदेशपरक लघुकाव्य है। इसमें मद[1] के सात हेतुओं की कठोर समालोचना की गयी है। इसमें निबद्ध साधारण सूक्तियों में कवि का सूक्ष्म पर्यवेक्षण निहित है, साथ ही साथ उपलब्ध निन्दोपाख्यानों से कवि का रचनात्मक व्यक्तित्व भी द्रष्टव्य है। कौल महोदय के शब्दों में व्यङ्ग्यपूर्ण उपदेशात्मक काव्य को दृष्टि में रखकर 'दर्पदलन' संस्कृत साहित्य की उत्तम रचना है।[2]

इस प्रकार प्रकृत कवि क्षेमेन्द्र ने जीवन के विविध पक्षों और आयामों को लेकर यथा प्रसङ्ग जो अपने विचार व्यक्त किये हैं, वे सचमुच कवि की उपदेशप्रधान शैली के उदाहरण हैं। इस तरह नीतिपरक एवं व्यङ्ग्यात्मक काव्यों के रचयिता कवियों से इनके विचार अनेकत्र साम्य रखते हैं। उन समानान्तर विचारों को यथास्थान निर्दिष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। उनके उपदेशात्मक वचन निश्चित रूप से समाज के लिए श्रेयस्कर हैं। इस प्रकार क्षेमेन्द्र कवि होने के साथ-साथ एक नीति शिक्षक एवं उपदेष्टा के रूप में हमारे सामने आते हैं और यही उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का वैशिष्ट्य है।

●●●

---

1 कुलं वित्तं श्रुतं रूपं शौर्यं दानं तपस्तथा।
प्राधान्येन मनुष्याणां सप्तैते मदहेतवः।। -दर्पदलन 1/4

2 मधुसूदन कौल- देशोपदेश व नर्ममाला, आमुख, पृष्ठ संख्या 24

षष्ठ अध्याय

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों की साहित्यिक समीक्षा

भूमिका- कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के परिशीलन के परिप्रेक्ष्य में हमारी दृष्टि दो प्रमुख धाराओं पर जाती है - एक सांस्कृतिक धारा और दूसरी साहित्यिक धारा। सांस्कृतिक धारा की दृष्टि से क्षेमेन्द्र अपने युग की सांस्कृतिक चेतना के प्रतिनिधि कवि हैं। उनका समस्त कृतित्व युगसापेक्ष हैं। एक सांस्कृतिक युगद्रष्टा, क्रान्तिदर्शी कवि होने के साथ-साथ कविवर क्षेमेन्द्र एक उत्कृष्ट सर्जक भी हैं। उनका कृतित्व भी अनेक काव्यगत वैशिष्ट्यों से सम्पन्न है। भाव एवं भाषागत सौन्दर्य भी उसमें पर्याप्त रूप से परिलक्षित होता हैं क्षेमेन्द्र के इन वैशिष्ट्यों की समीक्षा भी अपेक्षित हैं अतः प्रस्तुत अध्याय में प्रकृत कवि से सम्बद्ध विविध साहित्यिक तत्त्वों का परिशीलन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

(i) क्षेमेन्द्र की भाषा- शैली

कविवर क्षेमेन्द्र की भाषा बहुत ही सरल,[1] सरस, मधुर एवं सुबोध है। उसमें न तो कहीं पाण्डित्य का प्रदर्शन है और न शब्दों का अनावश्यक प्रयोग करके चमत्कार उत्पन्न करने का व्यर्थ प्रयास ही है। उनकी भाषा में प्रवाह है तथा पदावली इतनी स्निग्ध है, कि कहीं भी अनमेल शब्दों का प्रयोग दिखलायी नहीं पड़ता है। अतएव उनके काव्य अत्यन्त मधुर व सुकुमार बन गये हैं। कतिपय उदाहरण इस तथ्य को पुष्ट करने में समर्थ हैं।[2] क्षेमेन्द्र का काव्य क्षेत्र अति विस्तृत था। महर्षि व्यास के बाद शायद ही ऐसा कवि होगा, जिसने इतने विशाल साहित्य की रचना की हो। उन्होंने विभिन्न विषयों को लिखने में विभिन्न दृष्टिकोण अपनाए, अतः उनकी शैली को सामान्य शब्दों में बतलाना सरल कार्य नहीं है। 'देशोपदेश' व 'नर्ममाला' में कवि की शैली सरल एवं साधारण है,

---

1 तमोऽध्वतापेन च चिन्तया च
शीतेन दैन्येन च पिण्डिताङ्ग ...। - सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 39

2 तस्याधरे चुम्बनलालसेव कण्ठे हठालिङ्गनसस्प्रहेव।
हृदि स्तनन्याससमुत्सुकेव पपात दृष्टिः सहसैव तासाम् ।। -दर्पदलन 7/49

किन्तु 'औचित्यविचारचर्चा', 'कविकण्ठाभरण', व 'सुवृत्ततिलक' इत्यादि रीति समालोचनात्मक ग्रन्थों में यह शैली उत्कृष्ट, आकर्षक तथा विषयानुकूल है। औचित्यविचारचर्चा एवं कविकण्ठाभरण में कवि ने आदर्श शैली की कल्पना की है। 'कवि-कण्ठाभरण' में आचार्य क्षेमेन्द्र ने शब्दकालुष्य एवं पुनरुक्ति को काव्य का दोष बतलायाहै। 'औचित्यविचारचर्चा' के अनुसारशैली में औचित्य को परमावश्यक बतलाया गया है। कवि व लेखक को व्यर्थ के उपसर्गों एवं अव्ययों के प्रयोग से बचना चाहिए। आचार्य क्षेमेन्द्र ने दो पर्यायवाची शब्दों का अर्थ समान नहीं माना है, क्योंकि प्रत्येक शब्द उपयुक्त स्थान में औचित्यानुसार प्रयुक्त होता है। उन्होंने कारक, क्रिया, लिङ्ग, वचन, विशेषण तथा प्रत्यय तक के प्रयोगों के औचित्य का प्रतिपादन करते हुए कवि कालिदास व बाण जैसे महान् कवियों के काव्यों में भी दोष दिखाये हैं। यहाँ तक कि आचार्य क्षेमेन्द्र उदार, निष्पक्ष तथा सहृदय समालोचक थे। प्रो0 कीथ के शब्दों में कविवर क्षेमेन्द्र कवि की अपेक्षा आलोचक के रूप में अधिक निखरे हैं।[1] अतः आचार्य क्षेमेन्द्र संस्कृत-साहित्यशास्त्र के गिने चुने अनुपम आचार्यों की पंक्ति में उन्नत स्थान पाने के अधिकारी हैं। डॉ0 ब्हूलर ने क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामञ्जरी' पर निबन्ध लिखते हुए क्षेमेन्द्र की शैली को दुर्बोध एवं दुरूह बताया है।[2] कविवर क्षेमेन्द्र की भाषा किसी-किसी स्थान पर क्लिष्ट एवं दुर्बोध भी है। वे कहीं-कहीं अप्रसिद्ध शब्दों का भी प्रयोग करते हैं जैसे तूस्ती, घरट्टमाला, दिविर, अवरुद्धिका, भाटी आदि।

जहाँ एक ओर क्लिष्ट एवं अप्रचलित शब्दों के व्यवहार से 'समयमातृका' प्रबन्ध दुर्बोध हो गया है, वहीं कवि क्षेमेन्द्र ने श्लोकों की विपर्यस्त एवं विलक्षण रचनावली से उसकी दुर्बोधता का जटिलता से संयोग करा दिया है।

भाषा के क्लिष्ट एवं दुर्बोध होने के प्रमाण में कतिपय उदाहरण पर्याप्त हैं।[1] 'बृहत्कथामञ्जरी' कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक है। इसलिए अभी कवि क्षेमेन्द्र की शैली का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। इस ग्रन्थ में कवि का प्रयोजन प्रवाहपूर्ण, अभिराम एवं सजीव वर्णन प्रस्तुत करना नहीं था, बल्कि यत्र तत्र कुछ रोचक व चमत्कारपूर्ण, प्रभावपूर्ण वर्णनों को जोड़ना तथा स्थान-स्थान पर काव्य के आदर्शों को पिरोना ही कवि को अभीप्सित था। अतः इस ग्रन्थ को ही क्षेमेन्द्र की शैली का मापदण्ड बनाना उचित नहीं। बाद की रचनाओं 'दर्पदलन', 'कलाविलास' इत्यादि की सीधी-साधी, सरल, सुबोध एवं सकुमार शैली को देखकर डॉ. ब्हूलर की इस आलोचना की निस्सारता प्रकट हो जाती है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने प्रायः महाकवियों की शैली का अनुकरण किया है, उनकी शैली में महाकवि वाल्मीकि एवं महर्षि व्यास की शैली जैसी नवीनता, मधुरता एवं ओजस्विता इत्यादि काव्यगुण विद्यमान हैं। अलङ्कारशास्त्र की दृष्टि से क्षेमेन्द्र की शैली वैदर्भी रीति की है, जिसका लक्षण दण्डी ने किया है।[2] क्षेमेन्द्र की शैली वैदर्भी मार्ग के दसों गुणों से परिपूर्ण है। उनकी कविता में

---

[1] क. निष्कासितुं हृदयसंचिततीव्रवैरे संदर्शितप्रकटकूटधनोपचारे।
लोभात्त्वयानपचयैः पुनरावृतेव (?) प्राप्तः किमु प्रसभमर्थवशादनर्थः।।
-समयमातृका 1/20

ख. कैर्नित्यसंभवनिजं वणिजं त्यजन्त्या
यान्त्या तृणज्वलनदीप्तिनियोगलक्ष्मीम् ।
नष्टे सुवस्त्रविभवे विरते पुराणे
जातस्तव स्तबकितोभयलाभभङ्गः।। -समयमातृका 1/21

[2] श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्तिः समाधयः।
इति वैदर्भमार्गस्य प्राणाः दश गुणाः स्मृताः।। -काव्यादर्श 1/41

श्लेष प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, परन्तु वे कठिन नहीं। उनके विभिन्न काव्यों में श्लेषात्मक पद्य[1] अपनी अनुपम छटा से परिपूर्ण होकर सहृदय पाठकों को रससिक्त कर देते हैं। कवि की शैली सरस, मधुर व सुकुमार होने के साथ ही साथ ओज व कान्ति से युक्त भी है।[2] कविवर क्षेमेन्द्र अपनी तीव्र प्रतिभा एवं सूक्ष्मावलोकन के कारण तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों एवं मानवीय नैतिक दुर्बलताओं से भली-भाँति परिचित थे, जिनका उन्होंने तीक्ष्णता से उपहास किया हैं। उनके उपहासों में आधुनिकता व सार्वलौकिकता का पुट है। हास्यकथा के तो क्षेमेन्द्र सम्राट ही हैं। आलोचक इनके वर्णन तथा चरित्र-चित्रण पर रीझ जाता हैं इनके हास्योपादक चित्रण व तीक्ष्ण मनोरञ्जक चुटकुले संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उनकी रचनाओं में मानव-चरित्र की दुर्बलताओं तथा विचित्रताओं पर की गयी व्यङ्ग्यप्रधान शैली दर्शनीय है।[3] कभी-कभी उनकी

---

[1] विभ्रतोऽन्तर्गतरसां कुसुमेषु रुचिं नवाम्।
जटावल्कलभारस्ते तरोरिव न शान्तये।। -दर्पदलन 3/93

[2] क. भस्मस्मेरशरीरता पृथुजटाबन्धः शिरोमुण्डनम्
कुण्डीदण्डकमण्डलुप्रणयिता चर्माक्षसूत्रग्रहः।
काषायव्यसनं निरम्बररुचिः कङ्कालमालाधृतिः
कामक्रोधवशाद्विशेषरुचिरं सर्वं वृथैव व्रतम् ।। -दर्पदलन 7/68

ख. दर्पात् कोपात् परिणतजटासूत्रबन्धाच् च मोहा-
दन्तः सीदत्सरसविषयास्वादसंवादसङ्गात् ।
आशापाशव्यसननिचयाद् वासनालीनदोषान्
नैषां मुक्तिर्भवति तपसा कायसंशोषणेन।। -दर्पदलन 7/69

[3] क. शौर्य मदो भुजदर्शी रूपमदो दर्पणादिर्शी च।
काममदः स्त्रीदर्शी विभवमदश्चैव जात्यन्धः।। -कलाविलास 6/6

ख. छात्रः प्रवृत्तः पाण्डित्ये वृद्धकीरजिगीषया।
कष्टेन जानात्योंकारं स्वस्तिज्ञाने कथैव का।। -वही 6/7

ग. गृहिणी दर्पणपराराजमार्गावलोकिनी।

व्यङ्ग्यप्रधान शैली लोकोक्तियों का रूप धारण कर लेती है। उनके अनेक ग्रन्थ सूक्तियों एवं लोकोक्तियों से परिपूर्ण हैं। उनकी रचनाओं का उद्देश्य जनता का सुधार कर चरित्र का निर्माण करना है न कि जनता को आघात पहुँचाना उनके निन्दोपाख्यानों एवं व्यङ्ग्यात्मक चित्रणों में सुधार की गहरी भावना अन्तर्निहित है। इस दृष्टि से उनकी तुलना आंग्ल-साहित्य के कवि एडीसन से की जा सकती है, जो व्यङ्ग्य करने में नहीं हिचकिचाते परन्तु सदैव वह ध्यान रखते हैं कि वह घातक न हो। क्षेमेन्द्र के व्यङ्ग्य रचनात्मक हैं, जिनका प्रमाण हमें उनके द्वारा रचित लघुकाव्य 'कलाविलास' के दसवें अध्याय में मिलता है। इसी सुधार की भावना से प्रेरित होकर लिखे गये 'कलाविलास', 'चतुर्वर्गसंग्रह,' 'चारुचर्या', 'नीतिकल्पतरु,' 'समयमातृका' तथा 'सेव्यसेवकोपदेश' जैसे लघुकाव्य लोक-व्यवहार के परिज्ञान के लिए नितान्त आवश्यक, उपादेय एवं सरस शैली में निबद्ध ग्रन्थ हैं, परन्तु इनका तात्पर्य यह नहीं कि क्षेमेन्द्र की शैली पूर्णतया निर्दोष है। यद्यपि कविवर क्षेमेन्द्र ने अलङ्कारों को बाह्य सौन्दर्य-विधायक ही माना है तथा औचित्य को ही काव्य का जीवितभूत तत्त्व स्वीकार किया है। उनके कुछ पद्य ऐसे ही प्रतीत होते हैं, मानो कवि तत्सम्बन्धी अलंकारों का उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है जैसे- अधोलिखित पद्य द्रष्टव्य है।[1]

बभार तद्विरहिता भूपाललना मदम् ।। -नर्ममाला 2/143

घ. लोभः प्रसूतवित्तस्य रागः प्रव्रजितस्य च।
न यया शान्तिमायाति किं तथालीकविद्यया।। -दर्पदलन 3/42

1 उत्साहोद्धतविभ्रमभ्रमरकव्यावृत्तहारान्तर-
त्रुट्यत्सूत्रविमुक्तमौक्तिकभरः सक्तः स्तनोत्सङ्गयोः।
वक्त्रेन्दुच्युतसन्ततामृतकणाकारश्चकार क्षणं
तस्या नृत्तरसश्रमोदितघनस्वेदाम्बुबिम्बश्रियम् ।। -दर्पदलन 4/24

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी मौलिक अभिव्यक्ति के लिए स्पष्टतया अभिधा वृत्ति काही आश्रय लिया है। लक्षणा या व्यञ्जना का नहीं। उनका निखिल उपदेशात्मक साहित्य इसी प्रकार का है। वे बड़ी ही सरलता से अपनी बात कह जाते हैं जो अनायास सबकी समझ में आ जाती है।

क्षेमेन्द्र की काव्य शैली का एक अन्य प्रकार है हास्य की सृष्टि। वे सज्जनों के बड़े ही हिमायती दिखलाई पड़ते हैं। दुर्जनों द्वारा सज्जनों की वंचना उन्हें बहुत खलती है। अतः उन्होंने समाज में व्याप्त ऐसे सभी प्रकार के वञ्चकों के पाखण्डपरक क्रियाकलापों का भण्डाफोड़ हास्य के द्वारा किया है चाहे वह कुटिल कुट्टनी हो या मठाधीश आचार्य। यहाँ उनकी शैली अभिधा पर ही एकमात्र आश्रित नहीं है अपितु स्थल-स्थल पर वे लक्षण एवं विशेष रूप से व्यञ्जना का आश्रयण भी करते है। 'दिविर' की स्वार्थ परायणता एवं उसके कुटिल व्यवहार का निरूपण करते हुए वह कहते हैं कि जिसकी काली स्याही कलम का आश्रयण करते ही व्यक्ति का सर्वस्व कवलित कर लेती है। इस प्रकार सब प्रकार के प्रपञ्च में निरत उस दिविर की काली स्याही कालीदेवी की तरह उसे सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करती है।[1]

इस पृथ्वी पर शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति बचा हो जिसका अपना चरित्र तो पवित्र हो पर उसने ऐसे गुरुओं का सेवन न किया हो जो अपवित्रता के निधान हैं।[2]

---

[1] मषी सकलमा यस्य काली कवलिताखिला।
सदा सकलमायस्य तस्य सर्वार्थसिद्धिदा। -नर्ममाला 1/16

[2] अपि नाम स जायेत पवित्रचरितः क्षितौ।
अशौ चनिधयो येन गुरवो नोसेविताः।। - नर्ममाला 2/113

इन स्थलों पर कवि की शैली व्यङ्ग्यपरक परिलक्षित होती है तथा स्थल-स्थल पर लक्षणा का भी आश्रयण लेना पड़ा है। क्षेमेन्द्र के हास्य में व्यङ्ग्य ही प्रधान है हास्य गौया। विशुद्ध हास्य की सृष्टि के मूल में भी इनका लक्ष्य सज्जन लोगों को ठगे जाने से बचाता है। क्षेमेन्द्र का कहना है कि ऐसी मजाक से लज्जित होकर व्यक्ति पुनः कुमार्ग से जाने से बचता है इस प्रकार प्रकारान्तर से उसका उपकार करने के लिए ही मेरे द्वारा यह प्रयास किया गया है।[1]

शास्त्र और साहित्य में क्षेमेन्द्र की अभिव्यक्त शैली अलग-अलग है। शास्त्र में जहाँ वे गागर में सागर भरते हुए संक्षेप में ही विषय का प्रतिपादन करते हैं वहाँ साहित्य में उनकी शैली उदारता एवं वैशद्य को लेकर चलती है। उनकी काव्य-रचना वैदर्भी शैली का विशुद्ध निदर्शन है जब कि ऐतिहासिक दृष्टि से अलङ्कृत शैली के काल के हैं। उन पर माघ एवं हर्श की अलङ्कृत शैली का प्रभाव बिल्कुल परिलक्षित नहीं होता। अलङ्कारों का प्रयोग वह बहुत ही सहज रूप से करते हैं। वे अलंकारों के लिए कविता नहीं करते अपितु कविता के अनुरूप अलंकार स्वयं इनकी रचनाओं में आ गये हैं।

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अनुशीलन से ज्ञात होताहै कि उनकी सरल, स्पष्ट, मनोहर, प्रभावपूर्ण एवं चुटकीली शैली उनके सामाजिक चित्रणों व आचरण सम्बन्धी उपदेशों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। अपनी भाषा एवं शैली की सहायता से कविवर क्षेमेन्द्र अपने लक्ष्य कीपूर्ति में पूर्णतः सफल रहे हैं।

(ii) क्षेमेन्द्र के काव्य में अलङ्कार-प्रयोग

अलङ्कार : स्वरूप एवं महत्त्व

'अलङ्कार' शब्द में 'अलं' और 'कार' दो शब्द हैं। 'अलं' का अर्थ है भूषण, जो अलंकृत या भूषित करे वह अलङ्कार है। (अलङ्कृतिः अलंकारः)। जिसके द्वारा अलंकृत किया जाये, इस कारण व्युत्पत्ति से उपमा आदि का ग्रहण हो जाता है।[1] अलङ्कार काव्य के बाह्य शोभा कारक धर्म हैं। इस धर्म का फल काव्य का अलंकरण या सजावट है, अतः इसका प्राचीनतम अभिधान 'अलंकार' है, जिस प्रकार हारादि अलङ्कार रमणी के नैसर्गिक सौन्दर्य की शोभावृद्धि के उपकारक होते हैं, उसी प्रकार उपमादि अलंकार काव्य की रसात्मकता के उत्कर्षक हैं। वास्तव में अलंकार वाणी के विभूषण हैं। इनके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भाव में प्रभविष्णुता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौन्दर्य का सम्पादन होता है। स्पष्टता और प्रभावोत्पादन के हेतु वाणी अलङ्कार का स्वरूप धारण करती है।

काव्य में अलङ्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्वनिकार के पूर्व तो गुणालंकार प्रस्थान ही काव्य में प्रतिष्ठित था। वामन के अनुसार तो अलंकारों के बिना काव्य संज्ञा ही उत्पन्न नहीं होती।[2] कुन्तक ने भी अलंकार से युक्त कविता की ही काव्यता स्वीकार की है। भामह के मतानुसार जिस प्रकार वनिता का सुन्दर भी मुख बिना आभूषण के सुशोभित नहीं होता है, उसी प्रकार अलंकारों के अभाव में काव्य भी शोभा धायक नहीं होता है।[3]

---

1 करणव्युत्पत्त्या पुनः अलंकारशब्दोऽयमुपमादिषु वर्तते। -काव्यालंकारवृत्ति 1/1/2

2 काव्यं ग्राह्यमलंकारात् । -काव्यालंकारसूत्रवृत्ति 1/1

3 न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम् । -काव्यालंकार 1/3

इस प्रकार इन आचार्यों के मत में काव्य का सारा वैशिष्ट्य अलंकारों पर ही निर्भर करता हैं। भामहादि चिरन्तन आचार्यों ने काव्य में अलंकारों के महत्त्व का जो प्रतिपादन किया है। उससे अलंकारों का महत्त्व प्रदर्शित नहीं होता है, क्योंकि उनके अनुसार तो अलंकार ही काव्य का सर्वस्व था। अतएव प्राचीन आचार्य अलंकारों की यदि भूयसी प्रशंसा करते हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, परन्तु आनन्दवर्धन के उत्तरवर्ती आचार्यों ने भी काव्य में अलंकारों के महत्त्व को स्वीकार किया है, वह अलंकारों के महत्त्व के सम्बनध में विशेष अवधेय है। इससे अलंकारों का महत्त्व स्वयं सिद्ध हो जाता है। यद्यपि भोज[1] एवं मम्मट[2] आदि आचार्यों ने काव्य के क्षेत्र में अलंकारों को अपरिहार्य नहीं माना है और अलंकारों के दुर्दमनीय वैशिष्ट्य से अभिभूत होकर आचार्य मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश के अन्तिम दो उल्लासों में अलंकारों का सविस्तर विवेचन किया है। इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ भी साहित्यदर्पण में अलंकारों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों का निरूपण करते हैं। रसगङ्गाधरकार ने भी अलंकारों का विस्तृत विवेचन किया है।

ध्वनिवादी, व्यञ्जनावृत्ति के समर्थक हैं, परन्तु अलंकार वाच्य भूमि पर अधिष्ठित होता है।[3] अतएव व्यञ्जना के समर्थक ध्वनिवादियों ने अलंकारों की उपेक्षा की है, उनके मतानुसार तो काव्य का सार चारुत्व व्यङ्ग्य में ही निहित है, वाच्यार्थ का काव्य में कोई आदर नहीं। ध्वनिवादियों ने अलंकारध्वनि नामक एक पृथक् भेद की परिकल्पना कर विविध अलंकारों की व्यङ्ग्यता का सोदाहरण विवेचन किया है। अतः उनकी दृष्टि में अलङ्कार वाच्य भी होता है और व्यङ्ग्य भी। यह प्रश्न अलग है कि अलङ्कार व्यङ्ग्य रूप में अधिक सुन्दर होता है

---

1 गुणयोगस्तयोर्मुख्यो गुणालंकारयोगयोः। -सरस्वतीकण्ठाभरण 1/59

2 'अनलङ्कृती पुनः क्वापि'। - काव्यप्रकाश, उल्लास एवं सूत्र 1/1

3 अभिधानाभिधेयभावो हि अलंकाराणां व्यापकः। -लोचनटीका, पृ.162

अथवा वाच्य रूप में। पण्डितराज जगन्नाथ के शब्दों में अलंकारों का सार वाच्यार्थ का सौन्दर्य मात्र ही है।[1] आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार भी अलङ्कार और कुछ नहीं केवल कथन शैली के विविध प्रकार हैं।[2]

इतना होने पर भी अलंकारों का काव्य में अपना विशिष्ट महत्त्व है। ध्वनिवादियों के द्वारा अलंकारों की उपेक्षा करना इतना सिद्ध करता है, कि अलंकार ध्वनि की समता कदापि नहीं कर सकते हैं। वस्तुतः ध्वनि की उत्कृष्टता दिखलाने के लिए अलंकारों की उपेक्षा की गयी है। यदि ध्वनि के प्रति आदर एवं अलंकारों के प्रति द्वेषभाव को त्याग कर शुद्ध हृदय सुविचार किया जाय तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है, कि अलंकार उपेक्षणीय नहीं है। ध्वनिवादियों ने भी अलङ्कारों को काव्य में चारुत्व का हेतु माना है।[3] यदि ध्वनि प्रस्थान में अलंकार उपेक्षणीय होते तो फिर ध्वनिकार के प्रबल समर्थक तीन ध्वनिवादी महारथियों मम्मट, विश्वनाथ एवं पण्डितराज जगन्नाथ के द्वारा भी अपने-अपने ग्रन्थों में अलंकारों का निरूपण क्यों किया जाता है। इसी प्रकार अलंकारध्वनि में अलङ्कार्य के लिए भी ब्राह्मणश्रवणन्यायेन ही सही, अलंकार नाम देना अलंकार की प्रतिष्ठा का ही द्योतक है। ध्वनिवादी अलंकार को रस के उपकारक के रूप में स्वीकार करते हैं।[4] अर्थात् रसादि हृदयसंवेद्य जिस अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं, उसी अभिव्यक्ति को यदि रसानुकूल अलंकार और भी विशद करते हैं, तो ऐसी स्थिति में ध्वनिवादियों के द्वारा भी अलंकार मान्य हैं। इस प्रकार ध्वनिवादी

---

[1] अलङ्कारा हि वाच्यसौन्दर्यसाराः। -रसगङ्गाधर, पृ. 137

[2] अनन्ता हि वाचि विकल्पास्तत्प्रकारा एव चालंकाराः।
-ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत 4, पृ. 473

[3] अलङ्कारो हि चारुत्वहेतुः प्रसिद्धः। -ध्वन्यालोक, पृष्ठ संख्या 197

[4] उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् । -काव्यप्रकाश, 8/87

अलंकारों को रसपरक मानते हैं।[1] औचित्य के उद्भावक आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार भी अलंकारों का औचित्य से पृथक् अस्तित्व नहीं है। आचार्य क्षेमेन्द्र की दृष्टि में रससिद्ध काव्य का स्थिर एवं अविनश्वर [illegible] औचित्य है।[2] औचित्य के अभाव में गुण एवं अलंकार से समवेत होने पर भी काव्य निर्जीव है।[3] कविवर क्षेमेन्द्र के मत में अलंकार तो अलंकार ही है।[4] अर्थात् जैसे कटक, कुण्डल केयूर, हारादि बाह्य शोभा के हेतु होने के कारण अलङ्कार हैं। उसी प्रकार परस्पर उपकार करने से रुचिर शब्दार्थरूप काव्य के बाह्य हेतु उपमादि अलंकार हैं।[5]

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में प्रयुक्त अलङ्कार

कविवर क्षेमेन्द्र अलङ्कार-प्रयोग में अत्यन्त कुशल हैं। यद्यपि उन्होंने अलङ्कार को काव्य के केवल बाह्यसौन्दर्य में ही सहायक माना है, तदपि उन्होंने अपने लघुकाव्यों में श्लेष, यमक, अनुप्रास, सङ्कर, उपमा, रूपक तथा अर्थान्तरन्यास इत्यादि अलंकारों का समुचित प्रयोग किया है। यद्यपि इनकी उपमाएँ उपमासम्राट् महाकवि कालिदास की भाँति अमूल्य एवं उत्कृष्ट नहीं है, तथापि मनोहारी है। अधोलिखित उदाहरण में कुलाङ्गना एवं लज्जा को एक अत्यन्त मनोहारी उपमान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अर्थात् कुलाङ्गना का

---

1 यत्र तु नास्ति रसस्तत्रोक्तिवैचित्र्यमात्रपर्यवसायिनः। -काव्यप्रकाश 8/87 की वृत्ति

2 औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम् । -औचित्यविचारचर्चा, 5वीं कारिका

3 तेन विनास्य गुणालङ्कारयुक्तस्यापि निर्जीवत्वात् ।
-औचित्यविचारचर्चा, 5वीं कारिका वृत्ति,

4 अलङ्कारस्त्वलङ्काराः। -औचित्याविचारचर्चा, 5वीं कारिका,

5 परस्परोपकार - रूचिर-शब्दार्थरूपस्य काव्यस्य उपमोत्प्रेक्षादयो ये प्रचुरालङ्काराः ते कटक-कुण्डल-केयूर-हारादिवदलङ्कारा इव ब्राह्यशोभाहेतुत्वात् ।
-औचित्यविचारचर्चा, 5वीं कारिका की वृत्ति,

लज्जा से झुकना एक उपयुक्त उपमा का प्रयोग है।[1] उनकी उपमायें प्रायः दैनिक जीवन से सम्बन्धित है।[2] कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में श्लेषानुप्राणित उपमा का भी प्रयोग किया गया है।[3]

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'दर्पदलन' में उत्प्रेक्षाअलङ्कार के भी प्रयोग से युक्त पद्य का सौन्दर्य प्रशंसनीय है। अधोलिखित उदाहरणों में कवि की कल्पना की उड़ान दर्शनीय है।[4] प्रथम उदाहरण में काल द्वारा आलिंगन किये जाने की कल्पना तथा द्वितीय उदाहरण में दृष्टि में लालसा, स्पृहा और उत्सुकता जैसे चेतन धर्म होने की परिकल्पना काव्य सौन्दर्य वाहिका है।

अर्थान्तरस्यास अलङ्कार के प्रयोग में तो कविवर क्षेमेन्द्र बहुत ही दक्ष हैं। उनके 'चारुचर्या' लघुकाव्य के प्रायः पद्य अर्थान्तरस्यास की छटा से युक्त हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'चारुचर्या' लघुकाव्य 'अर्थान्तरन्यास' पर आधारित रचना ही है। अनेक उदाहरणों से इनकी तद्विषयक दक्षता स्पष्ट हो जाती है।[5]

---

[1] विद्या श्रीरिव लोभेन द्वेषेणायाति निन्द्यताम् ।
भाति नम्रतयैवैषा लज्जयेव कुलाङ्गना।। -दर्पदलन 3/6

[2] कुलं कुतनयेनेव लोभेनेव गुणोदयः।
ऐश्वर्यं दुर्नयेनेव शौर्यदर्पेण नश्यति।। -दर्पदलन 5/28

[3] बिभ्रतोऽन्तर्गतरसां कुसुमेषु रुचिं नवाम् ।
जटावल्कलभारस्ते तरोरिव न शान्तये।। -दर्पदलन 3/93

[4] क. कल्पान्तैरिव सर्वत्र ग्रस्तस्थावरजङ्गमैः।
मषीविलिप्त सर्वाङ्गैः कालेनालिङ्गितैरिव।। -नर्ममाला 1/21

ख. तस्याधरे चुम्बनलालसेव कण्ठे हठालिङ्गनसस्पृहेव।
हृदि स्तनन्याससमुत्सुकेव पपात दृष्टिः सहसैव तासाम् ।। -दर्पदलन 7/49

[5] क. हितोपदेशं श्रुत्वा तु कुर्वीत च यथोचितम् ।
विदुरोक्तमकृत्वा तु शोच्योऽभूत् कौरवेश्वरः।। -चारुचर्या, श्लोक 59

कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा समासोक्ति अलंकार की छटा के माध्यम से एक पद्य में लताओं पर नायिका का आरोप किया गया है जो जँभाई और निःश्वास से आकुल हैं और जिसमें कामदेव सम्बन्धी कामरूप सहचारिभाव विद्यमान है।[1]

अन्योक्ति अलंकार के प्रयोग में सूक्ष्मदर्शी कवि क्षेमेन्द्र का सौन्दर्य द्रष्टव्य है, जहाँ प्रातः काल नवीन पौधों से उत्पन्न कली के रूप में कमलकान्ताओं के स्तनों के सदृश प्रतीत होता हैं यहाँ क्रमशः मध्याह्न व सन्ध्या वस्तुतः युवावस्था के प्रतीक के रूप में हैं। कमलवत् कान्ता-स्तन भी गतिशील है।[2]

रूपक अलङ्कार के माध्यम से भी कविवर क्षेमेन्द्र काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करने में पूर्णतः दक्ष हैं। इनके रूपक-प्रयोग वस्तुतः मनोहारी हैं।[3] अधोलिखित प्रथम उदाहरण में पांशु का आरोप किया गया है और पुनः पाण्डित्य को मातङ्ग स्नान के आरोप से नवीकृत किया गया है। द्वितीय उदाहरण में श्लेष की सहायता से सन्ध्या पर पिशाचिनी स्त्री का आरोप बहुत ही चमत्कारी बन पड़ा है।

ख. ब्रह्मचारी गृहस्थः स्याद् वानप्रस्थो यतिः क्रमात् ।
आश्रमादाश्रमं याता ययातिप्रमुखा नृपाः।। -चारुचर्या, श्लोक 92

[1] तस्य प्रवेशे वदनाधिवासलोभभ्रमद्भृङ्गगणनाञ्चितानाम् ।
अभूत् सजृम्भश्वसनाकुलानां मुहुर्लतानां कुसुमेषु कम्पः।। -दर्पदलन 7/44

[2] प्रातर्बालतरोऽथ कुड्मलतया कान्ताकुचाभः शनैः -
र्हेलाहासविकाससुन्दररुचिः संपूर्णकोपस्ततः।
पश्चान् म्लानवपुर्विलोलशिथिलः पद्मः प्रकीर्णोऽनिलै-
स्तस्मिन्नेव दिने स पङ्कलिलक्लिन्नस्तटे शुष्यति।। -दर्पदलन 4/73

[3] क. पाण्डित्यं यन् मदान्धानां परोत्कर्षविनाशनम् ।
मात्सर्य पांशुपूरेणमातङ्गस्नानमेव तत् ।। -चतुर्वर्गसंग्रह 1/6

ख. सततानुरक्तदोषा मोहितजनता बहुग्रहाश्चपलाः।
सन्ध्या स्त्रियः पिशाच्यो रक्तच्छायाहराः क्रूराः।। -कलाविलास 3/29

पर्वोक्त प्रथम उदाहरण में पांसु का आरोप किया गया है और पुनः पाण्डित्य को मातङ्ग स्नान के आरोप से नवीकृत किया गया है। द्वितीय उदाहरण में श्लेष की सहायता से सन्ध्या पर पिशाचिनी स्त्री का आरोप बहुत ही चमत्कारी बन पड़ा है।

शब्दालंकारों के भी प्रयोग में कविवर क्षेमेन्द्र अत्यन्त निपुण हैं। उनके लघुकाव्यों में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है।[1] क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों को पढ़ते समय उनके पद्यों में समाविष्ट संङ्गीत का अनुभव होता है और उसमें ताल एवं लय की प्रचुरता दिखाई पड़ती हैं कविवर क्षेमेन्द्र ने अनेकत्र दो अलङ्कारों के मिश्रण से उत्पन्न सौन्दर्य की भी सर्जना की है। जैसे अधोलिखित उदाहरण में कवि ने एक वेश्या के कथन में पहले अधर पर बिम्बफल का आरोप किया है और फिर बालक की शुक से उपमा देकर उसका खण्डन किया है।[2] अतः यहाँ रूपक एवं उपमा अलङ्कार का सुन्दर संकर दर्शनीय है। वेश्यावर्णन सम्बन्धी ग्रन्थ 'समयमातृका' के उपसंहार में क्षेमेन्द्र ने वेश्या की सत्कवि भारती के साथ जो तुलना की है, उसको सहृदय पाठक पढ़कर चमत्कृत हो जाता है।[3] वैसे कवि का यह वर्णन कलापूर्ण है, जिसमें सच्चे कवि की कविता के विशेषण व गुण पक्षान्तर से वेश्या के गुण व विशेषण रूप में व्यावृत हैं। और पूरे पद्य में इस

---

[1] पाणिस्थितश्याममयूरपिच्छच्छायाच्छटाविच्छुरितोऽस्य कण्ठः।
रराज लीलान्तरकालकूटमिषाग्निनेवार्पितधूमलेखः।। - दर्पदलन 7/33

[2] रोदिति शिशुरिति दयया यस्य न दशनं क्षतं मया दत्तम् ।
तेन ममाधरबिम्बं पश्य शुकेनेव खण्डितं बहुशः।। -समयमातृका 8/9

[3] सालंकारतया विभक्तिरुचिरच्छाया विशेषाश्रया
वक्रा सादरचर्वणा रसवती मुग्धार्थलब्धा परम् ।
आश्चर्योचितवर्णनानवनवास्वादप्रमोदार्चिता
वेश्या सत्कविभारतीव हरति प्रौढा कला शालिनी।।
-समयमातृका, उपसंहार श्लोक 1

उपमा का प्रयोग है। पुनः श्लिष्ट विशेषणों के माहात्म्य से प्रस्तुत वेश्या में सत्कविभारती का स्फुरण होने से यहाँ समासोक्ति का भी चमत्कार अनुभूत होता हैं अतः यहाँ उपमा एवं समासोक्ति के सङ्कर का सौन्दर्य द्रष्टव्य है। अलङ्कार योजना की दृष्टि से कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अलग-अलग विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि क्षेमेन्द्र अलङ्कार-प्रयोग के कुशल कारीगर और सजावट में दक्ष हैं।

क्षेमेन्द्र के पृथक्-पृथक् अलङ्कार-प्रयोग का विवेचन इस प्रकार है -

क्षेमेन्द्र का 'चारुचर्याशतक' जो सौ पद्यों का बहुत ही लघुकाव्य है, के अधिकांश पद्यों में अर्थानतरन्यास अलंकार की छटा दर्शनीय है। इसके सभी पद्य अनुष्टुप् छन्द में हैं। इस काव्य की भाषा सरल, सुस्पष्ट एवं उपदेशपरक है। बीच-बीच में उपमा, रूपक, अनुप्रास एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कारों की भी छटा दर्शनीय है। इस प्रकार 'चारुचर्या' लघुकाव्य बहुत ही सरल सुस्पष्ट एवं जीवनोपयोगी कार्यों के लिए उपादेय है। इस लघुकाव्य में विशेषरूप से भारतीय संस्कृति का संदेश विवेचित किया गया है। इसमें सरल समासरहित शब्दों का प्रयोग है। परिणामतः प्रसादगुण विद्यमान है। अर्थान्तरन्यास के कतिपय उदाहरण देखे जा सकते हैं।[1] क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'चतुर्वर्गसंग्रह' में पुरुषार्थों का मनोहारी वर्णन किया गया है। 'चतुर्वर्गसंग्रह' में विधिध अलंकारों की छटा देखी जा सकती है। उपमा, [2] रूपक[1], श्लेष[2], उत्प्रेक्षा[3] एवं अनुप्रास[4] अलंङ्कारों का प्रयोग बहुत ही

---

[1] क. न मद्यव्यसनी क्षीबः कुर्याद् वेतालचेष्टितम् ।
वृष्णायो हि ययुः क्षीबस्तृणप्रहरणाः क्षयम् ।। - चारुचर्या, श्लोक 11

ख. परप्राणपरित्राणपरः कारुण्यवान् भवेत् ।
मांसं कपोतरक्षायै स्वं श्येनाय ददौ शिविः।। -चारुचर्या, श्लोक 23

[2] वेषः परिक्लेशविशेषचिन्ता परोपरोधः स्ववशावलेपः।
नदीफलानामिव शीघ्रगानां हानिर्धनानां ग्रहणे विलम्बः।। -चतुर्वर्गसंग्रह 2/13

आकर्षक ढंग से हुआ है। जैसे- रूपक के प्रस्तुत उदाहरण में नायिका की त्रिवली पर तरंग का आरोप किया गया है और रोमराजि पर कलंक रेखा का आरोप किया गया हैं अतः यह रूपक है, साथ ही कवि द्वारा अपने प्रतिभाबल से यह अपह्नव व्यक्त किया गया है कि वह तरुणी की त्रिवली रूपी तरंग के कुसंग से युक्त रोमराज नहीं है, अपितु यह तो कामदेव की क्रीडा-वापी में स्नान करके चन्द्रमा अपनी काली कलंक रेखा को छोड़कर चला गया है। अतः यहाँ निषेध सहित आरोप होने के कारण अपह्नुति अलंकार की छटा दर्शनीय है। इनके लघुकाव्य 'चतुर्वर्गसंग्रह' में पदलालित्य[5] एवं साभिप्राय शब्द प्रयोग की दक्षता अवलोकनीय है।[6] इसके अतिरिक्त सूक्तियों एवं नीतियुक्त कथनों की प्रचुरता भी है। सूक्ति भी दर्शनीय है।[7]

---

1 नेयं तरुण्यास्त्रिवलीतरङ्गकुसुङ्गिनी राजति रोमराजिः।
स्नात्वा गतोऽस्यां स्मरकेलिवाप्यां कलङ्कलेखामपहाय चन्द्रः।। -वही 3/13

2 मौग्ध्यं प्रमादोऽविश्वासः कुसङ्गः क्लेशभीरुता।
पञ्च संकोचदा दोषाः पदमिन्या इव सम्पदः।। - चतुर्वर्गसंग्रह 2/17

3 ललितललनालीलोदञ्चद्विलोलविलोचनो-
त्पलरुचां चञ्चन्तीनां चयैरिव चर्चिता।। - चतुर्वर्गसंग्रह 3/1

4 लक्ष्मीर्दानफला श्रुतं शमफलं पाणिः सुरार्चाफल
-श्चेष्टा धर्मफला परार्तिहरणक्रीडाफलं जीवतिम् ।
वाणी सत्यफला जगत्सुखफलस्फीता प्रभावोन्नति-
र्भव्यानां भवशान्तिचिन्तनफला भूत्यै भवत्येव धीः।। -वही 1/19

5 ललितललनालीलोदञ्चद्विलोलविलोचनो...। -चतुर्वर्गसंग्रह 3/1

6 जरानिगीर्णे सुभगाभिमाने म्लाने शनैर्भूतिलताप्रताने।
धनावदाने शिथिलाभिमाने धृतिर्निधाने प्रशमाभिधाने।। - चतुर्वर्गसंग्रह 3/21

7 पाण्डित्यं धर्महीनं शुकसदृशगिरां निष्फलक्लेशमेव।। - चतुर्वर्गसंग्रह 1/5

क्षेमेन्द्र का दर्पदलन लघुकाव्य अलङ्कार की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। इस लघुकाव्य में अर्थान्तरन्यास,[1] रूपक,[2] श्लेष,[3] उपमा,[4] उत्प्रेक्षा,[5] अन्योक्ति,[6] दीपक[7] एवं तुल्ययोगिता[8] आदि अलंकारों की योजना की गयी है। समासोक्ति अलंकार प्रयोग को उदाहृत किया जा सकता है -

इति प्रियायाः प्रणयोपपन्नमाकर्ण्य वाक्यं गिरिशोऽब्रवीत् ताम् ।

कुर्वन् विषश्यामलकण्ठकान्तिं दन्तप्रभाभिः प्रतिभाविहीनम् ।।[9]

दर्पदलन में सूक्तियों का तो प्रचुर भण्डार परिलक्षित होता है।[10]

---

1 गुणवत्कुलजातोऽपि निर्गुणः केन पूज्यते।
दोग्ध्रीकुलोद्भवा धेनुर्वन्ध्या कस्योपयुज्यते।। - दर्पदलन 1/13

2 दर्पकण्डूलदोर्दण्डं प्रच्छन्तं रभसेन तम् ।
सर्वावमानसंनद्धं जगादाभेत्य नारदः।। -दर्पदलन 5/32

3 धनयौवनसञ्जातदर्पकालुष्यविप्लवाः।
केनोन्नतपरिभ्रष्टा वार्यन्ते निम्नगाः स्त्रियः।। - दर्पदलन 1/65

4 दर्पदलन 2/12, 87, 3/6, 12, 14, 44, 51, 5/26, 29, 51,

5 दर्पदलन 2/21, 3/94, 4/67, 6/64

6 दर्पदलन 4/73

7 दर्पदलन, 5/27

8 दर्पदलन 2/1

9 दर्पदलन 7/24

10 दर्पदलन 1/16, 28-34, 55, 62, 63, 65 एवं 66
2/4, 23, 29, 30, 32, 39, 57, 69, 92
3/2-5, 14, 22, 54, 57, 59, 101, 102, 105, 142
4/51,
5/2, 5, 7, 20, 21
6/54

क्षेमेन्द्र का 'देशोपदेश' एक व्यङ्ग्यप्रधान लघुकाव्य हैं इसमें स्वभावोक्ति[1] अलंकार के साथ ही साथ गूढोक्ति एवं वक्रोक्ति[2] के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं।

क्षेमेन्द्र का 'सेव्यसेवकोपदेश' सबसे कम पद्यों वाला लघुकाव्य हैं सेव्यसेवकोपदेश के कतिपय उदाहरणों में स्वभावोक्ति की छटा दर्शनीय है।[3] सरल भाषा का भी प्रयोग है। यमक,[4] रूपक[5], श्लेष[6], एवं उपमा[7] तथा विभावना[8] अलंकारों की छटा द्रष्टव्य है। क्षेमेन्द्र ने इस लघुकाव्य में शब्दी व्यञ्जना का भी प्रयोग किया है।[9] हास्यापदेश के तथ्य भी उपस्थित हैं।[10]

7/3, 15, 65

1 सघनं कामुकं धृष्टा विलोक्यानिशमागतम् ।
जिह्वा प्रसार्य निर्याति कुट्टनी कार्यगौरवात् ।। - देशोपदेश 4/16

2 वेश्याजघनोद्याने फुल्ले यौवनपादपे।
दिवानिशं भवत्येव सुवर्णकुसुमोच्चयः।। -देशोपदेश 3/21

3 क. दूरं हुङ्कारमात्रेण विसृष्टो मार्गणः सदा।
गुणभ्रष्टः क्रियाहीनो नोद्वेगं याति सेवकः। -सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 7

ख. भूमिशायी निराहारः शीतवातातपक्षतः।
मुनिव्रतोऽपि नरकक्लेशमश्नाति सेवकः।। - सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 20

4 मन्ये सुकृतिना तेन भागीरथ्यां कृतं तपः।
वैराग्यभागी रथ्यां यः सेवासु न विगाहते।। -सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 8

5 प्रभुप्रमाणे जठरं दैन्यमूलं विलोकयन् ।
प्रवेष्टुं सेवकः शङ्के विलक्षः क्षितिमीक्षते।। - सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 11

6 निःसन्तोषः परित्यज्य भ्रमरः पुष्पितं वनम् ।
सेवते दानलोभेन मातङ्गमपि सेवकः।। - सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 16

7 सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 17 एवं 24

8 सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 30

9 सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 9

10 सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 6

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'कलाविलास' में स्वाभाविक वर्णन विद्यमान है।[1] यह लघुकाव्य व्यङ्ग्यप्रधान भी है। परिणामतः इसमें मुहावरेदार बोल-चाल की भाषा प्रयुक्त है।[2] उपमा[3], रूपक[4], उत्प्रेक्षा[5] तथा श्लेषानुप्राणित उपमा[6] आदि अलङ्कारों की छटा द्रष्टव्य है। कहीं कहीं अश्लील[7] एवं बीभत्स[8] वर्णन भी प्राप्त होते हैं, तो कहीं सरल एवं मधुर भाषा में शुद्धोपदेश प्राप्त होता है। शुद्धोपदेश[9] कथन से क्षेमेन्द्र के उच्च मानसिक विचारों का ज्ञान होता है। 'कलाविलास' लघुकाव्य में सूक्ति एवं मुहावरे भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। सूक्तियों का उल्लेख संकेतित है।[10]

कविवर क्षेमेन्द्र का लघुकाव्य 'नर्ममाला' एक व्यङ्ग्य प्रधान रचना है जिसमें कायस्थों, वेश्याओं जाति आदि पर व्यङ्ग्य किया गया है। इस लघुकाव्य

---

1 तच् श्रुत्वा विकसितदृग् वदति स मिथ्यैव नाटयन् खेदम् ।
कार्ये प्रसारिताक्षः पुनः पुनः पार्श्वमवलोक्य।। कलाविलास 2/12

2 विविधनवांशुकमृगमदचन्दनकर्पूरमरिचपूगफलैः।
खटिकाहस्तः स सदा गणयति कोटीर्मुहूर्तेन ।।-कलाविलास 2/23

3 मत्स्यस्येवाप्सु सदा दम्भस्य ज्ञायते गतिः केन।
नास्य करौ न च पादौ न शिरो दुर्लक्ष्य एवासौ।। - कलाविलास 1/43

4 एतत् किं श्रुतसदृशं त्वद्व्रतयोग्यं कुलानुरूपं वा।
कृतवानसि यत् सुमते परिभूतगुणोदयं कर्म ।। - कलाविलास 2/62

5 कृतकापरिस्फुटाक्षरकामकलाभिः स्वभावमुग्धेव।
तिलकाय चन्द्रबिम्बं मुग्धपतिं याचते प्रौढा।। -कलाविलास 3/12

6 रजनी रराज सिततरतारकमुक्ताकलापकृतशोभा।
शबररमणीव परिचिततिमिरमयूरच्छदाभरणा।।- कलाविलास 1/29

7 कलाविलास 3/48, 49

8 कलाविलास 3/5, 6/20

9 कलाविलास 1/16, 18, 19, 2/64 तथा 10/1-3, 6, 8

10 कलाविलास 2/60, 79, 5/35

में पदलालित्य के भी उदाहरण देखने को मिलते हैं।[1] इस लघुकाव्य में उपमा अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ है। इसके उदाहरण अनेक पद्यों में द्रष्टव्य हैं।[2] श्लेषानुप्राणित उपमा का भी उदाहरण प्राप्त होता है।[3] इसके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा[4] अनुप्रास[5] एवं रूपक[6] अलङ्कारों का सौन्दर्य विद्यमान है।

अतिशय पाण्डित्य से मण्डित लघुकाव्य 'समयमातृका' की भाषा से प्रारब्ध काव्य का निर्वाह भले ही हो गया हो किन्तु भाषा में न तो प्रवाह है और न ही प्रसाद। जिस उद्देश्य से यह प्रबन्ध लिखा गया है उसकी भी भली भाँति पूर्ति नहीं हो पायी। इसके लिए तो 'देशोपदेश' एवं 'नर्ममाला' की सरल शब्दावली आपेक्षित थी। इसके बावजूद भी 'समयमातृका' न केवल क्षेमेन्द्र के ही काव्यों अपितु समस्त उपदेशात्मक हास्य-व्यङ्ग्य काव्यों में अनुपम है। अटवी में मधुर-निर्झर की भाँति कोमल कान्त पदावली से यह यत्र तत्र सर्वत्र पाठकों का पूर्णरूप से मनोरञ्जन करती है। कलावती के शृङ्गार को कवि एक ही श्लोक में

---

[1] सौनिकेन प्रजातोऽथ भूतले मर्मघातिना।
स कुद्दालकभार्यायां जगदुन्मूलनव्रतः।। - नर्ममाला 1/19

[2] लेखाधिकारी निःस्वोऽपि लेखसंस्कारगर्वितः।
परिपालकनिर्दिष्टो वायुभक्ष इवोरगः।। - नर्ममाला 1/74

[3] यस्मिन् प्राज्यभुजस्तम्भस्ताम्भताहितविक्रमः।
त्रिविक्रमे इव श्रीमाननन्तो वलिजिन् नृपः।। -नर्ममाला 1/3

[4] सापि बालकुरङ्गाक्षी यौवनेन प्रमाथिना।
भिद्यमानेव दर्पेण न ददर्श वसुन्धराम् ।। - नर्ममाला 2/1

[5] सेवाकाले बहुमुखैर्लुब्धकैर्बहुबाहुभिः।
वञ्चने बहुमायैश्च बहुरूपैः सुरारिभिः।। -नर्ममाला 1/23

[6] अनेन कलमास्त्रेण मददत्तेन प्रहारिणा।
विच्छिन्नदीपकुसुमान् धूपहीनान् निरम्बरान् ।। -नर्ममाला 1/12

बहुत ही मधुरता के साथ अभिव्यकत करता है। यहाँ अनुप्रास[1] का सौन्दर्य मनोहारी है।

लौकिक उपमाओं एवं सूक्तियों के बहुधा प्रयोग तथा हास्य-व्यङ्ग्यपूर्ण उक्तियों से परिपूर्ण होने के कारण यह ग्रन्थ पाठकों को श्रावण माह में अरण्य पर्यटकों की भाँति आनन्द प्रदान करता है। रसपेशल वर्णन का रसिक कवि हृदयग्राही अवसरों को हाथ से जाने नहीं देता, प्रत्युत वह उसे अपने काव्य-कौशल से एक चिरन्तन सुन्दर वस्तु बना देता है।

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने काव्यों में विविध स्थानों पर विभिन्न प्रकार के शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों के मनोरम, उपयुक्त एवं उत्कृष्ट प्रयोग किये हैं। अर्थान्तरन्यास के तो वे विशिष्ट कवि ही हैं। कहीं-कहीं सादृश्यमूलक अलङ्कारों के सुन्दर प्रयोग देखने को मिलते हैं। इनके अलंकारों में कालिदासादि कवियों के अलंकार प्रयोग जैसी ऊँचाई तो नहीं है परन्तु उनमें नितान्त स्वाभाविकता, सरलता एवं हृदयग्राहिता विद्यमान है। वस्तुतः क्षेमेन्द्र अलंकार प्रयोग के कुशल चित्रकार हैं।

(iii) क्षेमेन्द्र के काव्य में छन्दः प्रयोग

छन्द : स्वरूप-विवेचन

छन्दःशास्त्र के आदि आचार्य के रूप में पिङ्गल मुनि ही प्रसिद्ध हैं। यद्यपि पिंगल सूत्रों में उनके पूर्व के कई अन्य छन्द शास्त्रकारों का भी उल्लेख प्राप्त होता है, परन्तु "यशः पुण्यैरवाप्यते" के अनुसार पिङ्गल मुनि को छन्दःशास्त्र का

---

[1] कपोले कस्तूरीस्फुटकुटिलपत्राङ्कुरलिपि -
र्ललाटे कार्पूरं तिलकमलकाली परिसरे।
तनौ लीला हेमद्युतिपरिचिता कुङ्कुमरुचिः।
स तस्याः कोऽप्यासील्ललितमधुरो मण्डनविधिः।। -समयमातृका 7/10

जनक माना जाता है। पिङ्गल मुनि के परवर्ती छन्दशास्त्रकारों की सुदीर्घ शृंखला में 'सुवृत्ततिलक' के प्रणेता आचार्य क्षेमेन्द्र विशेष उल्लेखनीय हैं। क्षेमेन्द्र ने अपने इस ग्रन्थ के तीन विन्यासों में छन्दों के लक्षण, उनके गुण-दोषों का वर्णन तथा छन्दों के उचित प्रयोग को समुचित ढंग से समझाने का प्रयास किया है यथा- आचार्य क्षेमेन्द्र की मान्यता है कि काव्य में रस एवं वर्णन के अनुरूप समस्त छन्दों का प्रयोग करना चाहिए।[1]

कविवर क्षेमेन्द्र के छन्द विचार में अन्तर्गामिनी भावुकता व्यापक अध्ययन और सन्तुलित विवेचन के दर्शन होते हैं। क्षेमेन्द्र ने जो कार्य छन्दों के क्षेत्र में किया है, वह इतना कठिन है कि बाद के लोग उनका अनुसरण ही नहीं कर सके। छन्दाचार्यों के वन में क्षेमेन्द्र अकेले ही शालवृक्ष की भाँति सबसे ऊपर दिखलाई पड़ते हैं। उनके लघुकलेवर 'सुवृत्ततिलक' की शैली भी साहित्यिक एवं सरस है। गुण-दोषों के विवेचन में उपमाओं की योजना विषय को अत्यन्त ग्राह्य एवं सरस बना देती है।

इसमें उनकी आलोचना की अन्तर्दृष्टि और व्यावहारिक विवेक का भी पता चलता है। इसके अतिरिक्त दृष्टि की उदारता भी भली-भाँति लक्षित होती है। वे अपनी मान्यताओं में कठोर नहीं हैं। छन्दों के विषय गिनाकर अन्त में मित्रभाव से उन्होंने सलाह दी है, कि समर्थ कवि अपने अभ्यस्त छन्दों का सबसे अधिक प्रयोग करे और बुभूषु कवि इसमें अपना पथ निर्देश ढूढें, यह केवल सहायक है, एकमात्र आज्ञा नहीं।

---

[1] काव्ये रसानुसारेण वर्णानुगुणेण च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागिवत् ।। -सुवृत्ततिलक 3/7

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में प्रयुक्त छन्द

छन्द सम्बन्धी विषय पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने छन्दों के शास्त्रीय विवेचन को लेकर एक ग्रन्थ लिखा है, जो 'सुवृत्ततिलक' नाम से जाना जाता है। इसमें 27 छन्दों के बारे में विशद विवेचन किया गया है। इन छन्दों के साथ ही कवि ने अपनी रचनाओं से उदाहरण भी प्रयुक्त किये हैं। वैसे इन्होंने अपने पूर्वकालीन प्रमुख कवियों से सम्बन्धित एक-एक छन्द वैशिष्ट्य को निरूपित किया है तथा अभिनन्द, पाणिनि, भारवि, रत्नाकर, भवभूति, कलिदास व राजशेखर के लिए क्रमशः अनुष्टुप् , उपजाति, वंशस्थ, वसन्ततिलका, शिखरिणी, मन्दाक्राता एवं शार्दूलविक्रीडित छन्दों को प्रमुख माना है।[1] किन्तु कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी छन्दःप्रियता का उल्लेख नहीं किया है। वैसे उन्होंने प्रायः सभी छन्दों में अपनी रचनाएँ की हैं किन्तु इनके द्वारा अनुष्टुप् छन्द में रचित पद्यों की संख्या अधिक है।

कविवर क्षेमेन्द्र का 'चारुचर्याशतक' लघुकाव्य के सभी पद्य अनुष्टुप् छन्द में ही रचित हैं और भी अन्य ग्रन्थों में भी इस छन्द में रचित पद्यों की संख्या अधिक है। इसके अतिरिक्त वसन्ततिलका व वंशस्थ तथा शार्दूलविक्रीडित छन्दों में भी रचित पद्यों की संख्या अधिक है। कविवर क्षेमेन्द्र ने छन्द के नियमों का

---

[1] क. स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः। -सुवृत्तलिक 3/30

ख. वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता। -वही 3/31

ग. वसन्ततिलकारूढा वाग्वल्ली गाढसंगिनी। - वही 3/32

घ. भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरंगिणी। -वही 3/33

ङ सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति। -वही 3/34

च शार्दूलविक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः। -वही 3/35

भली-भाँति पालन किया है, किन्तु कहीं-कहीं पर छन्दों की विचित्रता मालूम पड़ती है।[1]

लघुकाव्य, 'दर्पदलन' में कविवर क्षेमेन्द्र ने अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति वसन्ततिलका, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता एवं शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों का प्रयोग कर अपनी छन्दोव्युत्पत्ति का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ उनका शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग कितना हृदयग्राही है, जिसमें काम प्रशंसा के प्रसंग में रमणी-सौन्दर्य प्रस्तुत किया है।[2] वैसे तो प्रकृत कवि ने अपने इन काव्यों में अनुष्टुप् के अतिरिक्त अनेक छन्दों का मनोहरी प्रदर्शन किया है और उनमें से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, परन्तु यहाँ विषय विस्तार से बचने के लिए उनके एक अन्य प्रिय छन्द उपजाति का अधोलिखित उदाहरण प्रस्तुत है।[3]

क्षेमेन्द्र के 'सेव्यसेवकोपदेश' (सबसे कम पद्यों वाले लघुकाव्य) में दो छन्दों का प्राधान्य है। अनुष्टुप् एवं वसन्ततिलका छन्दों का प्रयोग सर्वाधिक है। क्षेमेन्द्र का लघुकाव्य 'नर्ममाला' व्यङ्ग्यप्रधान रचना है, जिसमें क्षेमेन्द्र ने अनुष्टुप् छन्द का अधिक प्रयोग किया है।

---

1 भाभूतो कुङ्कुमाद्रौ रइनइसदृशौ (?)
.... मुसिमुसिलक्षणौ फेनपर्वौ (?)
.... मणिकनकधरौ दिव्यगन्धानुलिप्तौ
सङ्ग्रामेण प्रविष्टौ पलुप (?) ... नौ लभ्यतां राजलक्ष्मीः।। -नर्ममाला 2/42

2 एताः सन्ति वधूविलासकुटिला भ्रूकार्मुकश्रेणयः
कर्णान्तायतपातिनश्च तरुणीनेत्रत्रिभागेषवः।
निर्दग्धोऽन्धकवैरिणा नवमनः क्षोभाभियोगोद्भवात् ।
संरम्भादविचार्य केवलमसौ मिथ्या तपस्वी स्मरः।। -चतुर्वर्गसंग्रह 3/4

3 कुलाभिमानं त्यज संवृताग्रं धनाभिमानं त्यज दृष्टनष्टम् ।
विद्याभिमानं त्यज पण्यरूपं रूपाभिमानं त्यज काललेह्यम् ।। -दर्पदलन 1/39

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'सुवृत्ततिलक' से उनके छन्द सम्बन्धी दृढ़ ज्ञान एवं उदाहरणों से तत्सम्बन्धी प्रयोग की दक्षता का भी ज्ञान प्राप्त होता है। इस काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ में क्षेमेन्द्र ने छन्दों का विस्तृत विवेचन किया है- अनुष्टुप् , भुजगशिशुभृता, दोधक, द्रुतबिलम्बित, हारिणी, इन्द्रवज्रा, कुमारललित, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, नर्कुटक, प्रहर्षिणी, प्रमाणी, पृथ्वी, शालिनी, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, श्लोक, स्रग्धरा, स्वागता, तोटक, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, विद्युन्माला, वंशस्थ, और वसन्ततिलका आदि छन्दों का लक्षण सहित उदाहरण देकर पुष्ट किया है। यह विवेचन क्षेमेन्द्र के छन्द सम्बन्धी ज्ञान एवं प्रयोग का प्रमाण ही है।

इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने अपनी काव्य-कला को इस छन्दोवैविध्य द्वारा पोषण प्रदान किया है। उनका छन्दः प्रयोग सहज है तथा उस पर उनका पूर्ण अधिकार है। वे स्वयं इस विषय के आचार्य हैं और कवि के रूप में उन्होंने छन्दः कौशल का समीचीन प्रयोग किया है।

(iv) क्षेमेन्द्र के काव्य में रस, गुण एवं दोष आदि का प्रयोग

रस : स्वरूप-विवेचन

प्रसिद्ध आलोचक राजशेखर के अनुसार नन्दिकेश्वर ने ब्रह्मा जी के उपदेश से सर्वप्रथम रस का निरूपण किया, परन्तु रस विषय इस सिद्धान्त का कहीं पता नहीं चलता है। आज हमें रस विषयक सिद्धान्त विविध रूपों में फैला हुआ प्रतीत होता है, वह भरतमुनि के साथ सम्बद्ध है। भरत ही रस सम्प्रदाय के स्रष्टा माने जाते हैं। उन्होंने अपने नाट्यशास्त्र में रस निष्पत्ति का सर्वप्रथम उल्लेख इस सूत्र द्वारा किया है-

"विभावानुभावव्याभिचरिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।[1]"

---

[1] नाट्यशास्त्र षष्ठ अध्याय, पृ0 228

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचरि भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। रस सिद्धान्त का यह मूलभूत सूत्र देखने में जितना लघु है, विचार करने में उतना ही सारगर्भित है। इसी कारण व्याख्या में अवान्तरकालीन आचार्यों ने अपनी बौद्धिक शक्ति लगायी और अनेक सिद्धान्तों को जन्म दिया। रस सिद्धान्तों में चार प्रमुख सिद्धान्त हैं - भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद, शङ्कुक का अनुमितिवाद, भट्टनायक का भुक्तिवाद, अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद।

विभाव

रसानुभूति के कारणों को विभाव कहते हैं। 'विभाव्यते इति' अर्थात् विभाव वह है जिसका ज्ञान हो सके। जिसे विभावित करके सामाजिक रसास्वाद करता है। वह विभाव कहलाता है। यह स्थायिभाव को पुष्ट करने वाला होता है। यह आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव भेद से दो प्रकार का होता है।[1] जिसे आलम्बन करके रस की उत्पत्ति होती है, उसे आलम्बन विभाव कहते हैं। राम, सीतादि तथा जिससे रस उद्दीप्त होता है, उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। यथा - उद्यान, चाँदनी, एकान्तस्थानादि।

अनुभाव

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार अपने-अपने आलम्बन या उद्दीपन कारणों से सीता, रामादि के भीतर उद्बुद्ध रति आदि स्थायिभाव को जो बाह्य रूप में प्रकाशित करता है। वह रत्यादि का कार्य रूप काव्य या नाटक में अनुभाव नाम से जाना जाता है।[2]

---

1 ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत् ।
आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा।। -दशरूपक 4/2

2 उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन् ।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः।। -साहित्यदर्पण 3/132

भरतमुनि के अनुसार जो वाचिक या आंगिक अभिनय के द्वारा रत्यादि स्थायीभाव की आन्तरिक अभिव्यक्ति रूप अर्थ का बाह्य रूप में अनुभव कराता है उसे अनुभाव कहते हैं।[1]

व्यभिचारीभाव

उद्बुद्ध हुए स्थायिभावों की पुष्टि तथा उपचय में जो उनके सहकारी होते हैं। उन्हें व्यभिचारी भाव कहते हैं। दशरूपक के अनुसार जो भाव विशेष रूप से स्थायिभाव के अन्तर्गत समुद्र में तरंगों के समान कभी उठते है, गिरते हैं और डूबते नजर आते हैं। वे व्यभिचारी भाव कहलाते हैं।[2] इनकी संख्या 33 मानी गयी है।

स्थायीभाव

रसानुभूति में आलम्बन और उद्दीपन विभाव तो बाह्य कारण हैं, परन्तु रसानुभूति का आन्तरिक और प्रधान कारण स्थायीभाव है। यह मन में स्थिर रूप से रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है। यह अनुकूल उद्बोधक सामग्री पाकर अभिव्यक्त हो उठता है और सामाजिक को अपूर्व आनन्द की प्राप्ति कराता है।[3] दशरूपककार ने उसकी उपमा समुद्र से देते हुए कहा है, कि जिस प्रकार समुद्र किसी भी खारे या मीठे जल को आत्मसात् करके आतमरूप बना देता है, उसी प्रकार स्थायीभाव भी अन्य सभी अनुकूल या प्रतिकूल भावों को आत्मरूप बना लेता है।[4] काव्यप्रकाशकार ने इन स्थायी भावों की गणना आठ प्रकारों में की है।[1] इसके अतिरिक्त निर्वेद को भी 9 वाँ स्थायी भाव माना है।

---

[1] -नाट्यशास्त्र 6/5

[2] विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ।। -दशरूपक 4/7

[3] व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः। - काव्यप्रकाश 4/28

[4] विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः।

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में प्रयुक्त रस

रस विवेचन की दृष्टि से कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में शान्त रस एवं हास्य रसों का प्राधान्य है। उनके उपदेशात्मक लघुकाव्यों में शान्त रस का प्राधान्य परिलक्षित होता है जबकि उनके व्यङ्ग्यप्रधान लघुकाव्यों में हास्य रस की प्रधानता है। वैसे क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में यत्र तत्र करुण एवं बीभत्स आदि रसों की भी अनुभूति होती है, किन्तु उनके लघुकाव्यों में विशेषकर शान्त और हास्य रसों का ही आधिक्य है। शान्त रस के रूप में 'चतुर्वर्गसंग्रह' का एक पद्य द्रष्टव्य है, जिसको 'औचित्यविचारचर्चा' में शान्त रस के उदाहरण के रूप में उदाहृत किया गया है। भोग में रोग का भय होता है, सुख में उसके क्षय का भय होता है, धन होने पर आग से जलने और शासक द्वारा छीने जाने का डर होता है, दासता की स्थिति में स्वामी का भय होता है, गुण होने पर खलों का भय होता है, उच्च वंश होने पर कुपत्नी का भय होता है, मान होने पर ग्लानि का भय होता है, जय में शत्रु का भय होता है और शरीर होने पर यमराज से डर होता है। इस संसार में सब कुछ भय ही होता है। अहो! केवल वैराग्य ही अभय है।[2]

आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः।। - दशरूपक 4/28

1 रतिर्हासश्च शोकाश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः।। -काव्यप्रकाश 4/30

2 भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्तेऽग्निभूभृद्भयं
दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिद्भयम् ।
माने ग्लानिभयं जये रिपुभयं काये कृतान्ताद् भयं
सर्वं नाम भवे भवेद् भयमहो वैराग्यमेवाभयम् ।। -चतुर्वर्गसंग्रह 4/7

गुण : स्वरूप-विवेचन

आचार्य मम्मट के अनुसार "आत्मा के शौर्यादि धर्मों के समान काव्य के आत्मभूत प्रधन रस के जो अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक धर्म हैं। वे गुण कहलाते हैं।[1] जिस प्रकार शौर्य आदि धर्म आत्मा के ही होते हैं, शरीर आकार आदि के नहीं, उसी प्रकार माधुर्य आदि गुण रस के ही धर्म होते हैं, वर्णों के नहीं।[2]

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में प्रयुक्त गुण

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इनके लघुकाव्यों में प्रसाद गुण तो सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है जिसका लक्षण आचार्य मम्मट ने किया है।[3] प्रसाद गुण के साथ माधुर्यगुण भी यथास्थान प्रयुक्त हुआ है, किन्तु ओजगुण का प्रयोग यत्र तत्र प्राप्त होता है। ओज गुण में साधारण सूक्तियों एवं लोकोक्तियों के रूप में कवि का सूक्ष्म पर्यवेक्षण निहित है सूक्तियों का तो इसमें प्रचुर भण्डार है। कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य दर्पदलन में प्रयुक्त कुछ सूक्तियों को संकेतित किया जा सकता है।[4]

---

[1] ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।। -काव्यप्रकाश 8/86

[2] आत्मन एव हि यथा शौर्यादयो नाकारस्य,
तथा रसस्यैव माधुर्यादयो गुणा न वर्णानाम् । -काव्यप्रकाश 8/86 की वृत्ति

[3] शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहिता स्थितिः।। -काव्यप्रकाश 8/93

[4] क. लज्जाकरमसत् कर्म कथं तत् कथयामि ते।
संसारादपि साश्चर्यं गहनं स्त्रीविचेष्टितम् ।। -दर्पदलन 1/62

ख. अपि कुञ्जरकर्णाग्रादपि पिप्पलपल्लवात् ।
अपि विद्युद्विलसिताद् विलोलं ललनामनः।। -वही 1/63

ग. स्त्रियो यत्र प्रगल्भन्ते भर्तुराच्छाद्य कर्तृताम् ।

दोष : स्वरूप-विवेचन

आचार्य मम्मट के अनुसार 'जिससे मुख्यार्थ का अपकर्ष होता है वह दोष कहलाता है'और काव्य में रस भावादि ही मुख्यार्थ होता है, परन्तु उसका अर्थात् रस का आश्रय होने से वाच्य अर्थ भी मुख्य अर्थ कहलाता है। शब्दादि अर्थात् रस तथा वाच्यार्थ इन दोनों के बोधन में उपकारक होते हैं, अतएव उनमें भी वह दोष रहता है।[1] आचार्य मम्मट ने इन दोषों की गणना सोलह प्रकारों में की है।[2]

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में प्रयुक्त दोष

गुणों के साथ ही साथ कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में अश्लील शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। यह दोष इनके काव्य में यत्र तत्र प्राप्त होता है। वेश्या-वर्णन-प्रसङ्ग में कविवर ने कहीं-कहीं अश्लील एवं उद्वेजक वर्णन किया है,

---

गृहं भवत्यवश्यं तदास्पदं परमापदाम् ।। -वहीं 2/23

घ. ये संसत्सु विवादिनः परयशः शल्येन शूलाकुलाः
कुर्वन्ति स्वगुणस्तवेन गुणिना यत्नात् गुणाच्छादनम् ।
तेषां रोषकषायितोदरदृशां दोषोष्णनिः श्वासिनां
दीप्ता रत्नशिखेव कृष्णफणिनां विद्या जनद्वेग भूः।। -वहीं 3/14

ड. तीर्थाप्तिः साधुसम्पर्कः पूज्यपूजामहोत्सवः।
अस्मिन् विरसनिः सारे संसारे सारसंग्रहः।। वहीं 4/51

च. चित्तं विरक्तं यदि किं तपोभिश्चित्तं सरागं यदि किं तपोभिः
चित्तं प्रसन्नं यदि किं तपोभिःश्चित्तं सकोपं यदि किं तपोभिः।। -दर्पदलन 7/3

[1] मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः।
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वापि सः।। -काव्यप्रकाश 7/71

[2] दुष्टं पदं श्रुतिकटु च्युतसंस्कृत्यप्रयुक्तमसमर्थम् ।
निहितार्थमनुचितार्थं निरर्थकमवाचकं त्रिधाऽश्लीलम् ।
संदिग्धमप्रतीतं ग्राम्यं नेयार्थमथ भवेत् क्लिष्टम् ।
अविमृष्टविधेयांशं विरुद्धमतिकृत् समासगतमेव।। -काव्यप्रकाश 7/72

जिससे पाठक के मन में विकार उत्पन्न हो जाता है।[1] कहीं-कहीं पर क्षेमेन्द्र ने ऐसी बातों का वर्णन किया है जो व्यवहार के किञ्चित् विपरीत मालूम पड़ती है। एक शिशु द्वारा वेश्या-संसर्ग का वर्णन कथमपि औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। वह बालक जो शय्या पर स्वयं चढ़ने में असमर्थ होने के कारण चेटी द्वारा चढ़ाया जाता है।[2] जो बालक रोता है, ऐसा विचार कर स्वयं कलावती के द्वारा ओष्ठ एवं गालों पर नहीं काटा जाता।[3] वही कलावती के अधर-बिम्ब को किस रस के कारण खण्डित करेगा? किस सामर्थ्य और पटुता के कारण रात्रिभर अनवरत चटक पक्षी की भाँति सम्भोग कर मतवाली कलावती को खेद क्लान्त करेगा।[4] ये बातें व्यवहार तथा अनुभव के विपरीत हैं। यदि वेश्याओं की समाज विध्वंसक प्रवृत्ति तथा क्रियाओं को प्रदर्शित करना अभीष्ट था तो यह दूसरे प्रकार से भी हो सकता था। उक्त प्रसंग को पढ़ते समय पाठक के मन में एक विलक्षण उद्वेजक भाव उत्पन्न होता है जो व्यवहार के सर्वथा विपरीत है।

इस प्रकार उपर्युक्त काव्यगत विशेषताओं के विवेचन से स्पष्ट है कि कविवर क्षेमेन्द्र एक सफल कवि एवं आलोचक हैं जो सरल एवं सरस भाषा, रस, छन्द, अलंकार, गुण, वृत्ति एवं रीति आदि के ज्ञाता एवं कुशल-प्रयोग कर्ता भी हैं। वैसे सृष्टि की विशेषता के प्रतिकूल नहीं हैं। अर्थात् इस सृष्टि में जड़-चेतन सभी गुण एवं दोष युक्त हैं, इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र भी दोषों से

---

1 लिङ्गार्चनापदेशेन दत्त्वा वेश्मनि तालकम् ।
करोति चर्मलिङ्गेन रण्डा कण्डूविखण्डनम् ।। -नर्ममाला 3/44

2 आरोपितः स चेट्या खट्वामत्युन्नतां शनैः शिशुकः।
निश्चलनुर्मुहूर्तं धूर्तः स च कृतकसुप्तोऽभूत् ।। -समयमातृका 8/4

3 रोदिति शिशुरिति दयया यस्य न दशनक्षतं मया दत्तम् ।
तेन ममाधरबिम्बं पश्य शुकेनेव खण्डितं बहुशः।। -वही 8/9

4 लब्धास्वादः स ततश्चटकरतिमाँ प्रजागरो मूर्तः।
खेदक्लान्तामकरोत् गणनातीतैः समारोहैः।। -वही 8/7

बच नहीं पाये हैं। उनके लघुकाव्यों में सभी काव्यगत पहलुओं पर विचार करने पर गुणाधिक्य की प्रतीति होती है, किन्तु यत्र-तत्र काव्य-दोष भी विद्यमान हैं, किन्तु ये दोष गुणों से अभिभूत ही रहते हैं।

(v) क्षेमेन्द्र : एक कथाकार के रूप में

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'कला विलास' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे एक सफल कथाकार भी हैं। वे कथा गढ़ने में तो बहुत ही कुशल हैं। इनके कथा एवं कहानी सम्बन्धी तथ्यों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि वे कवित्व गुण नियुक्त होने के साथ ही स्वकथन की पुष्टि में विभिन्न कथानकों को प्रस्तुत करते हैं। क्षेमेन्द्र अपने 'कलाविलास' में 'मूलदेव' का कथानक प्रस्तुत करते हैं जो धूर्तता एवं कपट की मूर्ति है। 'समयमातृका' तो एक छोटी सी बात पर बड़ा प्रबन्ध लिखा गया है, जो कवि के लिए प्रशंसा का विषय है। नवयौवन, मदोन्मत्ता वेश्या कलावती और वृद्धा 'कुट्टनी' कङ्काली के द्वारा फैंके गये जाल में तत्कालीन काश्मीर भूमि के प्रसिद्ध धनी व्यवसायी 'शङ्ख' का अल्पवयस्क बालक 'पङ्क' का फँसकर सम्पूर्ण सम्पत्ती का अधिकरण पत्र देना तथा कङ्काली का सम्पूर्ण चरित्र, प्रदोष वेला वर्णन, राग-भेद-वर्णन आदि भी बहुत विदग्धता के साथ वर्णित हैं, जो कथावस्तु को अग्रसर करने में पूर्ण सहायक बनते हैं।

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'नर्ममाला' में गणनापति का कथानक है जिसे विष्णु द्वारा मारे गये दैत्यों से जोड़ा गया है, यह क्षेमेन्द्र की कथा सम्बन्धी विशेषता है। 'दर्पदलन' के सातों विचारों में कथानकों का सहारा लिया गया है, पहले कविवर कुल, वित्त, श्रुत, रूप, शौर्य, दान एवं तप सम्बन्धी तथ्यों का विवेचन करते हैं, तत्पश्चात् उन कथित तथ्यों की पुष्टि हेतु कथा-शैली को अपनाते हुए कथानक कहते हैं।

उपदेशात्मक तथ्यों की पुष्टि करने में ही वे विशेषतः कथानकों का प्रयोग करते हैं। उपदेश के लिए प्रचलित अनेक विधियों में कहानी एक उत्तम विधि है। इस विधि का उदय कब और किस रूप में हुआ? सिद्धान्ततः इस सम्बन्ध में भले ही कुछ न कहा जाय, किन्तु विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी

कहानियों का निबन्धन हुआ है, 'पञ्चतन्त्र' जिसकी रचना ईसा की चतुर्थ शताब्दी पूर्व ही हो चुकी थी, एकमात्र कहानियों पर आधारित उपादेय ग्रन्थ है और उपदेश ग्रन्थ के रूप में निश्चित ही उपादेय भी है। उसी परम्परा का अनुसरण करते हुए कविवर क्षेमेन्द्र ने 'कुल' विचार में श्रुतनिधि के पुत्र, ब्राह्मणत्व के अभिमानी तेजोनिधि की कथा को उद्धृत किया है, जिसे गर्दभी के द्वारा अपनी वास्तविक कुलीनता का पता चलता है। 'धन' के प्रसंग में श्रेष्ठी नन्द के दो जन्मों की कथाओं का हृदयावर्जक चित्रण उपस्थित किया है, जो धन के प्रति मोह के सम्बन्ध में घृणा के भाव को उद्दीप्त करता है। 'विद्या' विचार में उन्होंने भारद्वाज मुनि के पुत्र यवक्रीत का कथानक उद्धृत किया है। 'रूप' के प्रसंग में राजा पुरुरवा एवं अश्विनी कुमारों की कथा द्वारा बहुत ही आकर्षक रूप से रूप की असारता प्रतिपादित की गयी है। 'शौर्य' के प्रसङ्ग में इन्द्र आदि के कथानकों में विजयी वीर को कालान्तर में पराजित एवं बलहीन दिखलाते हुए कहानियों के पौर्वापर्य में औचित्य का सुन्दर निर्वाह किया गया है। 'दान' के प्रसङ्ग में अन्य विचारों की भाँति क्षेमेन्द्र ने युधिष्ठिर के यज्ञ में उपस्थित स्वर्णन कुल के कथानक को उद्धृत किया है, जो महाभारत के अश्वमेध पर्व के अन्तर्गत अनुगीता पर्व में प्राप्त होता है। उपर्युक्त कथानक द्वारा सहृदय पाठक को सात्त्विक कर्तव्य की भावना से प्रेरित होकर तथा स्वयं दुःख उठाकर दान करने की ओर प्रेरित किया गया हैं अपने विषय का प्रतिपापदन करते हुए प्रत्येक विचारों की भाँति क्षेमेन्द्र ने 'दर्पदलन' के अन्तिम 'तप' विचार में भी कथा-शैली का आश्रय लिया है।

उपर्युक्त कथानकों के प्रसङ्ग से स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र कथा करने में बहुत ही दक्ष हैं तथा स्वकथन की पुष्टि में कथानकों का चित्रण करने के अतिरिक्त वे अर्थान्तरन्यास के माध्यम से विभिन्न महाकाव्यों एवं पुराणों के कथानकों की ओर संकेत करते हैं। कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य 'चारुचर्या' में अनेक कथानकों की ओर संकेत किया हैं जिससे वे स्वकथनोपदेश की पुष्टि भी करते हैं। क्षेमेन्द्र के 'चारुचर्या' लघुकाव्य में ही इन्द्र द्वारा वृत्रासुर-वध, स्वेतमुनि को यमराज द्वारा यमपुरी न लेजा पाना, भीम द्वारा पिता शान्तनु के हाथों में पिण्डदान न कर भूमि पर ही रखना, इन्द्र द्वारा गर्भस्थ दिति के पुत्र दैत्यों का

विनाश, माण्डव्य ऋषि का शूली पर चढ़ाया जाना, सीता की कामना रखने से रावण का वध, वृष्णि वंश के लोगों का परस्पर तृण प्रहाण से विनाश, राजा श्वेत द्वारा परलोक में स्वमांस भक्षण, राजा नल के शरीर में कलियुग का प्रवेश, जनमेजय को विप्रशाप, हरिश्चन्द्र का चाण्डाल सेवक होना, युधिष्ठिर द्वारा नरक देखना, श्री राम की संगति से विभीषण द्वारा विशाल राज्य की प्राप्ति, माता के शाप से सर्पयज्ञ में नागों का नाश, ययाति द्वारा छोटे विनम्र पुत्र पुरु को चक्रवर्ती सम्राट् बनाया जाना, बलि द्वारा स्वयं को बन्धन में डाल देना, कर्ण द्वारा इन्द्र को कुण्डलों का दान, राजा परीक्षित का तक्षक द्वारा ब्राह्मण शाप से भस्म होना, कर्ण द्वारा ब्राह्मण का छद्मवेश धारण कर परशुराम से अस्त्र विद्या सीखना, दुर्योधन की सेवा से भीष्म, द्रोण जैसे महापुरुषों का विनाश, शिव द्वारा कपोत रक्षा में श्येन पक्षी को स्वशरीर का अर्पण, देवासुर संग्राम में देवताओं और दानवों का संहार, उपकार करने वाले नाड़ी जंघ नामक बगुले को मारकर ब्राह्मण का पतित होना, राजा दशरथ का पुत्र शोक से प्राण त्यागना, स्वगुण प्रशंसा से ययाति का स्वर्गलोक से पतन, भीष्म द्वारा कुरुवंश का विनाश, सूर्य एवं चन्द्र का राहू द्वारा ग्रसित होना, भगवान् विष्णु की वामन रूप में बलि से याचना, शिवापमान करने से दक्ष के यक्ष का विध्वंस, भगवान् कृष्ण द्वारा शिशुपाल वध, हनुमान् जी द्वारा श्री राम का कार्य करना, समुद्र मन्थन, विश्वामित्र द्वारा वशिष्ठ की धेनु का अपहरण, विश्वामित्र द्वारा अप्सरा को गले लगाना, अश्वत्थामा के वध को जानकर द्रोणाचार्य का प्राण त्याग, भीम द्वारा दुःशासन का रक्तपान, पाण्डु द्वारा शापवश शरीर-त्याग, शिव द्वारा भस्मासुर को वरदान, शंकर जी द्वारा ब्रह्मा के चारों मुखों को काटना, द्रोण की शूद्रता एवं विदुर का ब्राह्मणत्व, कच द्वारा शरीरिक क्लेश प्राप्त करना, सीता का राम द्वारा परित्याग, इन्द्रद्युम्न का कच्छप द्वारा प्रशंसित होने पर स्वर्ग प्राप्ति, व्याडि एवं इन्द्रदत्त द्वारा राजा की राजलक्ष्मी का हरण आदि कथानकों का उद्धरण देकर स्वकथन व उपदेशों को प्रमाणित करने का भी काम करते हैं।

इसके अतिरिक्त कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा रावण का बाँधा जाना, ऋष्यश्रृंग का वेश्या द्वारा आसक्त और शृङ्गारी बनाया जाना, परशुराम को बाल रूप द्वारा ब्राह्मण समझकर छोड़ना, भीम द्वारा जरासन्ध का चीरा जाना,भगवान् राम द्वारा

बालिवध, शम्बर असुर की पत्नी का अपने दामाद प्रद्युम्न पर कामासक्ति, शिव की नेत्राग्नि में कामदेव का भस्म होना, युधिष्ठिर द्वारा जुए में सर्वस्व हार जाना, राजानन्द द्वारा मन्त्री शकटार को कैद खाने में डाला जाना, हिरण्यकशिपु के विनाश हेतु भगवान् का खम्भे से प्रकट होना, नहुष द्वारा इन्द्र रूप में अगस्त्य मुनि का अपमान, विदुर की सलाह न मानने से दुर्योधन का विनाश, घी का अधिक भोजन करने से अग्नि अजीर्ण होना, कुम्भकर्ण की निद्रा, राम, रघु, शिव पाण्डु आदि का चला जाना, नन्दी द्वारा रावण को शाप, कौरव व पाण्डव युद्ध में बलराम की भूमिका, बलि की दान शीलता, लक्ष्मण जी द्वारा इन्द्रजित् मेघनाद का बध, अगस्त्य द्वारा वातापि नामक दैत्य का भक्षण, कुरु आदि राजाओं का अन्त में तपोवन जाना, विदुर द्वारा पुनर्जन्म का बीज ज्ञानाग्नि में भस्म करना, मान्धाता की कीर्ति एवं भीष्म की शरशैय्या- आदि कथानकों को क्षेमेन्द्र द्वारा काव्य में संकेतित किया गया है। इससे उनकी कथाप्रियता एवं विस्तृत अध्ययन का ज्ञान प्राप्त होता है।

इस प्रकार क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य विविध काव्यगत वैशिष्ट्यो से सम्पन्न हैं। काव्यालोचन के निकष पर वे पूर्णतः खरे उतरते हैं। उन्हीं वैशिष्ट्यों के कारण क्षेमेन्द्र एक कोरे उपदेशक या व्यङ्ग्यकार न होकर एक सत्कवि भी सिद्ध होते हैं।

●●●

सप्तम अध्याय

क्षेमेन्द्र का योगदान, सांस्कृतिक मूल्यांकन, परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

(i) संस्कृत-साहित्य में क्षेमेन्द्र का स्थान एवं योगदान

धरती का स्वर्ग कहा जाने वाला काश्मीर भले ही आज कुछ आततायियों की दुर्बुद्धि के कारण विश्व के मानचित्र में संघर्ष स्थली बना प्रतीत होता है, परन्तु आज भी यह जहाँ एक ओर अपनी प्राचीन परम्पराओं एवं गाथाओं को संजोये हुए प्राकृतिक सौन्दर्य की रमणीयता के कारण जनाकर्षण का केन्द्र बना हुआ है, वहीं सरस्वती के वरद पुत्र संस्कृत के मूर्धन्य विद्वानों की जन्म स्थली होने का गौरव भी प्राप्त किये हुए है। इस भूमि में अवतीर्ण होकर अनेक मनीषी संस्कृत-विद्वानों ने अध्यात्म, दर्शन, व्याकरण, अलंकारशास्त्र, कथा एवं इतिहास आदि विभिन्न विधाओं में नई परम्पराओं को जन्म देकर संस्कृत-साहित्य-कोष को समृद्ध बनाने में जो अपर योगदान दिया है, वह भारत में ही नहीं, अपितु विश्व में भी अविस्मरणीय, श्लाघनीय एवं अनुकरणीय सिद्ध हुआ है।

कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र का संस्कृत-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है, जिसका महत्त्व किसी से कम नहीं है, उन्हें कवि, नाटककार, रीतिकार, कोषकार, तथा इतिहासकार के रूप में गौरव प्राप्त है। उनका साहित्य न केवल भारतीय लोकजीवन की अनुपम निधि है, अपितु विश्ववाङ्मय में उसका विशिष्ट स्थान है। वे साहित्यकारों एवं काव्य तत्त्वज्ञों एवं आचार्यों के मध्य काव्य, सिद्धान्त, नीति, और कथालोक में अपनी पहचान बनाने वाले आचार्य थे। क्षेमेन्द्र के सन्दर्भ में डॉ0 आर्येन्द्र शर्मा ने उचित ही कहा है-

"Ksemendra was a polymath and a prolific writer. Besides a number of discriptive, narrative and satiric poems, he also wrote several works on poetic, metric discipline and Erotic."[1]

---

1 'Minor works of Ksemendra,' Introduction p.5

संस्कृत-भाषा के महाकवियों में कविवर क्षेमेन्द्र अलौकिक प्रतिभा से मण्डित महाकवि थे, जिनकी प्रतिभा ने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में अपना जौहर दिखलाया है। मां शारदा के ये वरद पुत्र प्रकृति के रमणीय आंचल में बसे कश्मीर के ही निवासी थे, किन्तु जिस समय सरस्वती के इस वरद पुत्र का जन्म हुआ उस समय कश्मीर का वातावरण कविता जैसी कोमल के अनुशीलन के लिए नितान्त अनुपयुक्त था। कश्मीर के इतिहास में यह युग असन्तोष, षडयन्त्र, नैराश्य एवं रक्तपात का काल था। तत्कालीन राजा अनन्त (1028 से 1063 ई0) एवं उसके पुत्र 'कलश' के राज्यकाल में ही क्षेमेन्द्र का समय व्यतीत हुआ था। अतः इनका जन्म काल 1025 ई0, 1066 ई0 निश्चित है। क्षेमेन्द्र अपने समय के इस नैराश्यपूर्ण असन्तोषजनक एवं रक्तपातयुक्त वातावरण में इतने असन्तुष्ट एवं मर्माहत थे कि उन्होंने इस वातावरण को सुधारने, पवित्र और विशुद्ध बनाने के लिए दुष्टता के स्थान पर शिष्टता की, स्वार्थ के स्थान पर पदार्थ किया, द्वेष के स्थान पर प्रेम की भावना को दृढ़ करने के निमित्त अपनी तीव्र गति से चलने वाली लेखनी को काव्य के नाना अंगों की रचना में लगाया।

भारत के स्वर्ग कश्मीर में ही ज्ञान, विज्ञान का संवर्धन एवं सुरक्षा भी विशेष रूप से हुई है। यद्यपि यह निर्विवाद है कि शैव दर्शन एवं काव्यशास्त्र को कश्मीर का योगदान सर्वश्रेष्ठ एवं अद्वितीय रहा है, लेकिन पुराण, साहित्य, नाट्यसाहित्य, महाकाव्य, मञ्जरीकाव्य, ऐतिहासिककाव्य, मुक्तककाव्य आदि का योगदान भी अभूतपूर्व रहा है। कश्मीर में ही संस्कृति के अनेक महान् चिन्तकों की परम्परा समाविष्ट है।

यद्यपि कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा रचित महाकाव्यों एवं काव्यों की लम्बी शृंखला परिलक्षित होती। इन्होंने मूलतः 40 काव्यों का सर्जन किया है, जिनमें 18 प्रकाशित हैं। प्रकाशित काव्यों में 'औचित्यविचारचर्चा', 'कविकण्ठाभरण', 'चारूचर्याशतक', 'दर्पदलन', 'चतुर्वर्गसंग्रह', 'कलाविलास', 'समयमातृका',

'सुवृत्ततिलक', 'रामायणमञ्जरी', 'भारतमञ्जरी', तथा 'बृहत्कथामञ्जरी' एवं 'दशावतारचरित', आदि विशेष महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। ये सभी ग्रन्थ-नक्षत्र अपनी विशेषताओं से संस्कृत-साहित्याकाश को आलोकित करते हैं। इनकी कृतियों में काव्य, महाकाव्य, समीक्षाग्रन्थ, छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ, नाटक, उपदेशप्रधान रचनाएँ, महाकाव्य एवं इतिहास महाकाव्यों के सूक्ष्म रूपान्तर सभी प्रकार की रचनाएँ विद्यमान हैं। इन रचनाओं के रूप भी विविध हैं और विषय भी। कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने काव्य की परिधि में जितने विस्तृत जीवन क्षेत्र को समेटा है, उतना अन्य किसी भी कवि ने नहीं। "संस्कृत-साहित्य में भोज एवं हेमचन्द्र दो कलाकार इस श्रेणी में आते हैं, परन्तु वे न इतने विस्तृत हैं जितने कि कविवर क्षेमेन्द्र और न मौलिक तथा गम्भीर ही इसलिए जिस दृष्टि से इनका मूल्यांकन होना चाहिए उस दृष्टि से कविवर क्षेमेन्द्र सर्वश्रेष्ठ ठहरते हैं।"[1]

कविवर क्षेमेन्द्र के रामायणमञ्जरी तथा बृहत्कथामञ्जरी जैसे समुद्रकल्प ग्रन्थ साधारण पाठकों के लिए सुपार सरिता बन गये हैं, वह साधारण कार्य नहीं है। क्षेमेन्द्र की उपदेशप्रधान रचनाएँ साधारण पाठक को साक्षात् उपदेश प्रदान करने वाली एवं व्यङ्ग्य द्वारा उपदेश करने वाली हैं जिनको नीतिपरक रचना कहा जा सकता है जिनमें 'चतुर्वर्गसंग्रह', 'चारुचर्या' एवं 'सेव्यसेवकोपदेश' प्रथम श्रेणी में आते हैं। इन रचनाओं के ज्ञान द्वारा जनसामान्य को सुधारने का प्रयत्न किया गया है तथा इनमें मुख्यतः नैतिक उपदेश दिये गये हैं। इस तरह के उपदेशों का निरूपण संस्कृत-वाङ्मय में बहुत अधिक हुआ है। रामायण और महाभारत ऐसे ही आदर्शपरक नैतिक उपदेशों से ओतप्रोत हैं। इनके अतिरिक्त भी जन्तुकथाओं तथा नीतिशतकों एवं मुक्तक रचनाओं के माध्यम से नैतिक उपदेशपरक काव्यरचना की परम्परा संस्कृत-साहित्य के इतिहास में आज भी अक्षुण्ण है। यद्यपि जनसामान्य के क्रियाकलापों पर इनका प्रभाव परिलक्षित नहीं

---

[1] आचार्य क्षेमेन्द्र-मनोहरलाल गौड़, पृष्ठ संख्या 28

होता तथापि समाज के चरित्र-वर्णन में इस प्रकार की रचनायें अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। क्षेमेन्द्र ने इसी परम्परा में उक्त काव्यों की रचना की जो सामाजिकों के कृत्याकृत्य विवेक में बहुत सहायक है। इनको पढ़कर साधु-चरित्र व्यक्तियों को आत्मतोष मिलता है तथा उन्हें सदाचार के प्रति आस्था बनाये रखने में प्रेरणा मिलती है।[1] व्यक्ति या समाज को अन्ततोगत्वा कैसा होना चाहिए इसका निदर्शन इन कृतियों में बड़े ही उत्तम ढंग से हुआ है। उपदेशात्मक इन कृतियों में जीवन के गूढ़ रहस्य का प्रतिपादन किया गया है तथा क्षणिक भावावेश में आकर सन्मार्ग का परित्याग करना सर्वथा हानिकारक बताया गया है।[2] चतुर्वर्गसंग्रह के प्रथम परिच्छेद में संसार को मरुस्थल तथा धर्म को कल्पवृक्ष कहा गया है-

"संसारोरुमरुस्थले सुरतरुर्नास्त्येव धर्मात् परः।[3] जिससे स्पष्ट है कि सुख और शान्ति का आश्रय धर्म ही है।

इनकी व्यङ्ग्य प्रधान रचनाएँ हैं- देशोपदेश, नर्ममाला, दर्पदलन, समयमातृका और कलाविलास। इन पाँचों रचनाओं में व्यङ्ग्य के लक्ष्य बने हैं- धूर्त, कृपण, दरबारी लोग, दूतियाँ, विट, विद्यार्थी, कायस्थ, वृद्धवर, वेश्याएँ, साधु, संन्यासी, नौसिखिया डाक्टर, ज्योतिषी, गवैया, सुनार, व्यापारी आदि। इन व्यङ्ग्यप्रधान रचनाओं द्वारा समाज के दूषित वर्ग को सुधारने का जैसा कार्य क्षेमेन्द्र ने किया। ऐसा कार्य अन्यत्र दुर्लभ है। समाज में व्याप्त दोष एवं दुर्बलताओं को क्षेमेन्द्र ने निकट से देखा तथा इन्हें प्रकट करने के लिए व्यङ्ग्यों का सहारा लिया है।

---

1 उपदेशाय शिष्याणां सन्तोषाय मनीषिणम् ।
क्षेमेन्द्रेण निजश्लोकै क्रियते वर्गसंग्रहः।। -चतुर्वर्गसंग्रह 1/2

2 चारुचर्या, पद्य संख्या 13 व 14

3 चतुर्वर्गसंग्रह 1/3

क्षेमेन्द्र का उद्देश्य यहाँ समाज को नैतिक दृष्टि से सुधारना है न कि लोक गर्हणा। वे चाहते थे कि समाज इन बुराइयों से छुटकारा पा जाय। जिस समाज में कवि जन्म लेता है और जीवन-यापन करता है उसके प्रति उसका कुछ दायित्व भी बनता है। उसमें व्याप्त बुराइयों का पर्दाफाश कर वह समाज को स्वच्छ एवं स्वस्थ देखना चाहता है जिसमें जनसामान्य राहत की सांस ले सके। क्षेमेन्द्र ने देखा कि छोटे-बड़े सभी राजकीय कर्मचारी घूस लेकर लोगों को सता रहे हैं। समाज में ऐसा वर्ग पनप रहा है जो लोगों को ठग कर ही समृद्ध हो गया है। बूढ़े व्यक्ति धन की शक्ति से युवती लड़कियों से विवाह कर लेते हैं, जिसमें उनका जीवन तो दूभर होता ही है वे युवतियाँ भी समाज में व्यभिचार फैलाती हैं। क्षेमेन्द्र की दृष्टि यहाँ एकांकी नहीं है, अपितु समाज का हर वर्ग उनकी आलोचना का विषय बना है।उन्होंने अपनी काव्य-कला को एक ऐसे अस्त्र के रूप में प्रयोग किया है जिसमें लक्ष्यभेदन की क्षमता असीम है। मानव-चरित्र की गर्हणा का उनका प्रकार बहुत ही रोचक है। किसी वर्ग के चरित्र में उपलभ्यमान दोषों को वे अपने व्यङ्ग्यों से ऐसा प्रकाशित कर देते हैं कि उसे पढ़ या सुनकर व्यक्ति अपनी हंसी को रोक नहीं पाता।

स्वभावतः मनुष्य सामाजिक मान का भूखा रहता है। व्यङ्ग्य उसकी इस कोमलता पर तीखा प्रहार करता है जिससे वह तिलमिलाकर मानपूर्ण जीवन बिताने के लिए बद्धपरिकर हो जाता है। इससे उदासीन व्यक्ति की इन दुर्बलताओं के प्रति हीन भावनाएँ जाग्रत होती हैं। फलतः साधारण लोग भी इस जाल में फँसने से बच जाते हैं।

इसलिए मनीषियों का विचार है कि व्यङ्ग्य विधान समाज सुधार का श्रेष्ठ साधन है। कविवर क्षेमेन्द्र ने विविध व्यवसायों के कपटपूर्ण व्यवहारों का खुला वर्णन कर उसकी हँसी उड़ाई है और अन्त में युवकों के लिए निष्पाप आजीविका का उपदेश दिया है। इनके व्यङ्ग्य न जो इतने तीक्ष्ण हैं कि असह्य

हो उठें और कवि को एकांकी प्रमाणित कर दें और न तो इतने कोमल ही हैं कि वे उपेक्षणीय हो जाँय। उनमें सामञ्जस्य है और रचनात्मकता है। इस प्रकार व्यङ्ग्यकार के रूप में क्षेमेन्द्र संस्कृत-साहित्य में मूर्धन्य है।

इसके अनन्तर इनका रीतिकार के रूप पर सूक्ष्मतः विचार किया जाय तो इनके अन्तर्गत तीन पुस्तकें आती हैं- कविकण्ठाभरण, औचित्यविचारचर्चा और सुवृत्ततिलक तीनों ही कृतियों का अपने-अपने क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके ऊपर क्षेमेन्द्र ने संस्कृत-साहित्य को आढ्य बनाया है तथा नवीन मार्ग की खोज कर उसे पूर्ण प्रतिष्ठा दी है।

"कविवर क्षेमेन्द्र का 'कविकण्ठाभरण' कवि शिक्षा पर लिखा हुआ छोटा सा ग्रन्थ है। इसकी योजना में कवि ने सोपज्ञ मार्ग अपनाया है। परम्परा का पालन नहीं किया। बुभुत्सु कवियों के लिए चमत्कार तत्त्व को अनिवार्य रूप से आवश्यक माना है। इसमें वे व्यावहारिक प्रतीत होते हैं।"[1] कविवर क्षेमेन्द्र की कवि शिक्षा की शैली भी उनकी मौलिकता ही है। वे राजशेखर की काव्यमीमांसा से इस अर्थ में बहुत आगे हैं कि यह व्यावहारिक है, सर्वसाधारण के लिए सुगम है। काव्यमीमांसा पाण्डित्यपूर्ण ढंग से लिखी गयी रचना है, जो सिद्धहस्त कवियों को भी भ्रम में डालने वाली है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने कविता बनाने का मार्ग सुगम और सरल बनाया है। इस दिशा में और भी महत्त्वपूर्ण कार्य जो उन्होंने किया है वह है - कवि बनने वालों की मानसिक एवं शारीरिक शिक्षा का। उन्होंने रचना की शिक्षा के समान ही कवि की बुद्धि का शिक्षण भी आवश्यक बताया है।

'औचित्यविचारचर्चा' में जो समीक्षा मार्ग इन्होंने अपनाया है वह सर्वथा नवीन तो नहीं है, परन्तु व्यापक एवं गम्भीर बहुत है, इसकी प्रासंगिक चर्चा तो

---

[1] आचार्य क्षेमेन्द्र - मनोहरलाल गौड़, पृष्ठ संख्या 35

दण्डी, आनन्दवर्धन आदि ने की है पर उसे समीक्षा क्षेत्र में जो स्थान मिलना चाहिए वह नहीं दिया गया। गुण-दोष के प्रसंग में आचार्य लोग औचित्य का स्मरण करते थे। दण्डी की अपेक्षा आनन्दवर्धन ने औचित्य पर अधिक बल दिया है। परन्तु उनके विचार से भी वह ध्वनि का गौण अंग है। काव्य का आत्म तत्त्व जो किसी के मत में अलंकार, किसी के मत में रीति, अन्य की दृष्टि में रस और अन्य की दृष्टि में ध्वनि है। क्षेमेन्द्र ने इन विचारों को एक ओर रखकर औचित्य को रसादि का मूल तत्त्व सिद्ध किया है। उनके विचार से काव्य की आत्मा औचित्य है और वह भी इसलिए कि औचित्य के बिना रस, अलंकार, ध्वनि आदि अंकिचित्कर हैं। वे काव्य के विधायक तत्त्व नहीं हो सकते। इन सबके प्रयोग में औचित्य है तो वे अपना अभीष्ट प्रभाव डालते हैं, अन्यथा नहीं। फलतः यही सिद्ध होता है कि जिन्हें काव्य का मूल समझा जाता है उनका भी मूल औचित्य है। इस विचार से कविवर क्षेमेन्द्र बड़े विवेकी सिद्ध होते हैं कि उन्होंने रसादि के महत्त्व का खण्डन नहीं किया उनके साथ औचित्य को अनुस्यूत किया है। उनकी प्रतिभा स्वीकारिणी है, तिरस्कारिणी नहीं।

कविवर क्षेमेन्द्र का औचित्य सिद्धान्त औरों की अपेक्षा अधिक निश्चयात्मक है। वह रसध्वनि, अलंकार, गुण, दोष आदि से भिन्न है, और साधारण बुद्धिगम्य है क्योंकि औचित्य का आधार जीवन का स्थूल दैनिक रूप है। जीवन में सबकी दृष्टि से जो उचित है वही काव्य में भी उचित है।[1] औचित्य के विषय में उनका कहना है कि "औचित्य ही रस का जीवनभूत प्राण है, वह 'काव्यास्वाद में चमत्कार धायक है।[2] काव्य में गुण-दोष की समस्या भी केवल

---

[1] उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् ।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।। -औचित्यविचारचर्चा, कारिका 6

[2] औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना।। -औचित्यविचारचर्चा, कारिका 3

औचित्य के आधार पर ही सुलझती है। जो उचित है वह गुण है, जो अनुचित है वह दोष है इसका अर्थ कदाचित् यह कभी नहीं समझना चाहिए कि औचित्य का अन्तर्भाव गुण-दोष में हो जाता है। औचित्य इससे पृथक् स्वतन्त्र तत्त्व है। समीक्षकों ने गुण-दोष की पहले-पहल कल्पना की तो वे अलंकार की भाँति स्वतन्त्र माने गये परन्तु बाद में जब यह अनुभव हुआ गुणत्व दोषत्व कोई स्थिर स्वभाव के 'गुण' नहीं हैं जो एकत्र गुण है वही अन्यत्र दोष बन जाता है। इसी प्रकार दोष गुण बन जाता है, फिर उसमें नित्यानित्य की अवस्था माननी पड़ी। उसमें भी 'इदमित्थं' कुछ नहीं कहा जा सकता अतः भोज की तो मान्यता यही है कि सब दोष उचित प्रयुक्त हों तो गुण बन जाते हैं।

उदाहरणतया 'च्युतसंस्कृति' नित्य दोष है, परन्तु भट्टिकाव्य ने सीता वियोग में विक्लवचेता राम के मुख से व्याकरणच्युत शब्दों का प्रयोग कराकर ही उनकी विक्षिप्तता की व्यञ्जना की है। इस तरह कहा जा सकता है कि गुण-दोष व्यवस्था के मूल में एकमात्र निर्णायक तत्त्व औचित्य ही है और वह इतना व्यापक तथा गम्भीर है कि उसके मान लेने पर इसकी संख्या बढ़ने एवं विभाग तथा उपविभाग करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

फलतः कह सकते हैं कि समीक्षा के क्षेत्र में क्षेमेन्द्र ने बहुत अभाव की पूर्ति की है। समीक्षकों की आदर्शमात्रगामिनी दृष्टि को व्यावहारिकता प्रदान की है, उसे समन्वय एवं सामञ्जस्य की ओर प्रेरित किया है। उन्होंने काव्य और जीवन को एक दूसरे के निकट किया है। समीक्षा जैसे-व्यक्तिपरक शास्त्र में विषयापेक्षता का पुट लगाकर उसे जीवन दिया है।

काव्य के मूल्यांकन में औचित्य का महत्त्व इन्होंने समझाया था ताकि उसे दूसरे आचार्य अनुभव कर सकें। उनकी दृष्टि उन्हीं पुराने मार्गों के महत्त्व में फिर भ्रान्त हो गयी। इसलिए यह तत्त्व उन्होंने गुण-दोष के अन्तर्भूत मान लिया। वास्तव में उससे कहीं व्यापक और कहीं गम्भीर यह पृथक् गुण था। आचार्य

क्षेमेन्द्र ने भी इसकी चर्चा मात्र की थी। इसकी विशद व्याख्या में यदि वे अन्य मतों का खण्डन करते हुए पाण्डित्यपूर्ण ढंग से विशाल ग्रन्थ लिखते तो सम्भवतः अर्वाचीन लोग इसके अनुवर्तक बनते और भारतीय समीक्षा का मार्ग बहुत परिवर्तित हो जाता। काव्य-कला आदर्श के दिव्य लोक से उतर कर यथार्थ जीवन के भूलोक में आ जाती। फिर भी क्षेमेन्द्र ने औचित्य की इस प्रकार व्याख्या की है कि काव्य के सभी तत्त्व गुण-दोष, अलंकार, ध्वनि, रस, वक्रता शब्द, अर्थ आदि उसमें समाते हैं। पाश्चात्त्य समीक्षकों में जैसे कलाकृतियों पर सर्वांगीण विचार करने की पद्धति है वैसी भारतीय समीक्षकों में नहीं है वे काव्य को खण्डशः पकड़ती है। एक विशेष दृष्टि से कृतियों की समीक्षा की जाती है। अलंकारवादी, चमत्कार तत्त्व पर विशेष दृष्टि रखता है। उसी भाव से काव्यजगती में प्रवेश करता है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने द्रष्टव्यता की एक कसौटी स्थिर की है। उस पर काव्य ही नहीं, सभी प्रकार की कलाओं को कसा जा सकता है, उसकी तह में यह मान्यता छिपी है कि काव्य या अन्य कोई कला जीवन का प्रतिबिम्ब है। उसके परखने का मानदण्ड जीवन से लेना चाहिए। कला कला के लिए नहीं, जीवन के लिए है, जीवन से प्रसूत है और जीवन द्वारा ही परीक्षणीय है। इस दृष्टि से क्षेमेन्द्र का कृतित्व और महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। उन्होंने समीक्षा की नई रेखा खींची है।

डॉ० सूर्यकान्त प्रभृति विद्वानों ने औचित्य को एक क्रान्तिकारी सिद्धांत की संज्ञा दी है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य के भेद-प्रभेदों का लक्षण करते हुए पूर्ववर्ती एवं समवर्ती कवियों की रचनाओं से अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों प्रकार के जो निदर्शन प्रस्तुत किये हैं, वह वस्तुतः एक प्रकार की व्यावहारिक समीक्षा है जिसे आज की उद्भावना माना जा रहा है। वहाँ उन्होंने इस व्यावहारिक समीक्षा पद्धति का अनुसरण करते हुए न केवल कालिदास एवं भवभूति प्रभृति रस-सिद्ध

महाकवियों की रचनाओं में उपलभ्यमान दोषों की उद्भावना की है। अपितु अपनी स्वयं की रचनाओं में भी अनौचित्यजन्य दोष प्रकाशित किये हैं। भट्टनायक ने रस के साधारणीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था जो इनके पूर्ववर्ती थे। भट्टनायक के भी पूर्ववर्ती आनन्दवर्धन ने औचित्य को रस का उपनिषद् कहा था। क्षेमेन्द्र ने औचित्य सिद्धान्त का प्रतिपादन कर विभावादि के साधारणीकरण के रहस्य का भी प्रकारान्तर से प्रतिपादन कर दिया कि औचित्य के आधार पर विभावादि का विनियोजन ही साधारणीकरण रहस्य है। इस प्रकार क्षेमेन्द्र का औचित्य सिद्धान्त न केवल श्रव्यकाव्य अपितु दृश्यकाव्य के प्रसंग में भी सुतरां विनियोज्य है जहाँ वस्तु एवं पात्र तथा अभिनय आदि की औचित्य के आधार पर व्यवस्था होने से ही कोई नाट्यकृति रसनिष्पादन में समर्थ होती है। पर क्षेमेन्द्र के औचित्य सिद्धान्त में सबसे बड़ा दोष यह है कि स्वयं में कोई काव्य-तत्त्व नहीं है क्योंकि गुण, अलङ्कार, रस की तरह औचित्य केवल काव्य का विषय न होकर सकल शास्त्र एवं इतिहास पुराण सबका विषय है। अतः यह काव्य का सर्वस्व या काव्य की आत्मा कैसे हो सकता है? वह काव्य आधायक तत्त्वों के काव्य में संग्रथन का सहायक बन सकता है, न कि काव्य का सर्वस्व। यही कारण है कि क्षेमेन्द्र द्वारा प्रतिपादित औचित्य-सिद्धान्त का व्यापक रूप में समर्थन किसी भी आचार्य ने नहीं किया, नहीं क्षेमेन्द्र का कोई ऐसा अनुयायी मिला जो औचित्य सिद्धान्त की भूमिका को सम्यक् रूप से उजागर करते हुए रस, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति एवं अलङ्कार सिद्धान्तों की तुलना में इसे प्रतिष्ठापित करे। फलतः क्षेमेन्द्र का औचित्य सिद्धान्त एक सम्प्रदाय का पूर्ण रूप धारण नहीं कर सका। वैसे औचित्स सिद्धान्त ध्वनि की तरह विवादास्पद भी नहीं रहा, न ही उसके विपरीत विसंवाद ही खड़े हुए। उसकी वास्तविकता पर किसी को सन्देह नहीं था। पर उसकी इतनी महती भूमिका कि वह रस ध्वनि एवं रीति की तरह काव्य की आत्मा का स्थान ग्रहण कर ले, स्वीकार्य नहीं हुई। आधुनिक विद्वान् श्री कप्पूस्वामी शास्त्री ने संस्कृत समीक्षा के सिद्धान्तों की समालोचना

करते हुए बताया है कि काव्य के सभी सिद्धान्त चाहे वह रस हो, गुण हो या अलंकार, वक्रोक्ति या रीति हो एक ऐसे वृत्त के भीतर आते हैं, जिसकी परिधि औचित्य ही है।

क्षेमेन्द्र की काव्यशास्त्रीय तीसरी उपलब्ध कृति 'सुवृत्ततिलक' है जिसका विषय छन्दः शास्त्र है यहाँ भी क्षेमेन्द्र की मौलिकता पदे-पदे परिलक्षणीय है। यहाँ क्षेमेन्द्र का लक्ष्य संस्कृत छन्दों के अधिकाधिक प्रकारों का लक्षण एवं उदाहरणात्मक विवेचन प्रस्तुत करना नहीं, अपितु उन्होंने कुल सत्ताईस छन्दों को लेकर उनके प्रयोग में पटुता के आधान के प्रकार का उन्मेष किया हैं उनकी सूक्ष्मेक्षिका प्रतिभा ने इन छन्दों की रचना में उत्कर्ष का आधान करने वाले वर्णों, पदों एवं भावों को पहचाना है जिसका निरूपण उन्होंने इस कृति में किया है। क्षेमेन्द्र की यह पकड़ कि कौन सा छन्द किस प्रकार के भाव की अभिव्यक्ति के लिए समुपयुक्त होता है, बड़ी पैनी है। उन्होंने संस्कृत के कवियों की रचनाओं से उद्धरण दे-देकर अपनी बात को समझाया है और अन्तर को स्पष्ट किया है यही नहीं उन्होंने वाल्मीकि प्रभृति कवियों के प्रिय छन्दों का भी विवरण दिया है। जो निस्सन्देह सर्वग्राह्य है। क्षेमेन्द्र की दृष्टि में काव्य का बाह्यस्वरूप उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना उसका आन्तरिक स्वरूप भाव। छन्द ही कविता का बाह्यस्वरूप अर्थात् शरीर है, जिसमें सौन्दर्य का आधान कवि अपनी प्रतिभा से करता हैं इस प्रकार छन्दोविषयक निरूपण में भी क्षेमेन्द्र का योगदान मौलिक होने के साथ-साथ बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

क्षेमेन्द्र की साहित्यशास्त्रविषयक इन तीनों ही कृतियों का महत्त्व एक और दृष्टि से विशेष है कि इनमें उनके काल तक उपलभ्यमान संस्कृत के प्रायः सभी कवियों की रचनाओं का उद्धरण नामतः हुआ है इनमें से अधिकांश कवि ऐसे हैं जिनको हम केवल नाम से ही जानते हैं। उनकी कृतियों आज उपलब्ध नहीं है

पर क्षेमेन्द्र की इन कृतियों के उद्धरण से हम उनकी भी रचना के प्रकार से परिचित हो जाते हैं।

क्षेमेन्द्रकृत संस्कृत-साहित्य के प्रति योगदान का मूल्यांकन उनकी दो और कृतियों की चर्चा किये बिना पूर्ण नहीं हो सकता। वे हैं 'नृपावली' और 'लोकप्रकाश'। नृपावली नाम की उनकी कृति इतिहोसपरक थी जिसमें कश्मीर घाटी पर शासन करने वाले राजाओ का निरूपण था पर दुर्भाग्यवश यह कृति आज उपलब्ध नहीं है, न ही क्षेमेन्द्र की अन्य कृतियों में उसका कहीं उल्लेख हुआ है अपितु कल्हण ने राजतरङ्गिणी के उपोद्धात में क्षेमेन्द्र की इस कृति का उल्लेख किया हैं इसमें निरूपित तथ्य ऐतिहासिक दृष्टि कितनी महत्त्वपूर्ण थी इसका विवेचन तो तभी हो सकता था जब कृति हमारे समक्ष उपस्थित होती पर इसी रचना मात्र से यह तो स्पष्ट ही है कि क्षेमेन्द्र की प्रतिभा बहुमुखी थी तथा इतिहास के विषय में भी उनकी गति अबाध थी।

दूसरी कृति 'लोकप्रकाश' कोशपरक रचना हैं हिन्दुओं के दैनन्दिन के जीवन के क्रियाकलापों का तत्-तत् शास्त्रों एवं स्मृतिपुराणादि से संग्रह कर एतद्विषयक एक विश्वकोष सा प्रस्तुत कर दिया हैं इसमें राजकर्मचारियों की उपाधियों उनकी इतिकर्तव्यताओं तथा शासन की दृष्टि से देश के विविध विभागों के लिए प्रयुक्त पदों का संकलन है साथ ही यह तत्कालीन प्रयुज्यमान वैज्ञानिक प्राविधिक पदावली का भी संग्रह हैं इसप्रकार हम देखते हैं कि क्षेमेन्द्र की कृतियों में हम को विपुल सामग्री उपलब्ध होती है। सामान्यतया भारत एवं विशेष रूप से कश्मीर की सामाजिक धार्मिक एवं राजनैतिक अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डालती है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने कथा-साहित्यविषयक मञ्जरीत्रय- 'बृहत्कथामञ्जरी', 'रामायणमञ्जरी' एवं 'भारतमञ्जरी' की अद्भुत रचना की है इन तीनों मञ्जरियों में रामकथा, महाभारत कथा, सोढ्लक कविकी एवं सोमदेव की कथाओं के आधार

पर प्राचीन कथाओं का संग्रह किया है। आलोचक का कहना है कि "कविवर क्षेमेन्द्र ने महाभारत की प्रख्यात कथाओं का संक्षेप (1037 ई0) 'भारतमञ्जरी' के नाम से रचे, इस विशाल महाकाव्य में 18 पर्व हैं। इस मञ्जरी काव्य में अनेक घटनाओं को जोड़ा गया है तथा इसमें विभिन्न घटनाओं को रोचकत्व की दृष्टि से आगे पीछे भी कर लिया गया है। इस मञ्जरी काव्य की कथावस्तु अत्यधिक विस्तृत होने के कारण कवि क्षेमेन्द्र अपनी अलौकिक प्रतिभा को प्रकट नहीं कर पाये, किन्तु सरल शैली में वर्णित यह मञ्जरी काव्य उनकी विद्वत्ता को प्रकट करता है।"[1]

कविवर क्षेमेन्द्र का एक अन्य बृहद् काव्य 'रामायणमञ्जरी' काव्य है, जो रामायण की कथा पर आधारित है तथा सात काण्डों में विभाजित है। रामायणमञ्जरी में भी कुछ घटनाओं को आगे पीछे किया गया है। इस काव्य में अरण्य काण्ड तथा किष्किन्धा काण्ड में कुछ ऋतुओं का वर्णन है, जैसे सीता से वियुक्त राम को प्रकृति चिढ़ाती सी प्रतीत होती है, पुष्पित सिन्धुवार श्यामा से मिलने को इच्छुक हैं। चन्द्रमा चाँदनी से युक्त है, लताएँ शालवृक्ष का आलिङ्गन कर रही हैं, नदी, पर्वत का अलिङ्गन कर रही है। वियोगी राम को यह सुन्दर वृक्ष विष-वृक्ष से दिखलाई पड़ रहे हैं। वर्षा और शरद् ऋतु का वर्णन भी हृदयग्राही है। जल-बिन्दुओं को वहन करता हुआ विरह-संताप सूचक पवन चल रहा है, मानो राम की आहें हों जो करुणा के अश्रुओं से भीगी हैं। इन दोनों ही काव्यों का सार संक्षेप इतनी सुन्दरता और विवेक से किया गया है कि हमें मनोरञ्जन के साथ ही साथ मूलपाठ के निर्णय करने में भी इससे पर्याप्त सहायता मिल जाती है। इन काव्यों की शैली प्रसादमयी, पदविन्यास कोमल तथा रस पेशल, अर्थ योजना रुचिकर तथा कल्पनापूर्ण है।

---

1 आचार्य क्षेमेन्द्र - मनोहरलाल, गौड़, पृष्ठ संख्या 38

कविवर क्षेमेन्द्र ने गुणाढ्यकृत बृहत्कथा के आधार पर 'बृहत्कथामञ्जरी' की रचना की है, जो 18 लम्बकों में वर्णित है। बृहत्कथामञ्जरी का नायक वत्सराज उदयन, नरवाहन दत्त है, किन्तु कवि ने मुख्य कथा के साथ-साथ अनेक अवान्तर कथाओं की सृष्टि कर इस ग्रन्थ को विशिष्टता प्रदान की है। 'वेतालपञ्चविंशति' भी इसी के अन्तर्गत है। इसमें वर्णित लोक कथाओं का उद्देश्य ही तत्कालीन समाज को स्वार्थ की भावना से मुक्त कराना और शिष्टता की ओर अग्रसर करना है। इनकी शैली में अद्भुतता है, चमत्कार है, यद्यपि कथाओं की रोचकता का श्रेय तो गुणाढ्य को ही जाता है, लेकिन वर्णन शैली का वैशिष्ट्य कविवर क्षेमेन्द्र का अपना है। कवि की मञ्जरी में उपमाओं की भरमार है।

कविवर क्षेमेन्द्र की अन्य विशाल कलात्मक कृति है "बोधिसत्त्वावदानकल्पलता" इसमें भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बद्धपारमिता सूचक आख्यानों का पद्यबद्ध वर्णन है अवदान का तात्पर्य है- शुभ्र चरित। इन कथाओं में महायान की षट्पारमिताओं अर्थात् पूर्णताओं का निर्देश है, जिनकी प्राप्ति पर ही बोधिसत्त्व की पदवी निर्भर है। इस कल्पलता में 108 पल्लव (अध्याय) हैं, जिनमें अन्तिम पल्लव का निर्माण पिता की मृत्यु हो जाने पर क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने किया था। क्षेमेन्द्र की 'अवदानकल्पलता' प्रसादमयी शैली में आख्यानों का बड़ा ही रुचिकर वर्णन प्रस्तुत करती है शैली के निर्देशन के लिए 'अवदानकल्पलता' में एक श्लोक का उल्लेख प्राप्त होता है।"[1]

---

[1] सच्छायः स्थिरधर्ममूलवलयः पुण्यालवालस्थितिः
धीर्विद्या करुणाम्भसा हि विलसद्विस्तीर्णशाखान्वितः।
सन्तोषोज्ज्वलपल्लवः शुचियशः पुष्पः सदा सत्फलः
सर्वाशापरिपूरको विजयते श्रीबुद्धकल्पद्रुमः।। -अवदानकल्पलता 70/23

'दशावतारचरित' कविवर क्षेमेन्द्र की अन्तिम रचना है। इस स्वतन्त्र प्रौढ महाकाव्य में विष्णु के दस अवतारों का बड़ा ही रोचक विस्तृत वर्णन किया गया है। यह काव्य उनकी विष्णु के प्रति भक्ति को प्रकट करता है। इस काव्य में दस सर्गों में दस अवतारों मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि का वर्णन किया गया है। इस काव्य की कथाएँ पुराणों से ली गयी हैं। इन काव्यों में क्षेमेन्द्र ने कहीं व्यङ्ग्य का पुट दिया है तो कहीं तात्कालिक समाज का अंकन भी कर दिया है। इसकी भाषा बड़ी ही मीठी, सरल, सरस तथा सुबोध है, न तो कहीं पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है और न ही कहीं शब्द में अनावश्यक चमत्कार लाने का प्रयास किया गया है।"[1]

वास्तव में देखा जाय तो कविवर क्षेमेन्द्र विदग्धों और पण्डितों के कवि न होकर जनता के कवि हैं। उनकी रचनाओं का उद्देश्य ही मनोरञ्जन के साथ-साथ जनता का चरित्र निर्माण करना है। कहीं-कहीं पर तो इनकी कथाओं में नवयुवकों के लिए धार्मिक और नैतिक उपदेशों का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन है। इनका 'दशावतारचरित' भक्तिप्रधान रचना होने पर भी तात्कालिक समाज की विषमताओं का चित्र प्रस्तुत करता है, वास्तव में कश्मीर की वर्तमान स्थिति में भी क्षेमेन्द्र की काव्य रचना सार्थक सिद्ध हो रही है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने संस्कृत-साहित्य की अनेक दिशाओं में कार्य किया है-

(1) हम संक्षेपतः कह सकते हैं कि उन्होंने इतिहास की दिशा में भी अपना योगदान किया था। राजतरंगिणीकार कल्हण ने सूचना दी है कि उन्होंने राजाओं की सूची "नृपावली" पुस्तक लिखी थी।

---

[1] संस्कृत-काव्यशास्त्र का इतिहास- पी. वी. काणे, पृष्ठ संख्या 39

(2) दामोदरगुप्त की परम्परा में व्यङ्ग्य काव्य (Satirical poetry) की दिशा में स्मरणीय हैं। उन्होंने अपनी 'कलाविलास' रचना में विभिन्न व्यवसायों के कपटपूर्ण व्यवहारों पर व्यङ्ग्य कसे हैं।

(3) उन्होंने स्वतन्त्र काव्य, अलंकारशास्त्र, छन्दःशास्त्र, कामशास्त्र, तथा रामायण, महाभारत, बृहत्कथा, बौद्धावदान आदि का कर्तृत्व प्रस्तुत किया है। बाणकृत कादम्बरी तथा वात्स्यायनकृत कामसूत्र के सूक्ष्म रूप पद्यों में किये हैं।

क्षेमेन्द्र के अतिरिक्त संस्कृत का कोई अन्य कवि फुटकल काव्य का इतना बड़ा प्रणेता नहीं हुआ है। ज्ञान की विविधता एवं बहुज्ञता ने इनकी शैली में लौकिक सजीवता ला दी है। इनकी मौलिकता के दर्शन उन बड़ी-बड़ी रचनाओं में दिखलाई नहीं पड़ते हैं, जिनमें कवि ने परिश्रम किया है, बल्कि छोटी-छोटी सहज रूप में लिखी गयी कृतियों में कविता का श्रेष्ठ रूप व्यक्त हुआ है। कवि प्रकृत्या लौकिक है, लोक को काव्य में उतार ने की प्रज्ञा उसमें है। उनकी 'समयमातृका' में कुरूप प्रेमियों पर व्यङ्ग्य कसने, वेश्या के कपटपूर्ण व्यवहारों का चित्र खींचने तथा वेश्या जीवन का यथार्थ रूप दिखलाने में कवि पूर्णतः सफल हैं तथा अनेक अर्थों में भौतिक दिखलाई पड़ते हैं। इनकी शैली में तीक्ष्णता व्यङ्ग्यप्रधानता एवं आढ्यता है। हास्यव्यंजक दृश्य, घटनाओं एवं व्यक्तियों के वर्णन के लिए इनकी प्रतिभा अत्यन्त सक्षम है। लोकव्यवहार में सफलता प्राप्त करने की दिशा में भी कवि की बहुज्ञता ने कार्य किया है। 'सेव्यसेवकोपदेश', 'चारुचर्या', 'चतुर्वर्गसंग्रह' ये तीन रचनाएँ इसी दिशा में प्रयत्न हैं, इनमें कवि का लोकजीवन का सूक्ष्म निरीक्षण अत्यन्त प्रशंसनीय है। मानव की दुर्बलताओं को कवि ने व्यङ्ग्य का विषय बनाया है। उन्होंने अपनी व्यङ्ग्यप्रधान रचना 'दर्पदलन' में मनुष्य के दर्प पर व्यङ्ग्य किये हैं। दर्प की उत्पत्ति, जन्म, धन, विद्या, सौन्दर्य, वीरत्व, दान और तन आदि से होती है।

पर वे सभी विषय विवेकी के लिए उपसहनीय हैं। कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने 'कलाविलास' में वैद्य, वैश्य, व्यापारी, सुनार, गवैया, शेखीखोर, भिखारी, साधु आदि के दाम्भिक जीवन पर व्यङ्ग्य के छीटें छोड़े हैं।

'देशापदेश', एवं 'नर्ममाला' में काश्मीर के देशीय जीवन का, वहाँ के अत्याचार का, दाम्भिक व्यवहार का और व्यभिचार का चित्रण देखने को प्राप्त होता है। देशोपदेश रचना में, हवा में किले बनाने वाले खल, दीन, मलिन, लालची, कृपण, दूसरों के हाथों में खेलने वाली बुद्धिशून्य वेश्या, सर्पिणीतुल्य कुटिल कुट्टनी, भड़कीले वेश में बन्दर जैसा प्रतीत होने वाला विट, दुर्बल बंगाली बाबू जो काश्मीर की जलवायु के प्रभाव से दुःसाहसी बन गया है, नवविवाहिता, वृद्ध पुरुष, पतित शैव, धूर्त कायस्थ और उसकी चंचलचित्त पत्नी, चालाक व्यापारी, शेखीखोर, रासायनिक, मिथ्यातपस्वी, अहंकारी वैयाकरण आदि के हृदयग्राही रेखाचित्र खींचे गये हैं। इनमें काश्मीर में साहित्य के द्वारा राज्य में फैलाये गये व्यभिचार का विशेष वर्णन हुआ है। एक ही कायस्थ अपनी चालाकी के बल से 'गृहत्कृत्याधिपति', परिपालक, (प्रान्त का शासक), लेखोपाध्याय, गंजदिविर (chief Accountant) तथा नियोगी आदि बन बैठता है। इन रचनाओं में एक ओर कश्मीर के स्थानीय जीवन का चित्रण है तथा दूसरी ओर जीवन के साधारण रूप दम्भ का भी उद्घाटन किया है। यहाँ भी कवि के व्यङ्ग्य कसने का गुण प्रमुख प्रतीत होता है।

समाज के दैनिक जीवन का चित्रण जल्हण (12 वीं शताब्दी) ने अपने 'मुग्धोपदेश' ग्रन्थ में किया है, परन्तु वहाँ कवि गम्भीर एवं नैतिक बना रहता है, विषय के उचित निम्न स्तर पर उतरकर उसका यथार्थ चित्रण नहीं करता। इसी प्रकार का दूसरा प्रयास दाक्षिणात्य कवि 'नीलकण्ठ दीक्षित' का 'कलिविडम्बना' है। इसमें भी शिष्टता एवं नैतिकता पर विशेष दृष्टि है, इसमें प्रतिपाद्य का यथार्थ चित्रण नहीं हुआ इसमें जितनी व्यापकता कविवर क्षेमेन्द्र को प्राप्त हुई है, उतनी

अन्य किसी कवि को नहीं। क्षेमेन्द्र के 'लघुकलेवरवलित' काव्य 'चारुचर्याशतक' में जितना लोक व्यवहार के लिए अपेक्षित करणीय कृत्यों का उल्लेख प्राप्त होता है, ऐसा अन्यत्र दुर्लभ है तथा नितान्त नैसर्गिक उदाहरणों से परिपुष्ट करके उन्हें प्रस्तुत किया है। वे भारतीय संस्कृति के संदेशवाहक तथा लोक व्यवहार के लिए अपरिहार्य हैं। इन्हीं सन्देशों से प्रभावित होकर प्रो0 आर्येन्द्र शर्मा ने "Minor Works of Ksemendra" शीर्षक 'काव्य संकलन' की भूमिका में उचित ही लिखा है-

"This small poem is didactic in nature. Its main purpose being Instruction in law and polity and dipicting as to how a house holder should follow the daily routine the most pleasest and attractive manner."[1]

पुरुषार्थचतुष्ट्य के क्षेत्र में कविवर क्षेमेन्द्र की महत्त्वपूर्ण देन है। उन्होंने अपने 'चारुचयशितक' लघुकाव्य में भारतीय संस्कृति के धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्ग की साधना का उल्लेख किया है।[2] क्षेमेन्द्र ने अपने अन्य लघुकाव्य 'चतुर्वर्गसंग्रह' में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के स्वरूप का व्यापक विवचेन किया है। इन चारों पुरुषार्थों का वास्तविक रूप क्या है इस विषय का प्रतिपादन कवि ने उपदेशात्मक शैली में किया हैं वस्तुतः इस तरह पुरुषार्थ-चतुष्टय का विधिवत् विवेचन करने वाले कवियों में कविवर क्षेमेन्द्र के इस विवेचन से विविध शास्त्रों में प्रतिपादित पुरुषार्थ-चतुष्टय का जटिल स्वरूप यहाँ सरलीकृत रूप में उपस्थित हो जाता हैं उनका यह पुरुषार्थ-चुष्टय का विवेचन न तो शास्त्रीय सैद्धान्तिक रूप में है और न काव्यगत अलङ्कारमय रूप

---

1 **Minor works of Ksemendra, Introduction p.5,**

2 साधयेद्धर्मकामार्थान् परस्परमबाधकान् ।
त्रिवर्गसाधना भूपा बभूवुः सगरादयः।। -चारुचर्या, श्लोक 69

में है, अपितु इसका स्वरूप सूक्त्यात्मक एवं उपदेशपरक है। यही क्षेमेन्द्र का इस क्षेत्र में विशिष्ट योगदान है।

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'चारुचर्या' में सदैव सत्संगति का निर्देश दिया गया है, साथ ही सत्संगति से ही विभीषण को विशाल राज्य प्राप्त होने का उल्लेख किया है[1] जहाँ एक ओर चारुचर्या में धर्म की साधना का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि कष्ट पड़ने पर भी मानव को धर्म की मर्यादा का परित्याग नहीं करना चाहिए तथा हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल शरण को स्वीकार कर लिया परन्तु धर्म नहीं छोड़ा।[2] जहाँ एक ओर काम का उल्लेख करते हुए परदारेच्छा न करने का निर्देश प्रतिपादित किया है, तथा साथ ही साथ रावण द्वारा सीता के अपहरण करने के परिणाम का उदाहरण देकर उसे पुष्ट किया है।[3] दानशीलता के विषय में सात्विक भावना हृदय में रखकर ही दान क्रिया करने का निर्देश दिया गया है तथा साथ ही पश्चात्ताप से दूषित दान कभी न देने का भी निर्देश किया गया है।[4] इसी प्रकार 'चारुचर्या' में पुरुषार्थचतुष्टय का निर्देश देकर आचार्य क्षेमेन्द्र ने भारतीय संस्कृति के मोक्ष मार्ग का आदर्श सन्देश प्रदान किया है।

भारतीय संस्कृति में नित्यनैमित्तिक क्रियाओं का अपना विशिष्ट महत्त्व है मानव जीवन यात्रा के साफल्य के लिए मानसी क्रियाओं के साथ शारीरिक

---

[1] कुर्वीत संगतं सद्भिर्नासद्भिर्गुणवर्जितैः।
प्राप राघवसंगत्या प्राज्यं राज्यं विभीषणः।। -चारुचर्या, श्लोक 15

[2] न त्यजेद् धर्ममर्यादामपि क्लेशदशां श्रितः।
हरिश्चन्द्रो हि धर्मार्थी सेहे चण्डालदासताम् ।। चारुचर्या, श्लोक 13

[3] न कुर्यात् परदारेच्छां विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत् ।
हतो दशास्यः सीतार्थे हतः पत्न्या विदूरथः। -वही, श्लोक 10

[4] दानं सत्त्वमितं दद्यान्न पश्चात्तापदूषितम् ।
बलिनात्मार्पितो बन्धे दानशेषस्य शुद्धये।। - वही, श्लोक 18

क्रियाओं की पावनता भी अपरिहार्य होती है 'चारुचर्याशतक' में नित्यकर्म की शारीरिक क्रियाओं का उल्लेख स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। प्रातः जागरण स्नानादि से कलेवर का पावनत्व तथा चरण-प्रक्षालन आदि का नित्यकर्म में पावनत्व प्रतिपादित किया गया है।[1]

करणीय कर्म असंग्रह, अक्रोध, अद्वेष, सेवा, महेश, अर्चन, श्राद्ध, क्षमा, दान, धैर्यधारण, शत्रु को छोटा न समझना तथा सत्कर्म कर यशःकाय से जीवित रहना, इत्यादि कर्म आचार्य क्षेमेन्द्र ने करणीय बताये हैं, जो भारतीय संस्कृति के आचाय-विचार सम्मत कर्म-व्यापार के अनुकूल हैं।

कश्मीरी विद्वान् आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने छोटे से ग्रन्थ 'चारुचर्या ' में भारतीय संस्कृति के आदर्शों की जो स्थापना की है वह स्तुत्य एवं अमूल्य देन हैं रामायण, पुराण तथा महाभारत आदि की 18 कथाओं की ओर संकेत कर उन्होंने सन्देश इतने संक्षिप्त रूप में दिया है। गागर में सागर भरने की ऐसी प्रवृत्ति संस्कृत-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।[2]

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि संस्कृत-साहित्य को क्षेमेन्द्र का योगदान अतिमहत्त्वपूर्ण है क्षेमेन्द्र ने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं को कुछ न कुछ दिया है तथा उनको नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया हैं उनकी साहित्य-शास्त्रीय तीनों कृतियों में लगभग साठ कवि समुद्धृत हैं तथा उनके द्वारा रचित 'बृहत्कथामञ्जरी' सर्वथा अनुपलब्ध गुणाढ्य की बृहत्कथा को हमारे सामने समुपस्थापित करती है। संक्षेप में क्षेमेन्द्र के द्वारा संस्कृत-साहित्य के प्रति किये गये योगदान का यही मूल्यांकन है।

---

1 जपमोहार्चनं कुर्यात् सुधौतचरणः शुचिः।
पादशौचविहीनं हि प्रविवेश नलं कलिः।। -चारुचर्या श्लोक 8

2 'Minor works of Ksemendra' Introduction p.8

(ii) क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों का सांस्कृतिक मूल्यांकन

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में तात्कालिक सांस्कृतिक पहलू पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तात्कालिक अवस्था में वर्ण-व्यवस्था विद्यमान थी तथा यह व्यवस्था पैतृक परम्परा से संक्रान्त होती रही है साथ ही साथ कुलीनता भी पैतृक परम्परा से ही जानी जाती थी।[1] यद्यपि उत्तम कर्मों द्वारा क्षेत्रज भी समाज में सम्मान के पात्र थे। तात्कालिक समय में सम्पत्ति का संक्रमण भी पैतृक परम्परा के अनुसार होता रहा है।[2]

कविवर क्षेमेन्द्र रचित नीतिकल्पतरु में हम अन्य अनेक परम्पराओं का भी उल्लेख पाते हैं- जैसे जामाता का श्वसुर गृह में सम्मान, मृतक श्राद्ध में ब्राह्मणों का भोजन तथा ब्राह्मण भोजन में मिष्ठान आदि का प्राधान्य।[3] तात्कालिक समाज में स्त्रियों का प्रमुख स्थान था। स्त्रियों में भी विभिन्न उत्सवों को मनाये जाने की परम्परा का उल्लेख प्राप्त होता है। स्त्रियाँ 'रजस्वलोत्सव' मनाती थीं।[4] शिशु जन्म के अवसर पर भी उत्सव मनाया जाता था तथा बच्चों के जन्म दिन पर प्रतिवर्ष उत्सव मनाये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[5] संस्कारों का हिन्दू समाज

---

[1] क. एकश्वेतपूर्वपुरुषः कुले यज्वा बहुश्रुतः।
अपरपापकृन्मूर्खः कुलं कस्यानुवर्तताम् ।। -दर्पलदन, 1/9

ख. रौद्रः शूद्रेण जातोऽयम् । -दर्पदलन, 1/54

ग. एकबीजप्रजातानां भवत्यवनतं शिरः। - दर्पदलन 1/56

[2] तत्सूनोश्चन्दनस्याथ शेषार्थे नापि भूयसा।
बभूव भूरिसंभारभोगव्यय महोत्सवः।। - दर्पदलन, 2/73

[3] नीतिकल्पतरु, श्लोक 25-26

[4] रजस्वलोत्सवे वध्वाः पूर्वजारसमागमात् ।
प्रातः क्षिपति सिन्दूरं वृद्धस्य वदने जनः।। - देशोपदेश 7/16

[5] ब्रूते प्रभावे मिथ्यैवदासी जन्मदिनोत्सवम् ।
भुक्त्यैव बन्धुनिधनं शिरः शूलं करोति वा।। - देशोपदेश 3/29

में अत्यधिक महत्त्व था। विवाहादि शुभ कर्मों में शुभ महूर्त्त का विचार किया जाता था। बाल विवाह के प्रचलन का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[1] लोगों में संस्कारों के प्रति गहन प्रभाव होने के कारण सभी जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रचलित संस्कारों का पालन अनिवार्य रूप से करते थे। शिशु जन्म के पश्चात् छठा दिन महत्त्वपूर्ण माना जाता था। इस दिन स्त्रियाँ षष्ठी जागरण करती थीं तथा बच्चों का चूड़ाकरण संस्कार भी होता था।[2] मृतकोद्धार हेतु लोग मृतक कर्म भी करते थे तथा 'मृतकभोज' के आयोजन का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[3] जिन ब्राह्मणों को विशेष रूप से भोजन कराया जाता था इसके अतिरिक्त पितरों के उद्धार हेतु पितृ दिन[4] पर श्राद्ध कर्म किये जाते थे।[5]

तात्कालिक कश्मीर में शल्य चिकित्सा का काम नापितों पर होता था। क्षेमेन्द्र ने उनकी चिकित्सा की हँसी उड़ाई हैं वह दुर्लेपों के द्वारा छोटे-मोटे फोड़ों को थाली के बराबर कर देता था। नाक जोड़ने के लिए वह सिलने का कार्य करता था।[6] आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी का यह एक बहुत पुराना उल्लेख हैं

---

[1] पूर्णाः कदर्पवणिजां निःसम्भोगा निधानधनकुम्भाः।
सीदन्ति कुचतटा इव दुःखफला बालविधवानाम् ।। -कलाविलास 2/18

[2] अद्य वयस्यासूनोश्चूडाकरणं मृगाङ्कदत्तस्य।
इत्यादिभिरपदेशैः सा प्रयासौ कामिनां भवनम् ।। -समयमातृका, 8/120

[3] उदञ्चदगुरुदण्डस्य चण्डस्य ब्रह्मचारिणः।
रण्डा ददादि सततं श्रद्धया मृतभोजनम् ।। -नर्ममाला 3रु37

[4] पितुः पितृदिने लुब्धो देशोत्सवदिनेषु च।
मृतकशौचमाचष्टे ज्वरव्याजं करोति वा।। - देशोपदेश 2/17

[5] अत्रान्तरे चन्दनस्य पितुः श्राद्धदिने महान् ।
बभूवार्थिसमूहान्नदाने कलकलस्वनः।। - दर्पदलन 2/84

[6] कङ्केन जन्मसुहृदा त्वदर्थमहमर्थिता।
स्यूतेयं मे विटच्छिन्ना नासा येन पुनः पुनः।। -समयमातृका, 4/16

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में अनेक रोगों के भी नाम आये हैं। त्रिदोष से रोगी अपनी चेतना खो देता था।[1] छोटे-छोटे बच्चों के ज्वर आने पर धाय के उपवास करने के विधान का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें धाय को बचाकर पानी पीने, अन्न न खाने और आँवला का रस पीने की व्यवस्था थी।[2] रक्त-छाया, पाण्डुमुख प्रसवों से कृशता[3] अधिक खाने से विषूचिका[4] अतिसार शोथ[5] इत्यादि रोगों के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

संस्कृति का प्रमुख आधार शिक्षा का तात्कालिक स्वरूप भी जान लेना अपेक्षित है। कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों से तात्कालिक शिक्षा पर भी कुछ प्रकाश पड़ता हैं। उस समय के मठ ही एकमात्र शिक्षा के केन्द्र थे। काश्मीर और वाराणसी में अनेक मठ थे, जिनमें विद्यार्थियों के पठन-पाठन का प्रबन्ध रहता था। सम्भवतः देश-विदेश के छात्र कश्मीर में शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। क्षेमेन्द्र ने इन देशी छात्रों (मठदेशिक) की चरित्रहीनता पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। तात्कालिक छात्रों की दशा शोचनीय थी। वे वेश्यालयों में मरने-मारने को तैयार रहते थे।[6] छात्रों को अंगुलियाँ नचाने का गर्व होता था।[7]

---

1 समयमातृका 1/30

2 पानीयं विनिवारणीयमहितं भक्तस्य वार्तैव का
द्वित्राण्येव दिनानि धात्रिदयया धात्रीरसः पीयताम् ।
जावत्येष शिशुर्भजस्व विविधैरस्योत्सवैः संपदं
वैद्येनेति निवेद्यमानमकरोत् सा सर्वमेवाश्रुतम् ।। -समयमातृका 2/72

3 -देशोपदेश 3/38

4 -देशोपदेश 4/23

5 -देशोपदेश 4/28

6 -समयमातृका 3/15

7 स्कन्धतटे सुभटनां ह्रदये वणिजां करेषु शिल्पवताम् ।
गलपात्राङ्गुलिभङ्गे छात्राणां स्तनतटेषु तरुवीनाम् ।। - कलाविलास 6/31

गौड छात्र की कटु आलोचना करते हुए कविवर क्षेमेन्द्र ने कहा है कि वह मांस, मदिरा द्यूत एवं वेश्या के ही चिन्तन में हमेशा रहता था छुआ-छूत का दम्भ करने वाली वह वेश्या का उच्छिष्ट भोजन ग्रहण करने में संकोच नहीं करता था। व्रत का पालन वह मद्य मांस से करता था।[1] 'नर्ममाला' में भी विदेशी छात्रों की मूर्खता एवं चरित्रहीनता की बहुत हँसी उड़ाई गयी हैं। मठदैशिक चन्दन का लम्बा तिलक लगता था। तथा बड़ा जूड़ा बाँधता था और चरमराते हुए जूते पहनता था। संयोगवश वह नियोगी के यहाँ लड़कों को पढ़ाने के लिए मासिक वेतन पर शिक्षक बन बैठा तथा उस घर की स्त्रियों को भी बिगाड़ दिया तथा छात्रों के द्वारा उन्हें कुछ पूछने पर उन्हें गाली देता था।[2] उस समय की सामूहिक शिक्षा दिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[3] उस काल की ज्योतिष एवं वैद्यक शास्त्रों से सम्बन्धित भी शिक्षा दिये जाने का उल्लेख प्राप्त है। ज्योतिष शास्त्र विदों का उल्लेख है जो आकाशीय नक्षत्र ज्ञान से भली भाँति परिचित थे।[4] कविवर क्षेमेन्द्र ने ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करने वाली संग्रह पत्रिका एवं नक्षत्र पत्रिका का भी उल्लेख किया है।[5]

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में तात्कालिक कश्मीर की कला पर भी प्रकाश डाला गया है। संस्कृत नाटकों और काव्य-साहित्य में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनसे भारतीयों की संगीतशास्त्र के प्रति आस्था तथा गायनाचार्यों की अपनी कला में दक्षता का पता चलता है, किन्तु विभिन्न कलाओं से युक्त विभिन्न वर्ग के

---

1 देशोपदेश, छठा उपदेश

2 नर्ममाला 2/33-45

3 समयमातृका 8/119-120

4 तव वर्षत्रयीमध्ये कश्चिद् वित्तव्ययो भवेत् ।
ज्वरश्च नेत्रपीड़ा चलाभांशोऽप्यविचिन्तितः।। -नर्ममाला 2/84

5 नक्षत्रपत्रिका खड्गपत्रं लोहितकम्बलः।
पवित्रसूत्रकं तन्त्री सूची कलमकर्तरी।। - नर्ममाला 1/111

लोग दुष्कर्मों में लिप्त होकर तथा भोग-विलास से युक्त होकर कला का दुरुपयोग करते थे। क्षेमेन्द्र इन गायकादि से पूर्ण प्रसन्न नहीं थे। क्षेमेन्द्र ने 'कलाविलास' के सातवें सर्ग में गायकों की हँसी उड़ाई हैं वे अपने चिकने गले से लोगों को ठगते हैं। आठवें सर्ग में स्वर्णकारों की कलाओं का विस्तृत वर्णन किया है और इस सम्बन्ध में उन्होंने उनके स्वर्ण हरण, माप-तौल में कम-ज्यादा, तुला, फूत्कार, अग्निपाक इत्यादि का वर्णन किया है। रोगों का विभाग उन्होंने रंग, धातुओं, प्रकृति, नक्षत्र, मनुष्य अवयव, पशु-पक्षी, यक्ष-राक्षस एवं गायकों का एक सुर से गाना कुस्थान में लक्ष्मी के रोने की भाँति बताया गया है।[1] म्लेच्छ गायकों से वेश्याएँ फीस लेने में डरती थी।[2] क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'देशोपदेश' में एक शिष्य की हँसी उड़ती गई है जो कन्धे पर तुम्बवीणा लेकर अपने घर्घर गीतों से, आये हुए देवताओं को भगा देता है।[3] क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'कलाविलास' में अपने ढंग से वेश्याओं की चौंसठ कलाएँ गिनायी गई हैं। जिनमें वेश्या व्यवहार, गीत, नृत्य, वक्रवीक्षण आदि हैं।[4] इन कलाओं के अध्ययन स्पष्ट होता है कि वेश्याओं की कलाएँ, उनकी मानसिक विचारधारा ठगने की द्योतक हैं। वास्तविक कलाओं में तो केवल प्रसाधन, काम परिज्ञान, अभ्यंग वश्यौषधियों का ज्ञान इत्यादि दीपदर्शन कला से वेश्याओं द्वारा द्वीपान्तर यात्रा की ओर संकेत है। शास्त्रीय संगीत का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[5] संगीत

---

1 गायनसंघस्यैक्यादुत्तिष्ठति गीतनिः स्वनः सुमहान् ।
अस्थाने दत्ताया लक्ष्म्या इव संभ्रमाक्रन्दः।। - कलाविलास, 7/26

2 नाज्ञाताद् गृह्यते भाटी चरन्ति म्लेच्छगायनाः।
इत्यन्यासु वदन्तीषु शून्य शय्यासु लज्जया।। - समयमातृका 3/26

3 -देशोपदेश, 8/30-32

4 -कलाविलास, 4/3-11

5 कलाविलास 7/5

के तीनों अंग गीत, नृत्य एवं वाद्य आदि का समुचित प्रयोग मिलता है।[1] कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में कुछ वाद्ययन्त्रों के नाम भी प्रसङ्गतः आ गये हैं। झिलीमली[2] (झाँझ) सत्रतूर्य[3] एवं गलहस्तादि वादन प्रमुख रूप से उल्लिखित हैं।

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'चारुचर्या' में सन्निहित भारतीय संस्कृति के आदर्शों पर प्रकाश डालने का उपक्रम किया गया हैं संस्कृति मानव की जीवनी शक्ति, प्रगतिशील साधना की विमल विभूति, राष्ट्रीय आदर्श की गौरवमयी मार्यादा व स्वतन्त्रता की वास्तविक प्रतिष्ठा हैं यह एक ऐसी बढ़ती हुई धरा है जिसमें सदैव कुछ न कुछ नवीन जुड़ता रहता है एवं कुछ न कुछ विलुप्त होता रहता हैं भारतीय संस्कृति में कुछ ऐसे शाश्वत आदर्श भी हैं जो जीव लोक की यात्रा को मंगलमय बनाने के लिए अपरिहार्य हैं। आचार्य क्षेमेन्द्र के 'चारुचर्याशतक' में विहित भारतीयसंस्कृति के ऐसे ही मूल्यों का विवेचन किया गया है। भारतीय संस्कृति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मुरुषार्थ-चतुष्टय से प्राणवती है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने भारतीय संस्कृति के सन्देश में पुरुषार्थत्रय का प्रतिपादन किया है।[4]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने सम्राट् सागर की जीवलोक यात्रा का उल्लेख करके धमार्थकामादि की साधना की ओर तो विशेषतः संकेत किया है, साथ ही साथ मुक्त पदार्थों की अलग-अलग उद्धरणों द्वारा व्यञ्जना भी अपने लघुकाव्य

---

[1] -समयमातृका 5/49

[2] चिरं सञ्चूर्णिता सायिकृता सूक्ष्मझिलीमली।
इति कृत्वा ततः स्तोकधण्टांशः परिपालितः।। - नर्ममाला 1/94

[3] सत्रान्नेनोदरस्थेन ये मृता बुद्धदैशिकाः।
स सत्र तूर्ये क्रोशान्ति जातास्तत्रैव कुक्कुटाः।। -देशोपदेश 6/37

[4] साधयेद्धर्मकामार्थान् परस्परमबाधकान् ।
त्रिवर्गसाधना भूपा बभूवुः सगरादयः।। - चारुचर्या, श्लोक 69

'चारुचर्या' में की हैं जहाँ एक ओर क्षेमेन्द्र की 'चारुचर्या' में धर्म की साधना का उल्लेख किया गया है कि कष्ट पड़ने पर भी मानव को धर्म की मर्यादा परित्याग नहीं करना चाहिए यथा राजा सत्य हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल शरण को स्वीकार कर लिया था परन्तु धर्म नहीं छोड़ा।[1] कवि की चारुचर्याशतक में लोक-व्यवहार के लिए अपेक्षित जिन करणीय कृत्यों का विवेचन किया गया है। वह भारतीय संस्कृति के सन्देशवाहक तथा लोक व्यवहार के लिए अपरिहार्य हैं।[2] कविवर के 'चारुचर्याशतक' में ही हितकारी उपदेश सुनकर तदनुकूल आचरण करने का निर्देश दिया गया है साथ ही विदुर का परामर्श न मानने पर धृतराष्ट्र जैसी दुर्गति का उदाहरण भी प्रस्तुत किया गया है।[3] सामर्थ्यवान् होकर भी व्यक्ति को औचित्य का त्याग न करने का निर्देश दिया गया है, साथ ही अनुचित विधि से बालि का बध करने के कारण मर्यादावादी राम की कीर्ति कलंकित हो गयी थी।[4] इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'चारुचर्याशतक' में लोक जीवन विधायक कार्य व्यापारों का अत्यन्त स्वाभाविक विवेचन किया गया है।

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकतापरक है। उसमें जहाँ एक ओर लोकव्यवहार, आचार-विचार, संस्कारादि की स्थापना की गयी है वहीं दूसरी ओर नैतिकता, न्याय, भक्तिज्ञान, त्यागादि आदर्शों की भी महत्ता है, जिसमें आध्यात्मिकता का प्राधान्य है।

---

[1] न त्यजेद् धर्ममर्यादामपि क्लेशदशां श्रितः।
हरिश्चन्द्रो हि धर्मार्थी सेहे चण्डालदासताम् ।। - चारुचर्या, श्लोक 13

[2] Minor Works of Ksemendra, Introduction p. 10 -प्रोफेसर आर्येन्द्र शर्मा

[3] हितोपदेशं श्रुत्वा तु कुर्वीत च यथोचितम् ।
विधेरोक्तमकृत्वा तु शोच्योऽभूत् कौरवेश्वरः।। - चारुचर्या, श्लोक 59

[4] औचित्यप्रच्युताचारो युक्त्या स्वार्थं न साधयेत् ।
व्याजबलिवधेनैव रामकीर्तिः कलंकिता।। - चारुचर्या, श्लोक 51

आचार्य क्षेमेन्द्र पूर्व में शैव थे, परन्तु बाद में उन्होंने वैष्णव धर्म अपनाया था। अतः अपने 'चारुचर्याशतक' ग्रन्थ में उन्होंने अन्त में 'विष्णु' के नाम का स्मरण करने का निर्देश तथा अन्त में शरशैय्या पर पड़े महारथी भीष्म के द्वारा विष्णु के स्मरण का उल्लेख किया है।[1] मनुष्य के क्रमानुसार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों में जाने का निर्देश तथा साथ ही साथ उदाहरण के रूप में ययाति आदि प्राचीन राजाओं के इसी क्रम से एक आश्रम के बाद दूसरे आश्रय में प्रवेश करने का उल्लेख किया है।[2]

भारतीय संस्कृति भक्तिपरक है भक्ति में गुरु का विशेष महत्त्व होता है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'चारुचर्या' लघुकाव्य के स्फुट अनुष्टुप् छन्दों में गुरु-महिमा का उल्लेख किया है गुरु की आराधना भक्ति पूर्वक करनी चाहिए क्योंकि आराधना से प्रसनन होकर विश्वामित्र ने राम को अस्त्रमण्डल प्रदान किया था।[3] मुक्ति मार्ग में गुरु की अनिवार्यता सम्पूर्ण भारतीय धर्मों में प्रतिपादित की गयी है।

भारतीय संस्कृति के ऐसे ही दिव्य आदर्श, सत्संगति, परोपकार, दया एवं दाक्षिण्यादि हैं। आचार्य क्षेमेन्द्र ने इन सभी आदर्शों को सोदाहरण प्रस्तुत करने का उपक्रम किया है। सत्संगति करने से विभीषण के समान यशस्वी परोपकार करने गौतम बुद्धवत्, महान् दया करने में दानी, शिववत् त्यागशील होने की

---

[1] अन्ते सन्तोषदं विष्णुं स्मरेद्धन्तामापदम् ।
शरतल्पगतो भीष्मः सस्मार गरुडध्वजम् ।।।। - चारुचर्या, श्लोक 99

[2] ब्रह्मचारी गृहस्थः स्याद् वानप्रस्थो यतिः क्रमात् ।
आश्रमादाश्रमं याता ययातिप्रमुखा नृपाः।। - चारुचर्या, श्लोक 92

[3] गुरुमाराधयेद् भक्त्या विद्याविनयसाधनम् ।
रामाय प्रददौ तुष्टौ विश्वामित्रोऽस्त्रमण्डलम् ।। -चारुचर्या, श्लोक- 67

ओर क्षेमेन्द्र ने संकेत किया है। इस प्रकार भक्ति त्याग, दया, प्रभृति आदर्शों का निर्देश क्षेमेन्द्र ने सहजभाव से 'चारुचर्या' में दिया है।

परोपकार ही संसार का सार है ऐसे समझकर सभी जीवों के साथ उपकार करने का तथा साथ ही साथ उदाहरण रूप में भगवान् बुद्ध ने सभी जीवों का उद्धार करने की बुद्धि रखने का उल्लेख किया है।[1] हितकर उपदेश को सुनकर उसका यथोचित पालन करने का तथा उदाहरण के रूप में विदुर की सलाह न मानने से दुर्योधन के विनाश का उल्लेख किया गया है।[2] तथा ऊँचे पद को प्राप्त कर बड़े लोगों का अपमान न करने का तथा उदाहरण के रूप में नहुष ने इन्द्र होकर अगस्त्य मुनि का अपमान करने, जिससे उसके पतन का उल्लेख क्षेमेन्द्र ने किया है।[3] कभी सज्जन के कथन का उल्लंघन न करने का तथा साथ ही साथ उदाहरण के रूप में अपराध पर शंकर जी के द्वारा वेदवादी ब्रह्मा के चारों मुखों को काट दिये जाने का उल्लेख किया गया है।[4] 'चारुचर्याशतक' में दम्भपूर्वक उद्धत होकर धर्म का आचरण न करने का निर्देश दिया गया है, क्योंकि इस प्रकार से किया गया धर्म अन्त में निष्फल ही होता है।[5] हृदय में सात्त्विक भावना रखकर ही दान देने का तथा पश्चात्ताप से दूषित दान को कभी न

---

[1] परोपकारं संसारसारं कुर्वीत सत्त्ववान् ।
निदधे भगवान् बुद्धः सर्वसत्त्वोद्धृतौ धियम् ।। -चारुचर्या, श्लोक 89

[2] चारुचर्या, श्लोक 59

[3] अत्युन्नपदारूढः पूज्यान्नैवावमानयेत् ।
नहुषः शक्रतामेत्य च्युतोऽगस्त्यावमाननात् ।। -वही, श्लोक 57

[4] जातूल्लंघनं कुर्यात् सतां मर्मविदारणम् ।
चिच्छेद वदनं शम्भुर्ब्रह्मणो वेदवादिनः।। -वही, श्लोक 41

[5] दम्भारम्भोद्धतं धर्मं नाचरेदन्तनिष्फलम् ।
ब्राह्मण्यदम्भलब्धास्त्रविद्या कर्णस्य निष्फला।। -चारुचर्या, श्लोक 21

देने का निर्देश दिया गया है।[1] मनुष्य को आलस्य त्याग कर ब्राह्म मुहूर्त में जाग जाने का निर्देश दिया गया है, क्योंकि गुणों का आश्रय लेने वाली श्री (शोभा) प्रातः काल खिले हुए कमल पर विराजती है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि काश्मीरी विद्वान् आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने छोटे से ग्रन्थ 'चारुचर्या' में भारतीय संस्कृति के आदर्शों की जो स्थापना की है, वह स्तुत्य है उन्होंने अपने लघुकाव्य 'चारुचर्या' में जो सन्देश दिये हैं इतने संक्षिप्त रूप में गागर में सागर भरने की ऐसी प्रक्रिया संस्कृत-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। जैसा कि आर्येन्द्र शर्मा ने कहा है कि "अपने समय के साहित्यिक परिवेश में क्षेमेन्द्र एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति थे संस्कृत का कोई भी संग्रह ग्रन्थ उनकी कृतियों की उपेक्षा नहीं कर सका है।[3] इस प्रकार संक्षेपतः कहा जा सकता है कि प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण कविवर क्षेमेन्द्र ने किया था। कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने समय के समाज को जितनी गहराई से निरखा-परखा था उतना संस्कृत के शायद ही किसी कवि ने देखा हो। क्षेमेन्द्र ने एक असामान्य स्त्री के मनोविज्ञान के साथ तात्कालिक समाज की विडम्बना पूर्ण स्तुति को बड़ी ही जागरुकता के साथ उभारा है।

क्षेमेन्द्र का पर्यवेक्षण वेश्याओं, कुट्टनियों तक ही सीमित नहीं था वरन् अपने समाज के सभी वर्गों, शासन तन्त्र के अधिकारियों, विभिन्न प्रकार के धन्धे करने वालों पर समान रूप से क्षेमेन्द्र की दृष्टि है। क्षेमेन्द्र ने अपने युग की

---

1 दानं सत्त्वमितं दद्यान्न पश्चात्तापदूषितम् ।
बलिनात्यर्पितो बन्धे दानशेषस्य शुद्धये।। - चारुचर्या, श्लोक 18

2 ब्राह्मे मुहूर्ते पुरुषस्त्यजेन्निदामतन्द्रितः।
प्रातः प्रबुद्धं कमलमाश्रयेच्छ्रीर्गुणाश्रया।। - चारुचर्या, श्लोक 2

3 "Ksemendra was well know figure in the literary circle of his time, No Important Sanskrit Anthology has ignored the works of Ksemendra."
-Minor works of Ksemendra, Introdution, p. 8

समस्त सांस्कृतिक धरोहर को आत्मसात् किया था। वे कश्मीर की प्रादेशिक संस्कृति के सजग प्रतिनिधि हैं। वे उन विरले कवियों मे से हैं जिनकी प्रतिभा में कल्पना और यथार्थ दृष्टि की अनुभूति और तर्क की संवेदना और व्यङ्ग्य सम्मिलित हुआ है। वास्तव में क्षेमेन्द्र ने अपनी इस विशाल धरोहर से संस्कृत-साहित्य को जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है वह संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि है।

कविवर क्षेमेन्द्र का लोक परीक्षणात्मक अध्ययन गहन और व्यापक था, लेखन शक्ति अनुपम थी। इसलिए उनकी लेखनी ने स्वतन्त्रतया संस्कृत-साहित्य की अनेकानेक शाखाओं पर विहार किया यह कभी कवि के रूप में, कभी साहित्यिक विमर्श के रूप में, इतिहास वेत्ता के रूप में, कभी कोशकार के रूप में और कभी विलासिनी के रूप में सहृदयों के समक्ष ललित लीलाएँ प्रस्तुत करती है। केवल विस्तार की दृष्टि की से ही नहीं अपितु काव्योत्कर्ष की दृष्टि से भी कविवर क्षेमेन्द्र साहित्य वेत्ताओं में अग्रदूत है। उनके साहित्य में लौकिक ज्ञान और चिन्तन की गहन साधना निहित है। इसलिए उन्होंने यथार्थ का चित्रण कर जीवन के प्रति नवीन सन्देश दिया हैं। घटनाओं के चित्रण के प्रति उनका दृष्टिकोण सदैव मनोवैज्ञानिक रहा है। इसलिए डॉ0 सूर्यकान्त ने कहा है कि ''क्षेमेन्द्र व्यास वाल्मीकिवत् स्फुर्तिदाता थे।''[1]

संस्कृत-साहित्य के विश्व में क्षेमेन्द्र का स्थान असाधारण है।[2] यदि क्षेमेन्द्र के साहित्यिक जीवन के शैशवकाल की ओर दृष्टिपात करें तो हम उन्हें मात्र एक अनुवादक के रूप में पाते हैं कवित्व शक्ति का विकास तो शत-शत अभ्यास के अनन्तर हुआ है।[3] सर्वप्रथम इन्होंने गुणाढ्य की बृहत्कथा का संस्कृत के पद्य

---

1 Ksemendra Studies 1954 p.5

2 Ksemendra Studies, 1954 p.33

3 कृत्वानिश्चतदैवपौरुषमयोपायं प्रसूत्यै गिराम् ।

अनुवाद किया था। इसके बाद महाभारत और वाल्मीकि रामायण का मञ्जरियों के रूप में संक्षिप्त सार प्रस्तुत किया। इन्हें विश्वास था कि कवित्व शक्ति अर्जित करने वाले को इसी भाँति रचनाओं का अभ्यास करना चाहिए। इसी अभ्यास ने इन्हें एक सफल रस सिद्ध कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया।

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि उनके लघुकाव्य सांस्कृतिक मूल्यांकन की दृष्टि से अनुकरणीय है। उनकी कृतियों में सांस्कृतिक सामग्री पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाती है। उनके लघुकाव्य 'चारुचर्या' में तो सन्निहित भारतीय संस्कृति के आदर्शों पर प्रकाश डालने का उपक्रम किया गया है। एक ओर उनके लघुकाव्य संस्कृति के प्रमुख आधार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ-चतुष्टय से परिपूर्ण हैं वहीं दूसरी ओर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों में क्रमानुसार जाने का निर्देश दिया गया है। अतः इनके लघुकाव्य सांस्कृतिक मूल्यांकन की दृष्टि से उत्तम ठहरते हैं।

(iii) क्षेमेन्द्र के काव्यों का लघुकाव्यों परवर्ती साहित्य पर प्रभाव-

मनुष्य स्वभाव से अनुकरणशील है। इसी अनुकरण के ही माध्यम से व्यक्ति समाज में रहकर अन्य लोगों के भावों से प्रभावित होने के साथ ही अपने भी भावों के द्वारा अन्य व्यक्तियों के भावों को प्रभावित करता है। यही स्थिति कवि के विषय में मानी जाती है क्योंकि वह भी तो सामाजिक व्यक्ति हैं, जिस प्रकार मनुष्य का शारीरिक विकास खाद्य पदार्थों पर निर्भर करता है उसी प्रकार समयानुकूल भावनाओं एवं मानसिक विचारों के आधार पर कवि काव्य की सर्जना करता है। इन भावों की प्राप्ति उसे अपने समय की विचारधारा और

क्षेमेन्द्रेण यदर्जितं शुभफलं तेनास्तु काव्यार्थिनाम् ।।

- कविकण्ठाभरण, कारिका 53

तत्कालीन प्राप्त साहित्य के द्वारा होती है। पूर्वकालीन परम्परागत विचार धाराओं से प्रभावित होना प्रत्येक कवि के लिए स्वाभाविक है।

वैसे तो कवि अपनी प्रखर बुद्धि व कल्पना शक्ति द्वारा नवीन एवं अपूर्ण संरचना उपस्थित करता है, किन्तु उसमें अन्य कवियों एवं तात्कालिक लोक स्थितियों की सहायता अपरिहार्य हो जाती है। "किसी कवि के लिए काव्य सर्जना का प्रमुख हेतु शक्ति, लोकशास्त्र तथा काव्य इत्यादि के निरीक्षण एवं अनुशीलन से होने वाली निपुणता एवं काव्यज्ञों से शिक्षा प्राप्त करके अभ्यास ही है जिसे आचार्य मम्मट ने कहा है।"[1]

इस प्रकार काव्य के उद्भव में सहायक तत्त्व संस्कार, लोकवृत्त, शास्त्र तथा काव्यादि के निरीक्षण एवं अनुशीलन से प्राप्त निपुणता एवं काव्यज्ञों से शिक्षा प्राप्त किया हुआ अभ्यास किसी कवि के लिए परम आवश्यक होता है। काव्य के इन हेतुओं की प्राप्ति भी पूर्ववर्ती काव्यों पर ही निर्भर होती है। कवि अपनी कवित्व शक्ति की बुद्धि हेतु अपने पूर्ववर्ती कवियों द्वारा रचित साहित्य एवं काव्य का सूक्ष्म अध्ययन तथा मनन करता है। अतः उनकी छाया उसके भावों एवं भाषा पर पड़ती है।

दूसरों के द्वारा प्रयुक्त शब्द अथवा अर्थ का ग्रहण कर अपनी रचना में स्थान देना 'हरण' (चोरी) आदि नामों से जाना जाता है, किन्तु कवि द्वारा अन्य कवि के शब्द व भावों को ग्रहण करना स्वाभाविक ही है। वह अपने को पूर्णतः अलग नहीं रख सकता। इस विषय में कहा भी गया है कि कोई भी ऐसा कवि नहीं है जो चोरी न करता हो तथा कोई ऐसा व्यवसायी नहीं है जिसने चोरी न की हो।[2] कोई कवि उत्पादक होता है तो कोई प्रचारक इसके अतिरिक्त कोई

---

1 शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।। -काव्यप्रकाश 1/3

2 नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचौरो वणिग्जनः।

आच्छादक अर्थात् दूसरे की रचना को छिपाकर अपनी बताना तो काई संवर्गक अर्थात् निर्भय होकर साफ-साफ अन्य की रचना को अपनी बताने वाला होता है। इस प्रकार का 'हरण' एक पद, एकपाद, दो पादों, सम्पूर्ण श्लोक तथा पूर्ण प्रबन्ध रूप से होता है।

इस विषय में प्रतिपादन करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवियों को पाँच वर्गों में विभाजित किया है।[1] जो कवि केवल अन्य कवि की केवल छाया अथवा भावमात्र का ग्रहण करता है वह 'छायोपजीवी' कवि कहलाता है, किन्तु 'पद' का अनुसरण करने वाला कवि 'पदकोपजीवी' कहलाता है। एक पूर्णपाद को वैसा ही अपनी कृति में लिखने वाला 'पादोपजीवी' तथा किसी श्लोक को पूर्ण रूप से ग्रहण करने वाला कवि 'सकलोपजीवी' होता है। 'भुवनोपजीव्य' वह कवि होता है जिसका अनुसरण सम्पूर्ण विश्व करे जैसे- व्यास तथा आदि कवि वाल्मीकि।

अन्य अनेक कवियों के भावों एवं काव्य के पदों तथा पादों आदि का ग्रहण कविवर क्षेमेन्द्र ने ही नहीं किया अपितु इनके भावों तथा शब्दों का प्रयोग इनके परवर्ती कवियों ने भी किया। कविवर क्षेमेन्द्र के परवर्ती कवियों में इनके काव्यों की छाया किसी न किसी रूप में अवश्य ही परिलक्षित होती है।

कविवर क्षेमेन्द्र बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महाकवि थे। इन्होंने विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित रचनाएँ कीं। इनकी रचनाएँ काव्यशास्त्रीय, कविशिक्षासम्बन्धी, समाजोपयोगी व शिक्षा प्रद हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से संस्कृत-साहित्य भण्डार को गुरुतर बनाने में 'अहम्' भूमिका निभायी है। परिणामतः

स नन्दति विना वाच्यं यो जानाति निगूहितम् ।। -काव्यमीमांसा, अध्याय 11

1 छायोपजीवी पदकोपजीवी पादोपजीवी सकलोपजीवी।
भवेदथ प्राप्तकवित्वजीवी स्वोन्मेषतो वा भुवनोपजीव्यः।। -कविकण्ठाभरण 2/1

इतने विशाल एवं विस्तृत काव्य ग्रन्थों के रहते इनका परवर्ती काव्यों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

'औचित्यविचारचर्चा' नामक ग्रन्थ कविवर क्षेमेन्द्र को आचार्य सिद्ध करता है तथा इसमें वर्णित सिद्धान्तों का अर्वाचीन काव्यों पर व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके सिद्धान्त समस्त काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्य हैं। प्रायः सभी परवर्ती काव्यशास्त्रीय कवियों, लेखकों एवं विचारकों ने अपनी रचनाओं में इनके औचित्य सिद्धान्त को समाविष्ट किया हैं। इस प्रकार यह पूर्णतः स्पष्ट है कि इनके औचित्यविचारचर्चा ग्रन्थ का प्रभाव व्यापक व विस्तृत हैं। वस्तुतः इनके औचित्य का भी विस्तार है। इस ग्रन्थ में इन्होंने सत्ताईस शीर्षकों पर औचित्य की चर्चा की हैं। इस ग्रन्थ के समस्त उद्धरणों का संग्रह तथा उनकी विवेचना 'जनरल ऑफ दि बम्बई ब्रान्च ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी' में उद्धृत है।[1]

कविवर क्षेमेन्द्र की कविशिक्षा से सम्बन्धित काव्य 'कविकण्ठाभरण' का भी परवर्ती काव्यों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। इस ग्रन्थ पर विश्लेषणात्मक निबन्ध व जर्मन अनुवाद प्राप्त होते हैं।[2]

कविवर क्षेमेन्द्र के 'लोकप्रकाश' नामक ग्रन्थ का भी परवर्ती काव्यों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है इसका अनुवाद और टिप्पणी भी प्रकाशित है।[3] कविवर क्षेमेन्द्र रचित महाकाव्य 'भारतमञ्जरी' के अन्तर्गत व्यासाष्टक स्तोत्र का उल्लेख काश्मीर रिपोर्ट में प्राप्त होता है।[4]

---

1 "Journal of the Bombay Branch of Royal Asiatic Society', XVI on pages 167-180.

2 'जे0 शेनवर्ग व विएन' 1884 (Sb. derulicner Akdd) के अन्तर्गत।

3 अनुवाद और टिप्पणी, जे0 ब्लॉच, पी0 गवर्नर, पेरिस 1914

4 काश्मीर रिपोर्ट, 1877 -व्हूलर, पृ0 45-46

बौद्धवदानों पर आधृत 'बौद्धावदानकल्पलता' नामक क्षेमेन्द्र रचित काव्य भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इसकी रचना के ही अन्तर्गत इसका अनुवाद तिब्बती भाषा में हुआ। शरत् चन्द्रदास द्वारा संकलित तिब्बती संस्करण इस रचना द्वारा प्रभावित है।[1] क्षेमेन्द्र के 'वात्स्यायनसूत्रसार' में वर्णित कामसम्बन्धी वर्णन उल्लिखित है।

कविवर क्षेमेन्द्र की 'कलाविलास' जो व्यङ्ग्य-प्रधान लघुरचना है, का जर्मन अनुवाद जो आर. शिमट द्वारा किया गया है।[2] प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित 'कलाविलास' क्षेमेन्द्र के परवर्ती काव्यों पर प्रभाव का द्योतक है।

क्षेमेन्द्र का 'दर्पदलन' जो व्यङ्ग्यपूर्ण उपदेशात्मक काव्य की दृष्टि से संस्कृत-साहित्य की सर्वोत्तम कृति है, के कई अनुवाद के संस्करण प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत लघुकाव्य दर्पदलन भी शोध से सम्बन्धित है। आर0 शिमट द्वारा इस ग्रन्थ का जर्मन भाषा में अनुवाद प्राप्त होता है।[3] कीथ आदि पाश्चात्त्य विद्वानों तथा डे आदि भारतीय विद्वानों द्वारा लिखी गयी संस्कृत-साहित्य के इतिहास सम्बन्धी पुस्तकों में भी दर्पदलन से सम्बन्धित लेखा प्राप्त होते हैं। इन साहित्य सम्बन्धी ऐतिहासिक काव्यों में 'दर्पदलन' व्यङ्ग्यपर्ण उपदेशात्मक काव्य की परम्परा का सर्वोत्तम काव्य माना गया है।

क्षेमेन्द्र की 'समयमातृका' शृंगारप्रधान प्रबन्ध का अनुवाद जे0 जे0 मेयर लाइपज़िग (1903) (जर्मनी भाषा में) ने किया हैं। कविवर क्षेमेन्द्र की गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' पर आधारित 'बृहत्कथामञ्जरी' के अंशों का अनुवाद सिल्वाँ लेवी ने (प्रथम लम्भक, पाठ रोमनलिपि में) जर्नल एशियाटिक में किया है तथा

---

1 बिब्लियोग्राफिका इण्डिका (1888-1918) शरत् चन्द्रदास

2 WZKM, XVIII, 1914 -आर0 शिमट पृ0 406-35

3 ZDMG, LXIX, 1915 -आर0 शिमट पृ0 1-51

लियो0 वी0 यकोवस्की ने (पञ्चतन्त्र पाठ रोमनलिपि में)[1] किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'बृहत्कथामञ्जरी' का भी व्यापक प्रभाव क्षेमेन्द्र के परवर्ती काव्यों पर पड़ा है।

आदर्श व्यवहार के निर्देश से युक्त अनुष्टुप् छन्द में रचित 'चारुचर्याशतक' नामक कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य ने परवर्ती काव्यों को विशेष रूप से प्रभावित किया है। इस आदर्श काव्य का प्रभाव द्या द्विवेदी (1494 ई0) द्वारा रचित 'नीतिमञ्जरी' पर पड़ा है। जिस तरह कविवर क्षेमेन्द्र ने रामायण, महाभारत, बृहत्कथा व कथासरित्सागर के निर्देशन पर चारुचर्या की रचना की हैं। उसी प्रकार द्या द्विवेदी ने भी अपनी रचना में नीतिपरक दो सौ पद्यों के निदर्शन ऋग्वेद पर सायण के भाष्य से संगृहीत कथाओं के आधार पर दिया हैं। इसकी पुष्टि प्रो0 'कीथ' ने भी की है।[2]

'चारुचर्याशतक' का प्रभाव जल्हण विरचित 'मुग्धोपदेश' पर भी पड़ा है। यह 66 पद्यों की संक्षिप्त रचना है जिसमें वेश्याओं के कापटिक व्यवहार के प्रति चेतावनी दी गयी है। इनकी 'बृहत्कथामञ्जरी' का प्रभाव हर्ष के 'नागानन्द' नाटक पर भी पड़ा है। यह मत प्रो0 दासगुप्ता ने व्यक्त किया है।

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों का प्रभाव उन्नीसवीं शताब्दी में देखने को आता है। उनकी उपदेशात्मक शैली से अनेकानेक कवि प्रभावित हुए हैं। इस विषय में द्या द्विवेदी एवं जल्हण का उल्लेख पूर्व किया जा चुका है। उपदेशप्रधान काव्यों में प्रमुख रूप से प्रसिद्ध इनकी 'चारुचर्या' उपदेशात्मक शैली से आकृष्ट उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पन्न कुमायूँ के सुप्रसिद्ध कवि लोकरत्न शर्मा 'गुमानी' ने 'उपदेशशतक' की रचना की। इसमें उन्होंने क्षेमेन्द्र की भाँति अनुष्टुप् छन्द का

---

1 पञ्चतन्त्रपाठ रोमन लिपि में - लियो0वी0 यकोवस्की- लाइपज़िग, 1892

2 संस्कृत-साहित्य का इतिहास- प्रो0 ऐ0बी0 कीथ, पृ0 239

प्रयोग न कर आर्या छन्द में अपनी रचना की है। इन्होंने आर्या के प्रथम तीन चरणों में रामायण, महाभारत, शिशुपालवध, रघुवंश, श्रीमद्भगवत, कथासरित्सागर एवं हरिवंश आदि की कथाओं का तथा चतुर्थ चरण में उपदेश वाक्य का निबन्धन किया है, जबकि क्षेमेन्द्र पूर्व पंक्ति में उपदेश करते हैं और द्वितीय पंक्ति में रामायण, महाभारत, बृहत्कथा एवं हरिवंश आदि के कथानकों द्वारा स्वकथन की पुष्टि करते हैं। यदा कदा गुमानी कवि क्षेमेन्द्र के ही पौराणिक समर्थक वाक्य को उदाहृत करते हैं। इनके अधिकांश श्लोकों में क्षेमेन्द्र-सदृश भाव विद्यमान हैं। वे जिस प्रसङ्ग को उदाहृत करते हुए उपदेश करते हैं, इससे निःसन्देह स्पष्ट होता है कि गुमानी कवि क्षेमेन्द्र रचित 'चारुचर्या' की उपदेशात्मक शैली से पूर्णतः प्रभावित हैं। कतिपय उदाहरण इस कथन को पुष्ट करते हैं।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कविवर क्षेमेन्द्र की विभिन्न विस्तृत रचनाओं का परवर्ती काव्यों पर व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा है। अतः इनकी अद्वितीय काव्य-प्रतिभा सतत सराहनीय रहेगी। वस्तुतः सूक्त्यात्मक साहित्य अर्थात् नये-नये सुभाषित देने के कारण क्षेमेन्द्र एक ऐसे कवि हो गये जिनके वचनों का अनुसरण कवि एवं पाठक दोनों करते हैं। एक ओर उन्होंने परवर्ती कवियों के लिए सुभाषित काव्य का मार्ग प्रशस्त किया तो दूसरी ओर पाठक के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान की। अतः सुन्दर सूक्तिपरक काव्य की उद्भावना ही क्षेमेन्द्र

---

[1] क. कुर्यात् परदारेच्छां विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत् ।
हतो दशास्यः सीतार्थे हतः पत्न्या विदूरथः।। -चारुचर्या, श्लोक 10

ख. विश्रब्ध चतुरवचनैः कैकेय्यैदशरथोवरं दत्त्वा।
सङ्कटमाप दुरन्तं स्त्रीषु न कुर्वीत विश्वासम् ।। -उपदेशशतक, श्लोक 10

ग. मुनिरपि विश्वामित्रः श्वा भूत्वा गूढमुर्वशीवरागः।
अन्वव्रजत् स्मरार्तो भेतव्यं दुर्जयात् कामात् ।। -उपदेशशतक, श्लोक 63

का संस्कृत वाङ्मय के लिए अमूल्य अवदान है। अतः संक्षेपतः कहा जा सकता है कि अन्य अनेक कवियों ने उनके काव्यों को उपजीव्य मानकर अपने काव्यों का प्रणयन किया है। उनकी सूक्त्यात्मक एवं उपदेशप्रधान शैली से युक्त लघुकाव्य 'चारुचर्या' के आधार पर ही गुमानि कवि ने 'उपदेशशतक' की रचना की। उनके लघुकाय ग्रन्थ 'चारुचर्या' का प्रभाव जल्हण विरचित 'मुग्धोपदेश' पर तथा उनके 'बृहत्कथामञ्जरी' जैसे बृहद् काव्य का प्रभाव नागानन्द नाटक पर देखा जा सकता है। उनके काव्यों का प्रभाव विशेषकर उन्नीसवीं शताब्दी में अधिक देखने को मिलता है। उनकी उपदेशात्मक शैली अनेकानेक कवियों के काव्यों में परिलक्षित होती है। यही उनके कर्तृत्व की विशेषता है। अतः क्षेमेन्द्र ने अपने परवर्ती कवियों के काव्यों पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है। वे अपनी विविध विधामय शैली के कारण संस्कृत-साहित्य गगन के समुज्ज्वल नक्षत्र हैं।

●●●

अष्टम अध्याय

भाव-साम्य : क्षेमेन्द्र की अन्य कवियों से समता

क्षेमेन्द्रप्रतिपादित उपदेशात्मक विषयों पर अन्य कवियों के भावों की समता

संस्कृत-साहित्य जगत् में क्षेमेन्द्र एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने कवित्व के साथ-साथ एक उपदेशक आचार्य के धर्म का भी निर्वाह किया है। उनका कवित्व उपदेशात्मकता में प्रतिष्ठित है। विशेष रूप से उनके लघुकाव्य जीवनोपयोगी सुन्दर सुभाषितों के आकर बन गये हैं। वे जीवन के विविध पक्षों पर अपने मौलिक विचार रखते हैं। यह एक संयोग मात्र है कि उनके विचार संस्कृत के अनेक सुभाषित ग्रन्थों, सूक्ति-समुच्चयों एवं नीतिपरक काव्यों से मेल खाते हैं। अनेकशः ऐसा भाव-साम्य देखने को मिलता है। उन्होंने जिन उपदेशपरक नीतियों एवं दैनिक जीवनोपयोगी विचारों का प्रतिपादन किया है, वे अन्यत्र सूक्ति-संग्रहात्मक ग्रन्थों में मिलते हैं। उनके ये विचार भर्तृहरि, विष्णु शर्मा, नारायण पण्डित, चाणक्य, भोज, शार्ङ्गधर, अप्पयदीक्षित, शूद्रक एवं व्यास आदि कवियों के विचारों से समता रखते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में तत्सम्बन्धी कुछ शीर्षकों पर अन्य कवियों के विचारों का विवेचन कर लेना ही प्रासङ्गिक होगा। कुछ विषयों पर अन्य कवियों के विचार अधोलिखित हैं-

धन-विचार-साम्य

धन को मनुष्य के जीवन अपरिहार्य अङ्ग माना गया है, जिसके बिना संसार का कोई भी कार्य संभव नहीं हो सकता है। धन के महत्त्व से हमारे काव्य ग्रन्थ भरे पड़े हैं। कविवर क्षेमेन्द्र ने चारों पुरुषार्थों में अर्थ का स्थान अनुपम माना है तथा सभी आश्रमों के लोगों की पूर्ति गृहस्थाश्रम से ही मानी है, जिसमें धन की प्रमुख भूमिका होती हैं।आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य 'चतुर्वर्गसंग्रह' में धन के महत्त्व को स्वीकार करते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डाला हैं।धन के विषय में विचार व्यक्त करते हुए कविवर क्षेमेन्द्र ने कहा है कि मनुष्य की पूजा सत्कुल से नहीं, कीर्ति पराक्रम से नहीं, रूप यौवन से नहीं तथा क्रिया जीवन से

नहीं, अपितु धन से ही सम्भव होती है।[1] इसी प्रकार के धन से सम्बन्धित विचारों का विस्तृत विवेचन पञ्चम अध्याय में किया जा चुका है। इसी तरह के भाव साम्य अन्य कवियों में भी देखे जा सकते हैं। जिस तरह वैभव लोक में पूज्य है उस तरह शरीर नहीं। विपुल धन से युक्त चाण्डाल भी पूज्य होता है। ऐसा अन्यत्र किसी कवि का कथन है।[2] 'शार्ङ्गधरपद्धति' में कहा गया है कि धन के महत्त्व को कहने में कोई समर्थ नहीं है। कवि आश्चर्य व्यक्त करता है कि धन नाम-साम्य से मद प्रदान करने वाला है।[3] नीतिसार में कवि ने धनार्जन के लिए जोर देकर कहा है कि धन से ही अकुलीन कुलीन हो जाते हैं और धन से ही लोग आपत्तियों का निराकरण कर देते हैं। इसलिए धन से पर इस लोक में कोई भी बन्धु बान्धव नहीं है।[4] प्रसङ्गाभरण में तो इस जगत् को धन मूल मानते हुए धनार्जन के लिए कहा गया है। कवि को निर्धन और मृत में अन्तर दिखाई नहीं देता है।[5]

---

[1] पूजा धनेनैव न सत्कुलेन कीर्तिर्धनेनैव न विक्रमेण।
रूपं धनेनैव न यौवनेन क्रिया धनेनैव न जीवितेन।। -चतुर्वर्गसंग्रह 2/4

[2] विभावो हि यथा लोके न शरीराणि देहिनाम् ।
चाण्डालोऽपि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम् ।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, धनप्रशंसा, श्लोक 8

[3] अहो कनकमाहात्म्यं वक्तुं केनापि शक्यते।
नामसाम्यादहो चित्रं धत्तूरोऽपि मदप्रदः।। -शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 4

[4] धनैर्निष्कुलीनाः कुलीना भवन्ति।
धनैरापदं मानवा निस्तरन्ति।
धनेभ्यः परो बान्धवो नास्ति लोके।
धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वम् ।। - नीतिसार, श्लोक 3

[5] धनमर्जय का कुत्सथ धनमूलमिदं जगत् ।
अन्तरं नैव पश्यामि निर्धनस्य मृतस्य च।। -प्रसङ्गाभरण, श्लोक 4

नीतिसार में अन्यत्र भी द्रव्योपार्जन का सदुपदेश दिया गया है, क्योंकि द्रव्य से वश में हो जाते हैं।, किन्तु धनाभाव में माता निन्दा करती है, पिता अभिनन्दन नहीं करते, भाई भी प्रेम से नहीं बोलता, नौकर भी क्रोध करता है। पुत्र अनुसरण नहीं करता तथा पत्नी आलिङ्गन नहीं करती और सुहृद् भी धन माँगे जाने के डर से नहीं बोलते हैं।[1] धन में आकर्षण शक्ति का प्राबल्य होता है। इसलिए विष्णु शर्मा कहते हैं कि प्राज्ञ व्यक्ति को किसी को स्वल्प धन भी नहीं दिखाना चाहिए, क्योंकि उसे देखने से मुनि का भी मन चलायमान हो जाता है।[2] चाणक्य भी नीतिसार के कथन की भाँति कहते हैं कि धन हीन व्यक्ति को मित्र, पुत्र, स्त्री एवं सुहृद्जन सभी छोड़ देते हैं, किन्तु जब वह धनवान् हो जाता है तो वही पुनः आश्रय की अपेक्षा करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि धन ही लोक में पुरुष का बन्धु है।[3] हितोपदेशकार नारायण पण्डित ने गौरव एवं लघुता धन व धनाभाव के आधार पर माना है। मनुष्य मनुष्य का दास नहीं होता, अपितु अर्थ व धनी भूपति का दास होता है।[4] भूखा व्यक्ति व्याकरण ग्रहण

---

1 माता निन्दति नाभिनन्दति पिता भ्राता न सम्भाषते।
भृत्यः कुप्यति नानुगच्छति सुतः कान्ता च नालिङ्गते
अर्थप्रार्थनशङ्कया न कुरुते संभाषणं वै सुहृत्
तस्माद्द्रव्यमुपार्जयस्व सुमते द्रव्येण सर्वे वशाः।। -नीतिसार, श्लोक 2

2 न वित्तं दर्शयेत्प्राज्ञः कस्यचित्स्वल्पमप्यहो।
मुनेरपि यतस्तस्य दर्शनाच्चलते मनः।। -पञ्चतन्त्र 1/433

3 त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं
पुत्रश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च।
तमर्थवन्तं पुनराश्रयन्ति।
ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः।। -चाणक्यशतक 15/5

4 न नरस्य नरो दासो दासश्चार्थस्य भूपते।
गौरवं लाघवं वापि धनाधननिबन्धनम् ।। - हितोपदेश 3/78

नहीं करता तथा प्यासा काव्यरस का पान नहीं करता और न ही छन्द से किसी के द्वारा कुलोद्धार होता है। अतः धनार्जन करो जिसके अभाव में सभी गुण निष्फल हो जाते हैं- ऐसा भर्तृहरि का मन्तव्य है।[1] स्त्री के मोहक रूप पर युवक तत्क्षण मोहित हो जाता है, किन्तु कनक अर्थात् धन से तो स्त्री, बालक व वृद्धादि सभी सदा मोहित रहते हैं।[2] वस्तुतः व्यावहारिक जगत् के धन की उपादेयता को देखते हुए यह पूर्णतः स्पष्ट है कि इस लोक में सभी उपलब्धियों का आधार धन ही है तथा धन में दोषों को समाविष्ट करने की क्षमता भी विद्यमान हैं। इसीलिए चाणक्य कहते हें कि यदि ब्रह्महत्या करने वाला मनुष्य विपुल-वैभव-सम्पन्न है तो वह पूज्य होगा, किन्तु चन्द्रसदृश विमल वंशोत्पन्न व्यक्ति यदि निर्धन है तो पराभव को ही प्राप्त होता है।[3] मेरे विनम्र विचार में निम्न प्रस्तुत श्लोक में कवि द्वारा समाज के यथार्थ का चित्रण किया गया है। वस्तुतः यह प्रस्तुत विषय में कवि द्वारा उपदिष्ट या आदर्शरूप नहीं है। धन प्राप्ति के लिए युवा व्यक्ति अपनी विलासयोग्या पत्नी को छोड़कर विदेशों में निवास करता हुआ रात में उसका स्मरण करता हुआ, सोचता है कि कान्ताभ्रम से यह अर्थभ्रम ही श्रेष्ठ है अर्थात् वह युवा धनप्राप्ति को ज्यादा महत्त्व देता है।[4]

---

[1] बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
नच्छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं हिरण्यमेवार्जय निष्फला गुणाः।।
- भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह, श्लोक 621

[2] स्त्रीरूपं मोहकं पुंसो यून एव भवेत्क्षणम् ।
कनकं स्त्रीबालवृद्धषाण्ढानामपि सर्वदा ।। - शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 4192

[3] ब्रह्मघ्नोऽपि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम् ।
शशिना तुल्यवंशोऽपि निर्धनः परिभूयते।। - चाणक्यनीतिसार, श्लोक 82

[4] त्यक्त्वा युवा स्वयुवतिं सुविलासयोग्यां दूरं विदेशवसतो निवसन्धनार्थी।
रात्र्यागमे स्मरति तां न समेति तस्मात् कान्ताभ्रमादपि वरः कनकभ्रमोऽयम् ।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, धनप्रशंसा, श्लोक 14

इसी प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने भी धन के महत्त्व को स्वीकारा है। उनके चतुर्वर्गसंग्रह, दर्पदलन आदि लघुकाव्य धन-सम्बन्धी विचारों से ओत-प्रोत हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि धन महिमा से हमारा संस्कृत-साहित्य भरा पड़ा है, जिसमें लौकिक जगत् में धन को अपरिहार्य माना गया है तथा धन से ही सभी प्राप्त गुणों में विशिष्टता आ जाती है। कविवर क्षेमेन्द्र ने भी धन को जीवन का अनिवार्य अङ्ग मानते हुए भी सन्तोष को सुख का मूल बताया है।

दान-विचार-साम्य

वस्तुतः समाज आदान-प्रदान की भित्ति पर अवलम्बित होता है। धनी व्यक्तियों का संचित धन केवल उन्हीं की आवश्यकता एवं व्यसन पूरा करने के लिए नहीं, अपितु उसका सदुपयोग उन निर्धनों की उदर-ज्वाला शान्त करने में भी है, जो समाज के विशेष अङ्ग माना गये हैं। कविवर क्षेमेन्द्र ने पूर्वस्थापित आदर्शों के अनुरूप धन का वास्तविक फल दान को ही स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में सात्त्विक विचारों से युक्त होकर निःस्वार्थ भावना से किया गया किंचित् दान भी महाफलदायक होता है।[1] कविवर क्षेमेन्द्र ने सात्त्विक भावना से युक्त होकर ही दान देने तथा उसके बदले में कुछ न पाने को कहा है।[2] इसी प्रकार के कविवर क्षेमेन्द्र के भावों से साम्य रखते हुए 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भी दान के महत्त्व को बतलाकर सात्त्विक दान की विशिष्टता को दर्शाया गया है। दान देना ही कर्तव्य है- ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर उपकार न करने वाले के प्रति दिया जाता है। वह दान 'सात्त्विकदान'

---

1 सर्वथा सत्त्वशुद्धाय दानायातिलघीयसे।
नमो महाफलायैव न भोगांगप्रसंगिने।। -दर्पदलन 6/52

2 दानं सत्त्वमितं दद्यान्न पश्चात्तापदूषितम् ।
बलिनात्मार्पितो बन्धे दानशेषस्य शुद्धये।। - चारुचर्या, श्लोक 18

कहा गया है।[1] इसी प्रकार के मिलते-जुलते विचार अन्य कवियों में भी देखे जा सकते हैं। धन की सदुपयोगिता तो देने व सदुपयोग करने में ही है। इसीलिए भोजप्रबन्धकार ने कहा है कि जो दान करता है और उपभोग करता है वही धनी के धन का उचित प्रयोग हैं अन्य तो मृतकतुल्य व्यक्ति के स्त्रियों एवं धन से लोग क्रीड़ा करते हैं।[2] हितोपदेशकार ने भी दान को धन की संज्ञा देना स्वीकार किया है, जो विशिष्ट को दिया जाय व प्रतिदिन उपयुक्त हो।[3] अन्यत्र भी दान को सर्वोत्तम बताते हुए कहा गया है कि पाप से नरक की प्राप्ति होती है और पाप दरिद्रता से सम्भव है। इसलिए दरिद्रता से वञ्चित रहकर व्यक्ति को दान-प्रवृत्त होना चाहिए।[4] 'सूक्तिमुक्तावली' में भी वित्त को गौरव की प्राप्ति दान से ही माना है, न कि संचय से। जल देने वाला बादल ऊँचा रहता है, किन्तु जल-संचय करने वाला सागर अथाह जलराशि से युक्त नीचे रहता है- ऐसा कवि ने उदाहृत कर स्वकथन की पुष्टि की है।[5] हितोपदेशकार ने अन्यत्र भी धन सम्बन्धी उचितानुचित प्रयोग का विवेचन किया है।[6] पञ्चतन्त्रकार विष्णु शर्मा ने भी

---

[1] दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।। - गीता 17/20

[2] यद् ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम् ।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि।। -भोजप्रबन्ध, श्लोक 63

[3] यद् ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने।
तत्त वित्तमहं मन्ये शेषमन्यस्य रक्षसि।। - हितोपदेश 1/169

[4] भवन्ति नरकाः पापात्पापं दारिद्र्यसंभवम् ।
दारिद्र्यं च प्रदानेन तस्माद्दानपरो भवेत् ।। - कुवलयानन्द, श्लोक 104

[5] गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात् ।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः।। -सूक्तिमुक्तावली 16/3

[6] दरिद्रान्भर कौन्तेय! मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः।। - हितोपदेश 1/15

उपार्जित वित्त के त्याग को ही रक्षा बताते हुए तड़ागोदर जल से उपमित कर धन के सदुपयोग एवं उपभोग पर बल दिया है।[1] 'शार्ङ्गधरपद्धति' में ऐसे धन को निष्प्रयोजन ही माना है, जो वधू की भाँति घर में ही रहे। उसमें धन को सर्वोपभोग्य बताते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार वेश्या सभी पथिकों द्वारा भोग्या होती है, उसी प्रकार धन को भी सर्वोपभोग्य होने पर बल दिया गया है।[2] 'पद्यसंग्रह' में तो अन्नदान की विशेष महत्त का गुणगान किया गया है। सैकड़ों घोड़े, हजारों गायें, लाखों हाथी, स्वर्ण व रजतनिर्मित पात्र, सागरापर्यन्त पृथ्वी और विमल कुलवधुओं की करोड़ों मन्याएँ दान में दी जाँय, तब भी प्रधान अन्नदाता की समानता नहीं हो सकती है।[3] दान से ही सभी प्राणी वश में होते हैं, दान से ही वैरी भी मित्र जो जाते हैं और दान से ही पराये अपने हो जाते हैं। वस्तुतः दान ही सभी व्यसनों का विनाश भी करता है।[4] पञ्चतन्त्र का यह पद्य बहुत ही प्रसिद्ध है जिसमें धन की तीन गतियों दान, भोग एवं नाश का उल्लेख है- जो न दान करता है और न उपभोग करता है, उसके धन की तृतीय गति

---

[1] उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् ।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम् ।। -पञ्चतन्त्र 2/157

[2] किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला।
या न वेश्येव सामान्या पथिकैरुपभुज्यते।। -शार्ङ्गधरपद्धति 2/141

[3] तुरगशतसहस्रं गोगजानां च लक्षं
कनकरजतपात्रं मेदिनीं सागरान्ताम् ।
विमलकुलवधूनां कोटिकन्याश्च दद्या-
न्न हि नहि सममेतैरन्नदानं प्रधानम् ।। - पद्यसंग्रह, श्लोक 14

[4] दानेन भूतानि वशीभवन्ति, दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैर्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति।।
- सुभाषितरत्नभाण्डागार, श्लोक 25

होती है अर्थात् वह धन नष्ट हो जाता है।[1] कविवर क्षेमेन्द्र ने धन की तीन गतियों का उल्लेख करते हुए प्रथम गति को सर्वोपरि बताया है। शार्ङ्गधर पद्धति में भी कहा गया है कि जो धन के रहते हुए भी न दान करता है और न ही उपभोग करता है, वह खेत में बने तृणमय कृत्रिम पुरुष की तरह अन्य के धन फसल की रक्षा करता है।[2] धन होने पर उसका दान करना चाहिए व उसका उपभोग करना चाहिए, क्योंकि उसका संचय नहीं करना चाहिए। मधुमक्खियों द्वारा संचित उनके अर्थ (मधु) का दूसरे ही हरण करते हैं।[3] कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य 'चतुर्वर्गसंग्रह' में दान के बराबर किसी दूसरे धन की कल्पना नहीं की है।

इस प्रकार दान-विचार में विभिन्न कवियों के विचारों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दान ऐसा गुण है, जिसकी सराहना वैदिक युग से आज तक हो रही है, किन्तु निःस्वार्थ दाताओं की संख्या में उत्तरोत्तर अभाव ही है। अन्य कवियों की भाँति कविवर क्षेमेन्द्र ने भी इस विषय पर अपने मन्तव्य प्रकट किये हैं, जो अन्य कवियों की विचारधारा से साम्य रखते हैं।

विद्या-विचार-साम्य

प्रायः सभी नीतिकारों ने विद्या के सम्बन्ध में अपनी-अपनी समर्थ लेखनी का प्रयोग कर इसे समस्त धनों में श्रेष्ठ बताया है। कविवर क्षेमेन्द्र ने भी विद्या की प्रशंसा में अपने विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं महाकवि क्षेमेन्द्र ने पूर्व सूरियों

---

1 दानं भोगोनाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।। -पञ्चतन्त्र 2/157

2 यो न ददाति न भुङ्क्ते सति विभवे नैव तस्य तद्द्रव्यम् ।
तृणमयकृत्रिमपुरुषो रक्षति सस्यं परस्यार्थे।। - शाङ्र्गधरपद्धति, श्लोक 387

3 दातव्यं भोक्तव्यं सति विभवे संञ्चयो न कर्तव्यः।
पश्येह मधुकरीणां संचितमर्थं हरन्त्यमन्ये।। - वही 469

द्वारा उक्त आदर्शों के अनुरूप विद्या को समस्त दोषों की शान्ति का हेतु माना है। क्षेमेन्द्र के विचार में विद्या तभी तक स्पृहणीय होती है, जब तक उसके साथ-साथ सन्तोष हो, राजाओं के समक्ष दान प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होकर वह निन्दनीय हो जाती है।[1] शील भाव और द्वेष से विद्या अपवित्र हो जाती है तथा दर्पयुक्त होने पर अपने साथ ही जीवन का भी अन्त कर देती है।[2] विद्या के प्रसंग में सूक्ष्मदर्शी कविवर क्षेमेन्द्र ने सन्मार्ग के विपरीत ले जाने वाली विद्या के इक्कीस भेदों का सूक्ष्म विवेचन किया है। महाकवि कालिदास ने भी इन सूक्ष्म भेदों में एक भेद पण्य विद्या पर क्षेमेन्द्र के समान ही भाव प्रकट किया है।[3] इसी प्रकार के भावों से साम्य रखते हुए अन्य कवियों ने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। विद्या अनेक संशयों को दूर कर परोक्ष- ज्ञान भी प्रदान करती हैं शास्त्र ही सभी केनेत्र हैं। जिसके पास विद्या नहीं है, वह अन्धा ही है।[4] विद्या-विहीन व्यक्ति तो कुत्ते ही उस पूँछ की तरह व्यर्थ है, जो न तो गुह्यगोपान में समर्थ है और न तो दंश निवारण में ही।[5] भोजप्रबन्धकार ने विद्या को सवार्थ-साधिनी

---

1 स्पृहणीया सतां तावद् विद्या सन्तोषशालिनी।
यावन् न पार्थिवास्थानपण्यस्थाने प्रसारिता।। - दर्पदलन 3/7

2 शोच्यतां यत्नशीलेन विद्वेषेणापवित्रताम् ।
दर्पशापहृता विद्या नश्यत्येव सहायुषा।। - दर्पदलन 3/15

3 क. यस्यागमः केवलजीविकायै।
तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।।- मालाविकाग्निमित्र 4/25

ख. परोत्कर्षं समाच्छाद्य विक्रयाय प्रसार्यते।
या मुहुर्धनिनामग्रे किं तया पण्यविद्यया।। - दर्पदलन 3/33

4 अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः।। -हितोपदेश, श्लोक 10

5 शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना।
न गुह्यागोपने शक्तं न च दंशनिवारणे।। - चाणक्यशतक 7/19

कल्पलता बताते हुए कहा है कि विद्या माता सदृश रक्षा, पिता की तरह हित, खेद को दूरकर कान्ता की भाँति आनन्द करने वाली तथा धन-वृद्धि एवं दिशाओं में यश का विस्तार करने वाली है।[1]

धन-वृद्धि, आपत्ति-हरण, यश-विस्तार, मलिनता का नाश और पवित्र-संस्कार से परम पवित्रता इत्यादि लाभ कामधेनु सदृश शुद्ध बृद्धि से ही सम्भव है।[2] यदि किसी के पास सद्विद्या है तो बेचारे पेट को भरने की क्या चिन्ता हो सकती है। भोजन तो शुक भी राम-राम बोलते हुए प्राप्त कर लेता है।[3] विद्या को सभी धनों से प्राप्त बताते हुए कहा गया है कि यह चोर, राजा, भाई द्वारा क्रमशः न तो चुराया जा सकता है, न हरण किया जा सकता है और न ही विभाजित किया जा सकता है। यह धन की तरह भारकारी भी नहीं होता तथा अन्य धनों के अपवाद-स्वरूप यह व्यय करने पर नित्य वृद्धि को ही प्राप्त होता है।[4] मत्स्यपुराण ने भी विद्या को उसकी अहार्यता, अनर्घ्यता एवं अक्षयता आदि गुणों के कारण सभी द्रव्यों में श्रेष्ठता प्रदान की है।[5] भर्तृहरि सभी विषयों की

---

[1] मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते। कान्ते चाभिरयत्यपनीय खेदम् ।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।
-भोजप्रबन्ध, श्लोक 5

[2] श्रियः प्रदुग्धे विपदो रुणद्धि, यशांसि सूते मलिनं प्रमार्ष्टि।।
संस्कारशौचेन परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः।।
- विद्धशालभञ्जिका 1/8

[3] सद्विधा यदि का चिन्ता वराकोदरपूरणे।
शुकोऽप्यशनमाप्नोति रामरामेति च ब्रुवन् ।। - शाङ्र्गधरपद्धति, श्लोक 473

[4] न चौरहार्यं न च राजहार्यं न च भ्रातृ भाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ।। -प्रसङ्गाभरण, श्लोक 8

[5] सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ।। -मत्स्यपुराण, श्लोक 189

उपेक्षाकर विद्याधिकार करने का सदुपदेश देते हुए कहते हैं कि विद्या पुरुष की अतुल कीर्ति, भाग्यक्षय में आश्रय, कामधेनु, विरह में रति और तृतीय नेत्र का नाम है अर्थात् सभी को प्रदान करने वाली है। यह सत्कारायतन, कुल की महिमा एवं रत्नों के विना आभूषण भी है।[1] विद्या गुरू वचन की अपेक्षा नहीं करती, सभी ग्रन्थियों का साम्यक् विभेद करती है, परम रहस्य को प्रकट करती है तथा विमर्श शक्ति भी उत्पनन करती है।[2] इसी प्रकार के विद्या सम्बन्धी विचारों से कविवर क्षेमेन्द्र का लघुकाव्य 'दर्पदलन' ओत प्रोत है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्या के भी विषय में मनीषियों ने प्रशंसात्मक बातें कहते हुए उसे अद्वितीय, सर्वोत्तम एवं सर्वप्रधान बताया हैं। कविवर क्षेमेन्द्र ने भी सद्विद्या को विशेष महत्त्व दिया है, क्योंकि विद्यातो दुर्जन भी प्राप्त कर लेता है, किन्तु वह उसका दुरुपयोग करता है। क्षेमेन्द्र ने विद्या की सार्थकता तब स्वीकार की है जब वह मद का हरण कर सद्विचार प्रदान करे।

परोपकार-विचार-साम्य

पारोपकार स्वयं एक महान गुण है। परोपकार के महत्त्व से संस्कृत-साहित्य के काव्य ग्रन्थ ओत-प्रोत हैं। परोपकार के महत्त्व को जानकर संस्कृत-मनीषियों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। परस्पर सहयोग से ही सामाजिक जीवन चलता है। परोपकार के द्वारा सहयोग की भावना बढ़ती है यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का उपकार करता है, तो

---

1 विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो
धेनुः कामदुधा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विनाभूषणं
तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरु।। -भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह श्लोक 70

2 अनपेक्षितगुरुवचनासर्वान्ग्रन्थीन्विभेदयति सम्यक्
प्रकटयति पररहस्यं विमर्शशक्तिर्निजा जयति।। -सुभाषितावलि, श्लोक 2

दूसरा व्यक्ति भी उसके प्रति उपकार करने के लिए तत्पर रहता है। इस प्रकार मनुष्यों का कल्याण और सुख हो सकता हैं। इसीलिए सज्जन लोग मन, वचन और कर्म से परोपकाररत होते हैं। संसार की सभी वस्तुएँ विनाश शील हैं। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य अच्छे निमित्त के लिए ही अपनी वस्तु का उपयोग करते हैं, जो वस्तु कल नष्ट हो जायेगी, उससे यदि आज किसी कार्य की सिद्धि हो जाय, तो यही अच्छा प्रतीत होता हैं। यही विचार कर बुद्धिमान् सज्जन अपना सब कुछ दूसरों को दे देते हैं। महर्षि दधीचि ने अपने शरीर की हड्डियाँ परार्थ देदी थीं, भूख से पीड़ित रन्तिदेव ने हाथ में रखा हुआ भोजन का थाल परार्थ दे दिया था। यही भावना प्राकृतिक पदार्थों में भी देखी जा सकती है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने तो परोपकारी व्यक्ति के शरीर की सार्थकता को दर्शाते हुए अपने मनोरम विचार व्यक्त किये हैं।[1] उन्होंने अपने लघुकाव्य 'चारुचर्या' में परोपकार को संसार का सार बतलाकर सभी जीवों पर दया करने को कहा है। और एतदर्थ भगवान् बुद्ध का उदाहरण दिया है।[2] इस प्रकार के विचारों से साम्य रखने वाले विचार अन्य कवियों में भी देखे जा सकते हैं। अन्य कवियों के विचार में प्राणों एवं धनों के द्वारा भी परोपकार करना चाहिए। परोपकारजन्य पुण्य सौ यज्ञों द्वारा उत्पन्न पुण्य से बढ़कर है।[3] अन्यत्र भी किसी कवि ने कहा है कि सूर्य, चन्द्र, बादल, वृक्ष, नदी, गाय एवं सज्जन ये सभी परोपकार के ही

---

[1] वन्द्यः स पुंसां त्रिदशाभिवद्यः कारुण्यपुण्योपचयक्रियाभिः।
संसारसारत्वमुपैति यस्य परोपकाराभरणं शरीरम् ।। - चतुर्वर्गसंग्रह 1/16

[2] परोपकारं संसारसारं कुर्वीत सत्त्ववान् ।
निदधे भगवान् बुद्धः सर्वसत्त्वोद्धृतौ धियम् ।। - चारुचर्या, श्लोक 89

[3] परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात्क्रतुशतैरपि।।
- सुभाषितरत्नभाण्डागार, परोपकारप्रशंसा, श्लोक 78

लिए देवनिर्मित है।[1] कवि अनुपकारी व्यक्ति से श्रेष्ठ तो तृण को मानता है क्योंकि घास तो पशुओं को पालता है तथा मरुस्थल में भीरुओं की रक्षा करता है।[2] वस्तुतः इस लोक में हर व्यक्ति अपने लिए तो कार्य में तत्पर रहकर स्वहितकारी कार्य करता है, किन्तु परमार्थ के कार्यों में प्रवृत्त होने वाले विरले ही होते हैं। कवि उसी व्यक्ति के जीवन को सार्थक मानता है, जो परोपकार के लिए ही जीवित रहता है, क्योंकि इस जीवलोक में सभी आत्मार्थ जीवित हैं।[3] शार्ङ्गधरपद्धति में भी कहा गया है कि परोपकारशून्य मनुष्य के जीवन को धिक्कार है पशु का जीवित रहना सार्थक कहा गया है, जिसके चर्म द्वारा भी परोपकार होता है।[4] वृक्ष परोपकार के लिए ही फलते हैं, नदियाँ परोपकार्थ ही बहती हैं, गायें परोपकार हेतु ही दूध देती हैं, और यह शरीर भी परोपकारार्थ ही निर्मित है।[5] सूर्य कमल-समूहों को विकसित करता है तथा चन्द्रमा कुमुदिनी को विकसित करता है एवं बादल परोपकारार्थ ही वर्षा करते हैं। उसी तरह सन्त

---

[1] रविचन्द्रौ घना वृक्षा नदी गावश्च सज्जनाः।
ऐते परोपकाराय युगे देवेन निर्मिताः।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, परोपकारप्रशंसा, श्लोक 3

[2] तृणं चाहं वरं मन्ये नरादनुपकारिणः।
घासो भूत्वा पशून् पाति भीरून् पाति - वही श्लोक 4

[3] आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन्को न जीवति मानवः।
परपरोपकारार्थं यो जीवति स जीवति।।
-सुभाषितरत्नभण्डागार, परोपकारप्रशंसा, श्लोक 6

[4] परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम् ।
जीवन्तु पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति।। -शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 1478

[5] परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकारस्य वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम् ।।
-विक्रमोर्वशीयम् , श्लोक 66

लोग भी परहित में सभी कार्य करते है।[1] इसी प्रकार के भाव कविकर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य 'दर्पदलन' एवं 'चारूचर्या' में भी सर्वत्र देखने को मिलते हैं।

सत्य-विचार-साम्य

'सत्य' एक महान् धर्म एवं परमेश्वर का रूप है। सत्य भाषण से महान् पुण्य होता है। इस लोक में भी मनुष्य सत्य भाषण से सुख और शान्ति प्राप्त करता है। इसीलिए सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं माना गया है और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं माना गया है ("न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं महत्") सत्य से व्यक्ति लोक प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है, सत्य के बल से महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वर्ग प्राप्त कर लिया था। महात्मा गाँधी जी का 'सत्य' परम अस्त्र था। अतः मानव जीवन में सत्य पालनीय है। कविवर क्षेमेन्द्र ने तो अपनी सूक्त्यात्मक एवं उपदेशप्रधान शैली में मनुष्य को सत्यव्रत भङ्ग न करने का उपदेश दिया है।[2] इसी तरह अन्य मनीषियों ने भी सत्य की खूब सराहना की है। सराहना भी क्यों न करें, क्योंकि सत्य ही इस लोक और परलोक में भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। सत्य ही सबकी वाणी को उसी तरह भूषित करता है, जिस प्रकार कुलास्त्रियों को लज्जा।[3] मनुस्मृति में सत्य की महिमा का गान किया गया है। सत्य को अतुलनीय ही कहा गया है। यदि सहस्र अश्वमेध यज्ञ एवं

---

1 पद्माकरं दिनकरो विकचं करोति
चन्द्रो विकसायति कैरवचक्रवालम् ।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगः।। -भर्तृहरिशतकत्रय, 2/65

2 न सत्यव्रतभङ्गेन कार्यं धीमान् प्रसाधयेत् ।
ददर्श नरकक्लेशं सत्यनाशाद् युधिष्ठिरः।। -चारुचर्या, श्लोक 14

3 सूनृतं सर्वशास्त्रार्थनिश्चितज्ञानशोभितम् ।
भूषणं सर्ववचसां लज्जेव कुलयोषिताम् ।। -प्रसंगाभरण, श्लोक 15

सत्य भाषण के फल को तुला के पलड़ों में रखा जाय, तो सहस्र अश्वमेध यज्ञ से सत्य ही विशिष्ट स्थान प्राप्त करेगा। यह कथन लोक प्रसिद्ध है कि पृथ्वी सत्यवादियों के बल पर ही टिकी हुई है। इसी तथ्य को पुष्ट करते हुए किसी कवि ने कहा है कि गाय, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, अलोभी एवं दानशूर इन सातों द्वारा ही पृथ्वी धारण की जाती है।[1] सत्य की सराहना कविवर क्षेमेन्द्र ने भी की है, जो उनके लघुकाव्य 'दर्पदलन' में धर्म सम्बन्धी विचार के अन्तर्गत वर्णित है।

सत्संगति-विचार-साम्य

सत्संगति की महिमा बहुत ही अपार है, जिसकी महिमा से हमारे संस्कृत-साहित्य के ग्रन्थ भरे पड़े हैं। अधिकांश नीतिकार कवियों ने सत्संगति की प्रशंसा कर उसे मानवमात्र के लिए जीवन परिवर्तन का एक उत्तम साधन माना है। सत्यसंगति से विभिन्न प्रकार के लाभ होते हैं। सज्जन मनुष्य की अच्छी संगति पाकर दुर्जन व्यक्ति भी सज्जन हो जाता है तथा उसके समस्त दुर्गुण और दोषों का स्वयं शमन हो जाता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि 'कीड़ा भी पुष्प की संगति पाकर सज्जन पुरुषों के सिर पर चढ़ जाता है।' सत्संगति के प्रभाव से ही लुटेरा रत्नाकर आदि कवि वाल्मीकि बन गया था। विद्योत्तमा की संगति के प्रभाव से ही कालिदास इतने महान् कवि बन गये थे। वास्तव में सत्संगति के प्रभाव से असंभव भी संभव हो जाता है। इस प्रकार के संस्कृत-साहित्य में अनेकानेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार प्रकृत कवि क्षेमेन्द्र ने भी सत्संगति की महिमा का वर्णन अपने लघुकाव्यों में भूयशः किया है। उन्होंने अपनी उपदेशप्रधान एवं सूक्त्यात्मक शैली के द्वारा सत्संगति के विषय में

---

[1] गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशूरैश्च सप्तभिधार्यते मही।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागर, सत्यप्रशंसा, श्लोक 3

अनेकानेक मनोरम विचार प्रस्तुत किये हैं। इसी प्रकार के भाव-साम्य अन्य संस्कृत नीतिकारों एवं साहित्यकारों के काव्यों में भी देखे जा सकते हैं। पंचतन्त्रकार विष्णु शर्मा ने कहा है कि महापुरुष का सम्पर्क किसे उन्नति प्रदान नहीं करता कमल पत्र पर स्थित जल मुक्ताफल की भाँति सुशोभित होता है।[1] अन्यत्र भी कहा गया है कि महानुभाव के संसर्ग में सभी उन्नति को प्राप्त करते हैं। भगवान् द्वारा शंख को हाथ में लेने से वह पृथ्वी पर पवित्र माना गया है।[2] मलयाचल के गन्ध से ईंधन की लकड़ी भी सुगन्धित हो जाती है।[3] इस लोक में चन्दन शीतल माना गया है और चन्दन से शीतल चन्द्रमा है, किन्तु चन्द्रमा और चन्दन के मध्य शीतल सत्सङ्गति है।[4] साधुजन का दर्शन पुण्यप्रद होता है, क्योंकि साधु तीर्थभूत होते हैं। तीर्थ का फल समय आने पर प्राप्त होता है, किन्तु साधु सम्पर्क तो तुरन्त फल प्रदान करने वाला है।[5] जल बिन्दु तो सीपी के सम्पर्क से मुक्ता के रूप में परिवर्तित हो जाता है।[6] इसीलिए सज्जन सम्पर्क के

---

1 महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ।। -पञ्चतन्त्र, 3/59

2 महानुभाव संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
हरिहस्तगतः शङ्खः पवित्रः प्रथितो भुवि।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, सत्संगतिप्रशंसा, श्लोक 3

3 मलयाचलगन्धेन त्विन्धनं चन्दनायते।
तथा सज्जनसङ्गेन दुर्जनः सज्जनायते।। -वही, श्लोक 4

4 चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसङ्गतिः।। -वही, श्लोक 6

5 साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः।। -शुकसप्तति 68/1

6 करोति निर्मलाधारस्तुच्छस्यापि महार्घताम् ।
अम्बुनो बिन्दुरल्पोऽपि शुक्तौ मुक्ताफलं भवेत् ।। -शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 5

लिए मनीषियों ने बल दिया है। पुष्प के सम्पर्क में रहने के कारण कीट भी सज्जनों के शिर पर चढ़ जाता है, जिस प्रकार पत्थर महान लोगों द्वारा सुप्रतिष्ठित करने पर देवत्व को प्राप्त करता है।[1] सुभाषितावलि में किसी कवि ने कहा है कि यदि व्यक्ति सत्संग करेगा तो उसके सृजनात्मक कार्य होंगे, किन्तु यदि वह दुर्जन संसर्ग करता है, तो पतन को प्राप्त करता है।[2] भर्तृहरि का यह कथन तो बहुत ही प्रसिद्ध है कि सत्संग जन्म बुद्धि की जड़ता का हरण करता है, सत्यवाणी का सेचन करता है, मानोन्नति को बढ़ाता है, पाप को दूर करता है तथा समस्त दिशाओं में कीर्ति का विस्तार करता है- इस प्रकार सत्संग से मनुष्य क्या नहीं प्राप्त करता है? अर्थात् सभी उपलब्धियाँ सम्भव हैं।[3]

सन्तोष-विचार-साम्य

कविवर क्षेमेन्द्र ने सन्तोष को ही परम सुख माना है। इसी तथ्य का प्रतिपादन इसके पूर्वापर मनीषियों ने भी किया है। जिस प्रकार मनुष्य को बिना सोचे अचानक दुःख एवं सुख की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार दीनता की भी वृद्धि सम्भव है।[4] विष्णु शर्मा कहते हैं कि सर्प पवन का पान करते हैं फिर भी दुर्बल नहीं होते हैं, सूखे तृण पत्तों से हाथी बलवान् होते हैं, कन्दमूल एवं फल

---

1 कीटोऽपि सुमनःसङ्गादारोहति सतां शिरः।
अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः।। -सुभाषितावलि, श्लोक 46

2 यदि सत्संगतिरतो भविष्यसि भविष्यसि।
अथ दुर्जनसंसर्गे पतिष्यसि पतिष्यसि।। -सुभाषितावलि, श्लोक 461

3 जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपा करोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।। -भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह, श्लोक 42

4 अचिन्ततानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम् ।
सुखान्यपि तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते।। -शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 7

इत्यादि के सेवन से मुनि लोग अधिक समय व्यतीत करते हैं अर्थात् अधिक आयु वाले होते हैं। इसलिए स्पष्ट है कि सन्तोष ही पुरुष का परम सुख है।[1] धन चाहने वाला दीनता दिखाता है, अर्थ प्राप्त करने वाला धनी गर्वयुक्त एवं असन्तुष्ट होता है और धन के नष्ट हो जाने पर वह शोकाकुल हो जाता है। वस्तुतः सुख तो वही व्यक्ति प्राप्त करता है जो निःस्पृह रहता है।[2] भले ही कोई पाँचवें या छठे दिन घर में शाक मात्र बनाकर भोजन करे, किन्तु जो ऋण मुक्त हो और प्रवास न कर रहा हो वही प्रसन्न होता है।[3] कवि ने कहा है कि संन्यासी वल्कलों से सन्तुष्ट है और धनी धन से सन्तुष्ट है। दोनों तोष समान हैं, उसमें कोई विशेष विशेषता नहीं है। वस्तुतः दरिद्र तो वह है जिसको तृष्णा अधिक होती है। मन से सन्तुष्ट होने पर न काई धनी है और न कोई दरिद्र ही।[4] भर्तृहरि ने भी सन्तोष में सुख की अनुभूति करते हुए कहा है कि अकिञ्चन, दान्त,

---

1 सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति।
कन्दैः फलैर्मुनिवराः क्षपयन्ति कालं
सन्तोष एव पुरुषस्य वरं निधानम् ।। -पञ्चतन्त्र 2/159

2 अर्थी करोति दैन्यं लब्धार्थो गर्वमपरितोषं च।
नष्ट धनश्च स शोकं सुखमास्ते निःस्पृहः पुरुषः।। -शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 319

3 पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति यो गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते।। -वही, श्लोक 314

4 वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
स हि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।। -वही, श्लोक 308

शान्त, समबुद्धि वाले तथा सदा सन्तुष्ट मन वालों के लिए तो सभी दिशायें सुखमय ही होती हैं।[1]

क्षेमेन्द्रप्रतिपादित व्यङ्ग्यपरक विषयों पर अन्य कवियों के भावों की समता

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्य वस्तुतः समाज के लिए है, जिसमें वे समाज के गुण-दोषों का विवेचन करते हुए गुण की प्रशंसा एवं दोष की निन्दा करते हैं। संस्कृत-साहित्य के अनेक कवियों एवं विचारकों ने भी समाज के सत्पक्ष की प्रशंसा एवं दुष्पक्ष की निष्पक्ष भाव से निन्दा की है। कविवर क्षेमेन्द्र ने विद्या, धन, दान, विनय, परोपकार, सत्य एवं सन्मित्र की प्रशंसा के विषय में भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये हैं तथा दुर्जन, कृपण, कुवैद्य, कुगणक, कुकवि, स्त्रीस्वभाव, कुपण्डित, कायस्थ आदि विषयों पर कटु शब्दों में व्यङ्ग्य रूप में विचार व्यक्त किये हैं जिसकी समता अन्य कवियों में भी देखी जा सकती है-

दुर्जन-विचार-साम्य

दुर्जन समाज का एक ऐसा तत्त्व माना गया है, जो सदैव समाज में रहता हुआ सज्जन लोगों को कष्ट पहुँचाने में कार्यरत रहता है। दुर्जनों से सज्जन सदैव भयभीत व संत्रस्त भी रहते हैं। कवि समाज-सुधारक के रूप में भी कार्य करता है। वह साहित्य के माध्यम से समाज के सत्पक्ष एवं कुत्सित पक्ष दोनों का यथार्थ दर्शन कराने में समर्थ होता है। दुष्टों की दुष्टता पर प्रायः सभी कवियों ने कटु व्यङ्ग्य किया है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज के शोषकों में दुर्जन को मुख्य अङ्ग माना है। उन्होंने दुर्जन के विषय में विचार व्यक्त करते हुए उसे बहुत ही स्वान्तः सुखाय

---

[1] अकिंचनस्य दान्तस्य शान्तस्य सम चेतसः।
सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः।। -भर्तृहरिशतकत्रय 3/100

वाली स्वार्थी वृत्ति का बहुत ही संकुचित मानसिकता वाला तथा सज्जनों से अकारण ही द्वेष करने वाला बताया है। उनके विचार में दुर्जन व्यक्ति मूर्ख होकर भी विद्वान होता है, क्योंकि वह अपने गुणों का वर्णन करने में शेषनाग के समान तथा दूसरों की निन्दा करने में बृहस्पति के समान होता है।[1] कविवर ने दुर्जन को स्वभाव से ही मायामय, राग, द्वेष, और मद से भरा बड़े व्यक्तियों को भुलावे में डालने वाला बतलाकर उसकी निन्दा की है।[2] क्षेमेन्द्र ने दुर्जन को सर्प से उपमित करते हुए उसे निष्कारण हिंसक बताया है। इसी प्रकार का भाव अन्यत्र भी मिलता है।[3] क्षेमेन्द्र ने अपनी अन्तर्वेदना को व्यक्त करते हुए राजा के दुर्जन स्वभाव होने पर, जिससे राजा की सम्पूर्ण प्रजा का सम्बन्ध है, प्रजा की क्या स्थिति होगी अर्थात् अत्यन्त दुःखद स्थिति ही होगी। जब एक सामान्य दुर्जन से अनेक जीव त्रस्त होते हैं, तो राजा के दुर्जन स्वभाव होने पर समस्त प्रजा कहाँ जायेगी[4]? इसी प्रकार के दुर्जनों से सम्बन्धित विचारों पर अन्य कवियों ने भी लेखनी चलाई है। वैसे तो मेरे विनम्र विचार में दुर्जनों का बरबस सम्पर्क सज्जनों से रहा है, क्योंकि उनकी दुष्टता का सफल प्रयोग सज्जनों पर ही सम्भव है। इसीलिए कवि ने दुर्जन की वन्दना सज्जन से पहले करने की यह

---

[1] अहो बत खलः पुण्यैर्मूर्खोऽप्यश्रुतपण्डितः।
स्वगुणोदीरेण शेषः परनिन्दासु वाक्पतिः।। -देशोपदेश 1/9

[2] मायामयः प्रकृत्यैव रागद्वेषमदाकुलः।
महतामपि मोहाय संसार इव दुर्जनः।। -देशोपदेश 1/12

[3] क. निष्कारणनृशंसस्य शौर्यं हिंस्रत्वमुच्यते।
यः सर्पः इव संनद्ध प्राणबाधाय देहिनाम् ।। -दर्पदलन 5/22

ख. मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणमेव वैरिणो जगति।। -नीतिशतक, पद्य 51

[4] खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रभविष्णुना।
पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे क्व गमिष्यसि।। -देशोपदेश 1/17

बात कहते हुए की है कि मुख प्रक्षालन के पूर्व गुदा प्रक्षालन किया जाता है।[1] सूकर द्वारा दुर्गन्ध ग्रहण की भाँति दुर्जन दोष ग्रहण करता है, जबकि सज्जन हंसवत् गुणग्राही होता है।[2] मन एवं वाणी में भिन्नता दुरात्माओं का तथा मन और वाणी का एक समान होना महात्माओं के लक्षण हैं।[3] सज्जन और अभिमानी दुर्जन में स्पर्धा नहीं हो सकती, क्योंकि भाषण एवं दूषण दोनों विपरीत भूषण क्रमशः सज्जन एवं दुर्जन के हैं।[4] सज्जन तो नित्य परोपकाररत रहता है, किन्तु दुर्जन तो सर्वदा पर अपकार में ही लिप्त रहता है।[5] इसी लिए कहा गया है कि पाषाण, वज्र सर्प आदि क्रमशः टङ्क (छेदी), वज्र व मन्त्रों से परास्त किये जा सकते हैं, किन्तु दुष्टात्मा परास्त नहीं किया जा सकता है।[6] अन्यत्र भी कहा गया है कि कोटि यत्न के बाद भी दुष्ट सज्जन नहीं हो सकता, जिस प्रकार लहसुन

---

1 दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम् ।
मुखप्रक्षालनात्पूर्वं गुदाप्रक्षालनं यथा।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, दुर्जन निन्दा, श्लोक, 34

2 दुर्जनो दोषमादत्ते दुर्गन्धिमिव सूकरः।
सज्जनश्च गुणग्राही हंसक्षीरमिवाम्भसः।। -वही, श्लोक 46

3 मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कार्ये चान्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।। -चाणक्यशतक 2/60

4 का खलेन सह स्पर्धा सज्जनस्याभिमानिनः।
भाषणं भूषणं साधुदूषणं यस्य भूषणम् ।। -चाणक्यशतक 4/35

5 यथा परोपकारेषु नित्यं जागर्ति सज्जनः।
तथा परापकारेषु जागर्ति सततं खलः।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, दुर्जननिन्दा, श्लोक 107

6 पाषाणो भिद्यते टङ्कैर्वज्रं वज्रेण विद्यते।
सर्पोऽपि भिद्यते मन्त्रैर्दुष्टात्मानैव भिद्यते।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, दुर्जननिन्दा, श्लोक 45

कस्तूरी में मृदित होने पर भी सुगन्धित नहीं हो सकता।[1] खल साधु सज्जनों द्वारा बोधित होने पर भी साधुता ग्रहण नहीं कर सकते, जिस प्रकार क्षार कभी मधुर नहीं हो सकता।[2] अन्यत्र भी अनेक उपायों के बावजूद खल साधु नहीं हो सकता- ऐसा मत व्यक्त किया गया है।[3] वस्तुतः खल व्यक्ति दुष्टता में ही आनन्द प्राप्त करता है। वह कभी सज्जनता स्वीकार नहीं कर सकता। इस तथ्य को कविवर क्षेमेन्द्र ने भी स्वीकार करते हुए कहा है कि अगर दैवयोग से खल सज्जनता अपनाता है तो मानो वन में दोनों हाथ उठाकर बन्दर तप करता है।[4] दुर्जन वस्तुतः सहजद्वेषी होता है। वह दूसरों के अल्पदोष को भी देखता है, किन्तु अपने द्वारा किये जा रहे केवल दोषपूर्ण कार्यों पर ध्यान ही नहीं देता है।[5] पर ईर्ष्या में लौह पिण्ड की भाँति जलते हुए खल के हृदय पर गुण रूपी जलबिन्दु निष्प्रभावित होते हैं।[6] सज्जन सबके दोषों को ध्यान नहीं देता है, किन्तु दुष्ट भले लोगों की बुराई में चारों तरफ आखें गढ़ाये और मुह बनाये रहता है।[7]

---

1 न यत्नकोटिशतकैरपि दुष्टः सुधीर्भवेत् ।
किं मर्दितोऽपि कस्तूर्या लशुनो याति सौरभम् ।। -वही, श्लोक 44

2 खलो न साधुतां याति सद्भिः संबोधितोऽपि सन् ।
सरित्पूरप्रपर्णोऽपि क्षारो न मधुरायते।। -वही, श्लोक 29

3 दुर्जनो नार्जवं याति सेव्यमानोऽपि नित्यशः।
स्वेदनाभ्य जनोपायैः श्वपुच्छमिव नामितम् ।। -हितोपदेश 3/23

4 खलः प्रववृत्ते दैवादार्जवे सुजनस्य यत् ।
तदूर्ध्वबाहुर्विपिने मर्कटः कुरुते तपः।। -देशोपदेश 1/20

5 खलः सर्षपमात्राणि परछिद्राणि पश्यति।
आत्मनो विल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति।। -महाभारत 1/3069

6 अयः पिण्ड इवोत्तप्ते खलानां हृदये क्षणात् ।
पतिता अपि नेक्ष्यन्ते गुणास्तोपकणा इव।। -शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 21

7 खलः सुजनपैशुन्ये सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतः श्रुतिमान् लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।। -देशोपदेश 1/10

क्षेमेन्द्र चाहते हैं कि ईर्ष्यारूपी गले के रोगी दुष्ट की जीभ संड़ासी (कंकमुख) से पकड़कर खींचने पर भी उससे भले ही प्रशंसा नहीं निकल सकती है।[1] इसीलिए हितोपदेशकार ने विद्यालंकृत दुर्जन को भी छोड़ देने के लिए यह तर्क देते हुए कहा है कि मणि से भूषित सर्प भी भयङ्कर होता है।[2] उसके साथ किया हुआ उपकार भी उसकी दृष्टि में अपकार ही हो जाता है। जिस प्रकार सर्प को दूध पिलाने पर उसका विष ही बढ़ता है।[3] काव्यप्रदीप में दुर्जन के दुर्वचन व उसके अहङ्कार कथन का विवेचन करते हुए कहा गया है कि हे हालाहल! मैं ही इस संसार में सबसे भयंकर हूँ। इस बात को लेकर तुम दर्प मत करो, क्योंकि आप जैसे भयंकर दुर्जनों के दुर्वचन तो पहले से ही विद्यमान है।[4] भर्तृहरि भी दुरात्मा के स्वाभाविक कार्यों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह करुणा रहित, अकारण विवाद करने वाला, दूसरे के धन एवं स्त्री की आकांक्षा रखने वाला, सज्जनों के साथ असहिष्णुता का व्यवहार करने वाला होता है।[5] सज्जन एवं

---

1 सत्साधुवादे मूर्खस्य मात्सर्यगलरोगिणः।
जिह्वा कङ्कमुखेनापि कृष्टा नैव प्रवर्तते।। -देशोपदेश 1/11

2 दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः।। -हितोपदेश 1/89

3 उपकारोऽपि नीचानामपकारो हि जायते।
पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, दुर्जननिन्दा, श्लोक 10

4 अहमेव गुरुः सुदारुणानामिति हालाहल मास्म तात दृप्यः।
ननु सन्ति भवादृशानि भूयो भुवनोस्मिन्वचनानि दुर्जनानाम् ।।
-काव्यप्रदीप 10/556

5 अकरुणत्मकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।।
-भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह, श्लोक 61

दुर्जन के व्यवहारों में ठीक विपरीतावस्था होती है। बुद्धिमान् सज्जन लोग गुण की भाँति परदोष कथन में सक्षम होते भी नहीं कहते हैं, किन्तु खल व्यक्ति स्वगुणवर्णन की भाँति परदोष कथन में ही निपुण होता है।[1] वह वन्दनीय की निन्दा करता है, दुःखी लोगों पर हँसता है, बान्धवों को पीड़ित करता है, शूरों से द्वेष करता है, धन हीनों का निरादर करता है, आश्रितों को अनुशासित करता है तथा गुह्य पर दोषों को प्रकट करता है -इस प्रकार वह गुण को छोड़कर दोषों को ही ग्रहण करता है।[2] अन्यत्र किसी कवि ने कहा है कि कष्टकारी विशिख (बाण) एवं व्याल (सर्प) के अन्तिम वर्णों अर्थात् 'ख' एवं 'ल' निर्मित जो 'खल' व्यक्ति है, वह अपनी अनुचित पीड़ादायक कार्यों से दूसरों के प्राणों को हरता है।[3] विषधर सर्प सदृश विषम आचरण करने वाला मलिन आत्मा वाला दुष्ट व्यक्ति नित्य लोगों को कष्ट पहुँचाता हुआ सबका उद्वेजक होता है- ऐसा शार्ङ्गधरपद्धति में भी वर्णित है।[4] चाणक्य ने अपने नीतिदर्पण में कहा है कि विषधर जीव सर्प, मक्षिका, बिच्छू आदि के एक अंग विशेष क्रमशः दन्त, शिर

---

[1] स्वगुणानिव परदोषान् वक्तुं न सतोऽपि शक्नुवन्ति बुधाः।
स्वगुणानिव परदोषान् सतोऽपि खलास्तु कथयन्ति।। -सुभाषितावलि, श्लोक 410

[2] वन्द्यान्निन्दति दुःखितानुपहसत्याबाधते बान्धवा-
ञ्छूरान्द्वेष्टि धनच्युतान्परिभवत्याज्ञापयत्याश्रितान् ।
गुह्यानि प्रकटीकरोति घटयन् यत्नेव वैराशयं व्रते
शीघ्रमवाच्यमुज्झति गुणान् गृहणाति दोषान्खलः।। -सुभाषितावलि, श्लोक 459

[3] विशिखव्यालयोरन्त्यवर्णाभ्यां यो विनिर्मितः।
परस्य हरति प्राणान्नैतच्चित्रं कुलोचितम् ।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, दुर्जननिन्दा, श्लोक 3

[4] विषमा मलिनात्मानो द्विजिह्वा जिह्मगा इव।
जगत्प्राणहरा नित्यं कस्य नोद्वेजकाः खलाः।। -शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 353

एवं पूँछ में विष होता है, किन्तु दुर्जन का तो सर्वाङ्ग विषयुक्त होता है।[1] अन्यत्र किसी कवि का कथन है ऐसा हो सकता है कि सर्प मित्रता का आचरण करे, किन्तु दुर्जन कभी मित्रता का अचरण नहीं कर सकता है। भगवान् विष्णु ने शेषनाग की शय्या पर शयन किया, किन्तु दुर्योधन भगवान् के पक्ष में नहीं था।[2] इसलिए भर्तृहरि ने कहा कि सर्प एवं दुर्जन के मध्य सर्प ही अच्छा है। दुर्जन नहीं, क्योंकि सर्प तो समय पर ही डसता है किन्तु दुर्जन तो हर पग पर संत्रस्त करता है।[3] अन्यत्र भी उन्होंने कहा है कि सर्प भी क्रूर तथा खल भी क्रूर होता है, किन्तु सर्प से खल अधिक क्रूर होता है। मन्त्र प्रयोग से तो सर्प शान्त भी हो सकता है, किन्तु दुर्जन कभी शान्त ही नहीं होता है।[4] अन्यत्र भी कहा गया है कि जिस प्रकार सर्प को दूध पिलाने पर विषवर्धन ही होता है और सिंह का पालन करने पर भी बलशाली होकर वह सिंह पालक को ही मार डालता है, उसी प्रकार दुष्टों के साथ उपकार करना भी अनर्थकारी ही रहता है, इसलिए विद्वान् को कभी भी इन पर विश्वास नहीं करना चाहिए।[5] इस प्रकार स्पष्ट है कि

---

1 तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकाया विषं शिरः।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छं सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम् ।। -चाणक्यनीतिदर्पण 17/8

2 क्वचित्सर्पोऽपि मित्रत्वमियान्नैव खलः क्वचित् ।
न शेषशायिनोऽप्यस्य वशे दुर्योधनो हरेः।। -
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, दुर्जननिन्दा, श्लोक 9

3 सर्पदुर्जनयोर्मध्ये वरं सर्पो न दुर्जनः।
सर्पो दशति कालेन दुर्जनस्तु पदे पदे।। -वही, श्लोक 784

4 सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात्क्रूरतरः खलः।
मन्त्रेण शाम्यते सर्पो न खलः शाम्यते कदा।। -भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह, श्लोक 785

5 संवर्धितोऽपि भुजगः पयसा न वश्यस्
तत्पालकानपि निहन्ति बलेन सिंहः।
दुष्टैः परैरुपकृतस्तदनिष्टकारी

दुष्ट समाज का सदैव विध्वंसक तत्त्व होने के कारण विद्वानों द्वारा निन्दित रहा है।

कृपण-विचार-साम्य

कृपण की स्थिति बहुत ही अपवादस्वरूप मानी गयी है। वह धन संचय में सुखानुभव करता है। वह न तो स्वतः धन का उपभोग करता है और न ही उसका खर्च देखना चाहता है, वह ऐसी परिस्थिति में धनोपभोग से वञ्चित रहता हुआ विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों द्वारा निन्दित एवं उपहसनीय रहा है। कविवर क्षेमेन्द्र वस्तुतः अपने समय के समाज के सूक्ष्म आलोचक थे, जिनके कटु वचनों के प्रहार से समाज का कोई भी दूषित पहलू अछूता नहीं रहा है। उन्होंने कृपणों के दोषों पर अच्छे खासे विचार व्यक्त किये है। उनके विचार में कृपण सामाजिक प्राणी कहलाने के अधिकारी ही नहीं हैं। कृपण के पास से उसके समस्त बन्धु-बान्धव निराश होकर ही लौटते हैं, कृपण की वाणी में मधुरता का अभाव होता है, क्योंकि कृपण पूर्ण रूप से नीरस स्वभाव वाला होता है। क्षेमेन्द्र ने कृपण को बड़े मनोहारी ढङ्ग से प्रस्तुत किया है।[1] क्षेमेन्द्र ने कृपण को बहुत ही स्वार्थी प्रवृत्ति वाला तथा उसे स्वकार्य की पूर्ति के लिए लाभ प्रात्यर्थ चाण्डाल के चरणों को भी चूम लेने वाला बताया है।[2] कृपण निष्ठुर, निरपेक्ष, शठ व आर्जवरहित आदि लक्षणों से परिपूर्ण होता है।[3] इसी प्रकार के

विश्वासलेश इह नैव बुधैर्विधेयः।। -संस्कृपाठकोपकारतत्त्वबोधिनी, श्लोक 48

1 नीरसस्य कदर्यस्य माधुर्यं वचने कथम् ।
गृहे लवणहीनस्य लावण्यं वदने कुतः।। -देशोपदेश 2/2

2 चण्डालस्यापि साहाय्ये दृष्ट्वा लाभलवोद्गतिम् ।
चरणौ चूषति चिरं कदर्यः कार्यगौरवात् ।। -देशोपदेश 2/24

3 नैष्ठर्यं नैरपेक्ष्यं च शाठ्यं क्रौर्यमनार्जवम् ।
कृतविस्मरणं यच्च तत् कदर्यस्य लक्षणम् ।। -देशोपदेश 2/28

मिलते जुलते भाव-साम्य अन्य कवियों में भी देखे जा सकते हैं। अन्यत्र भी कविवर क्षेमेन्द्र से मिलता-जुलता भाव व्यक्त किया है, जिसमें कहा गया है कि कृपण के समान कोई दाता नहीं है।[1] वस्तुतः उसका धन नहीं वह तो कृपण के हृदय में व्याधि है, वह उसकी पीड़ा है, क्योंकि उस सञ्चय से उसे अस्वस्थता, क्लेश, तृष्णा एवं मोह ही उत्पन्न कर कष्ट प्रदान करता है।[2] भोजप्रबन्ध में भी कृपण के धन को न देय व अभोग्य बताते हुए उसके स्पर्श को भी नपुंसक द्वारा स्त्री स्पर्श की भाँति निष्फल ही बताया गया है।[3] हितोपदेशकार ने भी कृपण को श्वास लेता हुआ भी मृतक बताया है, क्योंकि वह दानोपभोगरहित धनयुक्त दुःखी जीवन व्यतीत करता है।[4] सुभाषितवलि में भी कृपण को विरागी द्वारा स्त्रीस्पर्श सदृश ही बताया गया है जो धन स्पर्श करता हुआ भी उसका उपभोग नहीं करता है।[5] शार्ङ्गधरपद्धति में कहा गया है कि कृपण समृद्ध होता हुआ भी उसके उपभोग से वञ्चित रहता है, जिस प्रकार फलयुक्त किंशुक पर स्थित शुक

---

[1]क. कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति।
अस्पृशन्नेव वित्तानि यः परेभ्यः प्रयच्छति।। -कवितामृतकूप, श्लोक 29

ख. कोऽन्यः कदर्यसदृशो दाता जगति जायते।
नाश्नात्यदत्त्वा योऽर्थिभ्यो गलेहस्तं गृहेर्गलम् ।। -देशोपदेश 2/12

[2] यत्करोत्यरतिं क्लेशं तृष्णां मोहं प्रजागरम् ।
न तद्धनं कदर्याणां हृदये व्याधिरेव सः।। -गुणरत्न, श्लोक 2

[3] न दातुं नोपभोक्तुं च शक्नोति कृपणः श्रियम् ।
किं तु स्पृशति हस्तेन नपुंसक इव स्त्रियम् ।। -भोजप्रबन्ध, श्लोक 70

[4] दानोपभोगरहिता दिवसा यस्य यान्ति वै।
स कर्मकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति।। -हितोपदेश 2/11

[5] नोपभुक्तमपि क्लीबो जानात्युपचितां श्रियम् ।
ग्राम्यो विरागयत्येव रमयन्नपि कामिनीम् ।। -सुभाषितावली, श्लोक 2676

भूखा ही रहता है।[1] इस प्रकार सभी विद्वानों द्वारा कृपण की समृद्धि होते हुए उसके उपयोग वञ्चित ही बताया गया है। कविवर क्षेमेन्द्र ने भी कहा है कि जिस प्रकार श्रोत्रहीन के लिए वीणा, चक्षुहीन के लिए चञ्चल नेत्रों वाली, प्राणहीन व्यक्ति के लिए फूलों की माला निष्फल है, उसी प्रकार कृपण व्यक्ति के लिए उसका धन निष्फल है।[2] अन्यत्र भी कृपण द्वारा घर में भोग करते हुए सञ्चित धन को कन्यासदृश बताया गया है जो घर में दूसरे के लिए रक्षित होती है।[3] वस्तुतः कृपण को धन के अर्जन, रक्षण एवं खर्च होने पर तीनों परिस्थितियों में कष्ट ही प्राप्त होता है।[4] कविवर क्षेमेन्द्र भी कहते हैं कि धनसंचय, भोग एवं खर्च तीनों परिस्थितियों में कष्टदायक ही है, जिसे कृपण प्राप्त करता है।[5] वह कृपण द्रव्य के भय से सुहृदों से प्रीति नहीं प्रकट करता है तथा तरह-तरह के ब्याज कर उनसे मुक्त होने का प्रयास करता है।[6] इसी तरह कविवर क्षेमेन्द्र ने भी उत्तमभाव प्रकट किया है। कृपण स्वजनों को अपने घर आया देखकर पत्नी से

---

1 किंशुके किं शुकः कुर्यात्फलितेऽपि बुभुक्षितः।
अदातरि समृद्धेऽपि किं कुर्युरुपजीविनः।। -शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 1372

2 वीणेव श्रोत्रहीनस्य लोलाक्षीब विचक्षुषः।
व्यसोः कुसुममालेव श्रीः कदर्यस्य निष्फला।। -दर्पदलन 2/51

3 उपभोगकातराणां पुरुषाणामर्थसंचयपराणाम् ।
कन्यामणिरिव सदने तिष्ठत्यर्थः परस्यार्थे।। -सुभाषितावलि, श्लोक 482

4 ते मूर्खतरा लोके येषां धनमस्ति नास्ति च त्यागः।
केवलमर्जनरक्षणवियोगदुःखान्यनुभवन्ति।। -सुभाषितावलि, श्लोक 482

5 यदर्जितं परिक्लेशैरर्जितं यत्र भुज्यते।
विभज्यते पदन्तेऽन्यैः कस्यचिन् मास्तु तद्धनम् ।। -दर्पदलन 2/8

6 प्रीतिं न प्रकटीकरोति सुहृदि द्रव्यव्ययशङ्कया
भीतः प्रत्युपकारकारणभयान्नकृष्यते सेवया।
मिथ्या जल्पति वित्तमार्गणभयार्त्ततुल्यापि न प्रीतये
कीनाशो विभवव्ययव्यतिकरत्रस्तः कथं प्रणिति।। -सुभाषितावलि, श्लोक 493

कलह एवं बहाना कर अनशन कर रात व्यतीत करता है। वह सायं नवागत से कुशल प्रश्न नहीं करता, न सुनता है केवल रात्रि भोजन मात्र के भय से।[1] वह स्वपत्नी के साथ समागम भी इस भय से नहीं करता उसके पुत्र हो गया तो वह उसके धन का हरण कर लेगा।[2] अन्यत्र उसकी वञ्चना चातुरी का वर्णन किया गया है।[3] कविवर क्षेमेन्द्र भी तत्सम्बन्धी न्यूनता का वर्णन करते हैं कि खरचने में डरपोक लड़के के काम काज में पुरोहित को कुछ न देने वाले कंजूस की पत्नी अपने यार के साथ मौज उड़ाने में खरचती है।[4] कृपण निन्दा वस्तुतः प्रेरणादायक ही है, जिससे धन के उपभोग में ही उसकी उपयोगिता, कृपण की मूर्खता एवं सत्क्रियाशीलता का ज्ञान होता है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कृपण का प्राण सञ्चित धन पर निर्भर करता है। वह प्राण देकर भी सञ्चित धन की रक्षा करता है। एक जगह कवि ने कहा है कि 'लौहचणक' का चर्वण, सर्प के फन की मणि का कर्षण, हाथ से गिरितोलन तथा पैरों से समुद्रलङ्घन, निद्रित

---

[1] क. कदर्यः स्वजनं दृष्ट्वा यदृच्छोपनतं गृहे।
करोति दारकलहव्याजेनानशनव्रतम् ।। -देशोपदेश 2/18

ख. कदर्यः कुशलप्रश्नं न करोति शृणोति वा
अभ्यागतस्य सायाह्ने पश्चाद्भोजनशङ्कया।।-देशोपदेश 2/19

[2] कृपणः स्ववधूसङ्गं न करोति भयादिह।
भविता यदि मे पुत्रः स मे वित्तं हरेदिति।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, कृपणनिन्दा, श्लोक 16

[3] जहाति सहसाननं झटिति पृच्छति स्वागतम्
नमस्यति कृताञ्जलिः श्रुतिमनोहरं भाषते।
ददाति कुसुमं फलं शिथिलयत्यभीष्टां क्रिया-
महो न परिचीयते कृपणवञ्चनाचातुरी।। -वही, श्लोक 57

[4] भट्टव्ययं निवार्यैव व्ययभीरोः करोत्यलम् ।
पुत्रकार्ये कदर्यस्य भार्या जारोत्सवव्ययम् ।। -देशोपदेश 2/23

सिंह को जगाना तथा तीक्ष्ण खड्ग का स्पर्श ये सभी असम्भव व दुष्कर कार्य हो सकते हैं, किन्तु शठ कृपण से धन नहीं लिया जा सकता है।[1] इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के साथ-साथ अन्य कवियों ने भी कृपण के विषय में अपने-अपने विचार व्यक्त कर उसे निन्दनीय माना है।

कुवैद्य-विचार-साम्य

ऐसे वैद्य, जो रोगी के हित का ध्यान न रखते हुए स्वधन प्राप्ति का विशेष ध्यान देते हैं, वे निन्दित हैं तथा विभिन्न रचनाकारों द्वारा समाज के दूषित पक्ष रूप में वर्णित हैं, उनके प्रच्छन्न प्रयोजन को भी प्रकाशित किया गया हैं ऐसे वैद्य को यमराज या उसके सम्बन्धी आदि से सम्बन्धित बताया गया है, जो प्राण एवं धन दोनों का हरण करने में समर्थ हैं। कविवर क्षेमेन्द्र युगसापेक्ष कवि हैं, जिन्होंने अपने समय के समाज के वैद्यों के कुकृत्यों पर अपने तीखे विचार व्यक्त किये हैं, जो आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी पूर्णतः प्रासंगिक हैं। क्षेमेन्द्र ने ऐसे वैद्याधम को यम, धर्मराज, मृत्यु एवं अन्तक आदि शब्दों से विभूषित करते हुए उसे व्याधि का चिकित्सक नहीं, अपितु अर्थ एवं प्राणों का चिकित्सक बताया है। क्षेमेन्द्र ने ऐसे वैद्याधम को व्यङ्ग्यात्मक प्रणाम किया है, जो विद्याविहीन होते हुए मिथ्यौषधि से लोगों के प्राणों का हरण करता रहता है।[2] इसी भाव के सदृश

---

[1] अयश्चणकचर्वणं फणिफणामणेः कर्षणं
करेण गिरितोलनं जलनिधेः पदालङ्घनम् ।
प्रसुप्तहरिबोधनं निशितखड्ग संस्पर्शनम्
कदाचिदाखिलं भवेन्न च शठाद्धनस्यार्जनम् ।।
-सुभाषितरत्नभाण्डागार, कृपणनिन्दा, श्लोक 58

[2] क. यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च।। समयमातृका 1/39

ख. नमोविद्याविहीनाय वैद्यायवद्यकारिणे।
निहतानेकलोकाय सर्पायेवापमृत्यवे।। - नर्ममाला 2/68

अन्यत्र भी भाव प्राप्त होता है, जिसमें उसे शस्त्र एवं सद्भाव से रहित बताया गया है।[1] अन्य किसी कवि ने भी इसी तरह कहा है कि वह धातु विज्ञान के अन्तर्गत पारदादि, वैद्यक, रोगों का तत्त्व तथा वस्तु व गुणादि से अनभिज्ञ होता हुआ भी वैद्य रोगियों के प्राणों एवं धन का हरण करता है।[2] कुवैद्यों द्वारा रोगियों के धन एवं प्राणों के हरण के साथ ही उसके द्वारा स्त्री रोगियों के साथ किये गये दुराचारों का भी वर्णन है। कविवर क्षेमेन्द्र ने चिकित्सा के ब्याज से स्तन एवं गुह्याङ्ग स्पर्श जैसे वैद्यामों के प्रच्छन्न प्रयोजन को भी प्रकाशित किया हैं।[3] इसी तरह शार्ङ्गधरपद्धति में भी कवि ने अङ्गस्पर्श की बात कहीं है।[4] इस प्रकार स्पष्ट है कि कुवैद्य धोखाधड़ी एवं कलुषित विचारधारायुक्त कार्यों को करने से चूकता नहीं था और विभिन्न कालों में रचनाकार उनके प्रच्छन्न प्रयोजन को भी उजागर करने में चूकते नहीं हैं।

---

[1] क. अज्ञातशास्त्र सद्भावा शास्त्रमात्रपरायणान् ।
त्यजेद्दूराद्भिषक्पाशान्पाशान्वैवस्वतानिव।।
- सुभाषितरत्नभाण्डागार, कुवैद्यनिन्दा, श्लोक 5

ख. मिथ्यौषधैर्हन्तमृषाकषायैरासह्यलेह्यैरयथार्थतैलैः।
वैद्या इमे वञ्चितरुग्णवर्गाः पिचण्डभाण्डं परिपूरयन्ति।। -वही, श्लोक 6

[2] न धातोर्विज्ञानं न च परिचयो वैद्यकनये
न रोगाणां तत्त्वावगतिरपि नो वस्तुगुणधीः।
तथाप्येते वैद्या इति तरलयन्तो जडजना-
नसून्मृत्योर्भत्या इव वसु हरन्ते गदजुषाम् ।। वही, श्लोक 8

[3] सत्कोणं लोलनेत्रं कुलयुवतिमुखं दृश्यते सानुकम्पै-
रण्डानामर्धलज्जञ्चितमधिपुलकं स्पृश्यते पीनमङ्गम्। -शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 4039

[4] क. गुह्याङ्गस्पर्शकृत् स्त्रीणां बह्वशीजीवितापहः।
नृणां त्रिदोषकृत् सत्यं वैद्य एव न तु ज्वरः।। -नर्ममाला 2/76

ज्योतिषी-विचार-साम्य

ज्योतिषी साधारण कपटपूर्ण ज्ञान से युक्त होकर ज्योतिष की गणना करता हुआ मूर्खों को ठगने का कार्य करता है तथा ग्राहक की कमजोरी को देखकर विविध प्रकार के रोग बतलाकर मिथ्या मन्त्रों द्वारा निदान की बात करता है। संस्कृत-साहित्य में ऐसे ज्योतिषियों की भर्त्सना की गयी है, जो अल्प ज्ञान व झूठे ज्ञान से लोगों को ठगने का कार्य करते रहे हैं। कविवर क्षेमेन्द्र ने कहा है कि ज्योतिषी चन्द्र और विशाखा, जो आकाश स्थित हैं, के समागम को कहता है, किन्तु अनेक लोगों के साथ अपनी पत्नी के समागम को नहीं जानता हैं। वह स्त्रियों को भूत-पिशाचादि की बाधा बतलाकर उन्हें उनसे मुक्त करने हेतु नग्न करता है तथा झूठे राशिचक्र के माध्यम से लोगों को भ्रम में डालकर उनके धन का शोषण करता है।[1] इसी तरह अन्य रचनाकारों ने भी कुगणक (ज्योतिषी) के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। वह कुदैवज्ञ सदसद् जन्मपत्र के माध्यम से लोगों को ठगता है।[2] अन्यत्र भी पुत्र को दीर्घायु होने व धनवृद्धि आदि की भविष्यवाणी करके कुगणक घर-घर जाकर धनी लोगों के धन का हरण करने का कार्य करता है।[3]

---

[1] क. विन्यस्य राशिचक्रं ग्रहचिन्तां नाटयन् मुखविकारैः।
अनुवदति चिकाद् गणको यत् किंचित् प्राश्निकेनोक्तम् ।। -कलाविलास 9/5

ख. गणयति गगने गणकश्चन्द्रेण समागमं विशाखायाः।
विविधभुजंगक्रीडासक्तां गृहिणीं न जानाति।। -कलाकिवलास 9/6

[2] विलिखति सदसद्वा जन्मपत्रं जनानां
फलति यदि तदानीं दर्शयत्यात्मदाक्ष्यम् ।
न फलति यदि लग्नद्रष्टुरेवाह मोहं
हरति धनमिहैवं हन्त दैवज्ञपाशः।। -गुणरत्न, श्लोक 12

[3] ज्योतिःशास्त्रमहोदधौ बहुतरोत्सर्गापवादात्मभिः
कल्लोलैर्निबिद्धे कणान्कतिपयॉल्लब्ध्वा कृतार्था इव।

कुगणक को गणिका के समान बताते हुए श्लेष के माध्यम से पञ्चाङ्ग दिखाकर धनहरण करने की प्रवृत्ति की निन्दा की गयी है।[1] इस प्रकार विभिन्न कवियों के कुगणक सम्बन्धी विचारों की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र और अन्य कथनों में साम्य होते हुए भी क्षेमेन्द्र के वर्णन उत्कृष्ट एवं चरम सीमा तक हैं।

लोभ-विचार-साम्य

लोभ मनुष्य की अति तुच्छतम वृत्ति है। लोभ के वशीभूत मनुष्य हमेशा दुःख भोगता है। वह न ठीक से खा सकता है, न कपड़े पहन सकता हैं। वह कुछ भी कार्य भली-भाँति नहीं कर सकता है। यदि वह कभी शुभ कार्य करने को तैयार होता है, तो उसका लोभ उसके कार्य में बाधक बन जाता है। लोभ केवल शुभ कर्मों में बाधा ही नहीं डालता, अपितु पापकर्मों में भी प्रवृत्त करता हैं। लोभ के वशीभूत व्यक्ति अपने धन और वस्तुओं का भोग न करता हुआ दुःखमय जीवन व्यतीत करता है और प्राणों से अर्जित किया हुआ सब कुछ दूसरों के लिए छोड़ कर नरक में पड़ता है, इतना ही नहीं, लोभ-मनुष्य को निष्करुण, निर्दय, अनीति पर चलने वाला और दुश्चरित्र बना देता है। इसीलिए लोभ का सर्वथा परित्याग करना ही अच्छा है।

कविवर क्षेमेन्द्र ने भी मनुष्य के प्रबल शत्रु लोभ की कटु आलोचना की है तथा उन्होंने वेश्या, कायस्थ आदि के पतन व दुष्कर्म में भी लोभ को ही कारण बताते हुए उसकी कटु शब्दों में निन्दा की है। क्षेमेन्द्र ने लोभियों को सर्वदा चिन्तनीय बताते हुए लोभी को सबके भय का कारण तथा उसे

दीर्घायुः सुतसंपदादिकथनैर्दैवज्ञपाशा इमे
गेहं गेहमनुप्रविश्य धनिनां मोहं मुहुः कुर्वते।।- वही श्लोक 15

1 गणिकागणकौ समानधर्मो निजपञ्चांगनिदर्शकावुभौ।
जनमानमोहकारिणौ तौ विधिना वित्तहरौ विनिर्मितौ।। गुणरत्न, श्लोक 18

कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान न होने वाला कहा हैं। उन्होंने लोभ को संचय-रूपी दुर्ग का पिशाच, सब कुछ लूटने वाला, माया, फेर-बदल करने वाला, मन, उखाड़ने तथा कूट कपटों का मूल कारण बताया है।[1] इसी प्रकार हितोपदेश, भोजप्रबन्ध, महाभारत एवं शार्ङ्गधरपद्धति आदि काव्यों में रचनाकारों ने लोभ निन्दक बातें की हैं। भोज प्रबन्ध में इसे पाप का कारण तथा द्वेष क्रोधादि का जनक बताया गया है। लोभ से ही क्रोध, काम, मोह एवं नाश होता है, क्योंकि लोभ ही पाप का कारण है। लोभ से युक्त लोभी व्यक्ति माता, पिता, पुत्र, भाई अथवा मित्र की तथा स्वामी व सहोदर जैसे निकटस्थ प्रिय लोगों का भी हनन करता है।[2] महाभारत में भी यह उल्लिखित है कि लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से द्रोह उत्पन्न होता है तथा द्राह से ही शास्त्रज्ञ विद्वान् भी नरकगामी होते हैं।[3] हितोपदेशकार ने कहा है कि लोभ से बुद्धि चञ्चल होकर तृष्णा उत्पन्न करती है तथा तृष्णा से आर्त्त मनुष्य इहलोक और परलोक दोनों में दुःख ही प्राप्त करता है।[4] लोभी सदैव चिन्तामग्न होकर सब ओर से भयभीत रहता हैं लोभ से

---

1 मायाविनिमयविभ्रमनिह्नववैचित्त्यकूटकपटानाम् ।
संचयदुर्गपिशाचः सर्वहरो मूलकारणं लोभः।। -कलाविलास 2/2

2 क. लोभः प्रतिष्ठा पापस्य प्रसूतिर्लोभ एव च।
द्वेषक्रोधादिजनको लोभः पापस्य कारणम् ।। - लोभप्रबन्ध, श्लोक 1

ख. लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ।। -भोजप्रबन्ध, श्लोक 2

ग. मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा सुहृत्तमम् ।
लोभाविष्टो नरो हन्ति स्वामिनं वा सहोदरम् ।। - भोजप्रबन्ध, श्लोक 3

3 लोभात्क्रोधः प्रभवति क्रोधात् द्रोहः प्रवर्तते।
द्रोहेण नरकं याति शास्त्रज्ञोऽपि विचक्षणः।। -महाभारत 12/5880

4 लोभेन बुदिश्चलति लोभो जनयते तृषाम् ।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः।। -हितोपदेश 1/142

विमूढ व्यक्ति अपना विवेक खो बैठता है। उसे कार्याकार्य विचार नहीं रह जाता है।[1] सा शार्ङ्गधरपद्धति में कहा गया है कि लोभाविष्ट मनुष्य वित्त ही देखता है, किन्तु उस वित्त प्राप्ति में उत्पन्न आपत्ति को नहीं देखता है, जिस प्रकार बिल्ली स्वाहार दूध को ही देखती है, किन्तु जाल में फँसने की आपत्ति को नहीं सोचती है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि लोभ से व्यक्ति मोहान्ध होकर दुष्कर्म में प्रवृत्त होता है तथा तज्जन्य ताप में जलकर भस्म हो जाता है। इस तरह के भाव सभी कालों में विचारकों द्वारा व्यक्त किये गये हैं।

स्त्री-स्वभाव-विचार-साम्य

काम वर्णन के प्रसंङ्ग में कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा वर्णित स्त्री-स्वभाव सम्बन्धी विचारों का वर्णन अध्याय पाँच में किया जा चुका है, जो उनके कलाविलास, समयमातृका एवं देशोपदेश आदि रचनाओं में वर्णित हैं। स्त्रियों की उच्चलता, माया, अशौच, साहस एवं असत्य भाषण आदि दोषों की विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों द्वारा निन्दा की गई हैं नीतिदर्पणकार चाणक्य ने स्त्रीस्वभावजन्य दोषों अनृत, साहस, माया, मूर्खता, लोभ, अशौच और निर्दयता आदि को बताते हुए कहा है कि स्त्रियाँ दूसरे से वार्ता करती हैं तो किसी दूससरे को देखती हैं और किसी दूसरे का हृदय में चिन्तन करती हैं। इस प्रकार स्त्रियों के लिए कौन प्रिय है?[3] महाभारत में भी कहा गया है कि जो स्त्रियाँ सत्य को

---

[1] लोभः सदा विचिन्त्यो लुब्धेभ्यः सर्वतो भयं दृष्टम् ।
कार्याकार्य विचारो लोभविमूढस्य नास्त्येव।। - शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 428

[2] लोभाविष्टो नरो वित्तं वीक्षते न स चापदम् ।
दुग्धं पश्यति मार्जारो न तथा लगुडाहतिम् ।।
- सुभाषितरत्नभाण्डागार, लोभनिन्दा, श्लोक-6

[3] क. अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।

असत्य तथा असत्य को सत्य कहती हैं, वे धीर पुरुषों द्वारा कैसे संरक्ष्य हैं?[1] पञ्चतन्त्रकार विष्णु शर्मा ने स्त्रियों को गुञ्जाफल के समान बताते हुए अन्तः विषमय एवं बाह्य रूप से मनोरमा कहा है।[2] वे तो स्त्रियों में सतीत्व को असम्भव बताते हुए कहते हैं कि यदि अग्नि शीतल, चन्द्रमा उष्ण तथा दुर्जन हितकारी हो जाय तब स्त्रियों में सतीत्व हो सकता है।[3] इसी प्रकार उन्होंने दूसरे श्लोकों में भी कहा है कि यदि अग्नि शीतल, चन्द्रमा दाहक और सागर सुस्वादयुक्त हो जाय तब स्त्रियों में सतीत्व हो सकता है।[4] चाणक्य की भाँति शूद्रक ने भी कहा है कि चञ्चल स्त्रियाँ हृदय में अन्य पुरुष को रखकर उससे भिन्न पुरुष को दृष्टियों से बुलाती हैं, यौवन का हाव-भाव किसी दूसरे पर फेंकती है और शरीर से किसी और को ही चाहती हैं।[5] भर्तृहरि का कथन है कि जो स्त्री स्मरण से सन्ताप पहुँचाती है, जिनके देखने मात्र से उन्माद बढ़ जाता है और जिनके छू लेने भर से मोह उत्पन्न हो जाता है, उसे न जाने क्यों दयिता अर्थात् प्राणवल्लभा कहा

अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः।। - चाणक्यनीति 2/1

ख. जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमम् ।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषितमाम् ।। वही 16/2

1 अनृतं सत्यमित्याहुः सत्यं चापि तथानृतम् ।
इति यास्ताः कथं धीरैः संरक्ष्याः पुरुषैरिह।। - महाभारत 13/224

2 अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः।
गुञ्जाफलसमाकारा योषितः केन निर्मिताः।। -पञ्चतन्त्र 1/211

3 हृदि स्यात्पावकः शीतः प्रोष्णो वा शशलाञ्छनः।
स्त्रीणां सतीत्वं तदा स्याद्यदि स्याद्दुर्जनो हितः।। - वही 3/193

4 यदि स्याच्छीतलो वह्निश्चन्द्रमा दहनात्मकः।
स्वादः सागरः स्त्रीणां तत्सतीत्वं प्रजायते।। - वही, 1/287

5 अन्यं मनुष्यं हृदयेन कृत्वा ह्यन्यं ततो दृष्टिभिराह्वयन्ति।
अन्यत्र मुञ्चन्ति मदप्रसेकमन्यं शरीरेण च कामयन्ते।। -मृच्छकटिक 4/16

गया है।[1] स्त्रियाँ न दान, मान, न आर्जव, न सेवा, शस्त्र एवं न शास्त्र ही से वश में आती है, अर्थात् वे सब प्रकार से विषम बतायी गयी हैं।[2] इसीलिए उन्हें पुरुष के निधन, कलह, व्यसन एवं नरक का मूल कहा गया है अर्थात् वे ही इन दोषों की जननी हैं।[3]

स्त्री को वशमें नहीं किया जा सकता - ऐसा अन्यत्र भी कहा गया हैं। वे दण्ड से ताडित होने पर शास्त्रों से विखण्डित होनेपर अथवा दानादि से भी नहीं वश में की जा सकती है।[4] स्त्रियों को अविश्वासपात्र ही बताया गया है। यद्यपि पति नीतिशास्त्र निपुण, विद्वान् कुलीन, युवा, कर्णसमान दातरा, वैभवसम्पन्न तथा अपने प्राणों से भी अधिक अपनी पत्नी को प्रेम करने वाला हो, तदपि वह युवती जार पति को ही चाहती है- ऐसा भर्तृहरि ने कहा है।[5] उन्होंने तो स्त्री को विविध प्रकार से संशयों का भँवर, अविनय का घर, साहस का नगर, दोषों का

---

1 स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादवर्द्धिनी।
स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम् ।। - भर्तृहरिश्रृंगारशतक, श्लोक 73

2 न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया।
न शस्त्रेण न शास्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः।। - गरुडपुराण, श्लोक 109

3 स्तियो हि मूलं निधनस्य पुंसः , स्त्रियो हि मूलं व्यसनस्य पुंसः।
स्त्रियो हि मूलं नरकस्य पुंसः, स्त्रियो हि मूलं कलहस्य पुंसः।।
- सुभाषितरत्नभाण्डागार, स्त्रीस्वभाव निन्दा, श्लोक 64

4 ताडिता अपि दण्डेन शस्त्रैरपि विखण्डिताः।
न वशं योषितो यान्ति न दानैर्न च संस्तवैः।। - पञ्चतन्त्र 4/56

5 भर्ता यद्यपि नीतिशास्त्रनिपुणो विद्वान् कुलीनो युवा
दाता कर्णसमः प्रसिद्धविभवः शृङ्गारदीक्षागुरुः।
स्वप्राणाधिककल्पिता स्ववनिता स्नेहेन संलालिता।
तं कान्तं प्रविहाय सैव युवती जारं पतिं वाञ्छति।।
- भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह, श्लोक 625

भण्डार, सैकड़ों प्रकार के कष्टों एवं अविश्वासों का क्षेत्र, स्वर्ग द्वार का विघटन, नरकपुर का सुख, समस्त प्रकार की माया का पिटारा, अमृत के रूप में विष और पुरुषों को मोह जाल में फँसाने वाली बताया है। इतने पर भी मनुष्य इसके हाथों में ऐसे नाचता है, जैसे वह कोई यन्त्र है और मनुष्य उसके द्वारा नचाया जा रहा है।[1] शार्ङ्धरपद्धति में भी चाणक्य एवं शूद्रक की भाँति स्त्री को नयन विकार, वचन एवं चेष्टा द्वारा भिन्न- भिन्न व्यक्तियों से अनुरक्त बताते हुए शार्ङधरपद्धतिकार ने उन्हें किसी अन्य व्यक्ति के साथ ही रमण करने वाली बहुरूपा बताया है।[2] भर्तृहरि द्वारा अन्य प्रसक्ता स्त्री के विवेचन की भाँति हितोपदेशकार ने भी कहा है कि स्त्रियाँ सहज अनुरक्ता होती हैं। वे गुणाश्रय, कीर्तियुक्त, धनी एवं रतिज्ञ आदि गुणी पति को छोड़कर दूसरे शीलगुणादिहीन पुरुष का भी वरण कर लेती हैं।[3] उनकी सहजानुरक्ति एवं क्षणिकवत्ता तो चञ्चलता के ही कारण होती है। शूद्रक ने कहा है कि समुद्रतरंग की भाँति चञ्चल स्वभाव वाली, सन्ध्या की मेघ पंक्ति की भाँति क्षणिक राग वाली स्त्रियाँ पराभूत किये हुए पुरुष को निष्पीडित लाक्षारस सदृश त्याग देती हैं।[4] भागवत पुराण में

---

1 आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।
स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुरसुखं सर्वमायाकरण्डं
स्तीयन्त्रं केन लोके विषममृतमयं प्राणिनां मोहपाशः।।
- शृंगारशतक, श्लोक 76

2 नयनविकारैरन्यं वचनैरन्यं विचेष्टितैरन्यम् ।
रमयति सुरतेनान्यं स्त्री बहुरूपा निजा कस्य।। - शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक, 3765

3 गुणाश्रयं कीर्तियुतं च कान्तं पतिं विधेयं सघनं रतिज्ञम् ।
विहाय शीघ्रं वनिता व्रजन्ति नरान्तरं शीलगुणादिहीनम् ।। - हितोपदेश 2/117

4 समुद्रवीचीव चलस्वभावाः संध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः।
स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत् त्यजन्ति।। - मृच्छकटिक 4/15

उन्हें करुणारहित, क्रूर, ईर्ष्यालु एवं साहसी बताते हुए यह कहा गया है कि वे विश्रब्ध पति व भाई काभी अल्पार्थ में हनन कर देती है।[1] इसीलिए हितोपदेश में कहा गया है कि स्त्रियों को कोई न प्रिय होता है और न अप्रिय, बल्कि वे जंगल में गायों द्वारा नई-नई घासों को चरने की भाँति नवीन पुरुष की आकांक्षा वाली होती हैं।[2] भर्तृहरि द्वारा वामनयना शब्द के प्रतिकूल आचरण कर वामता अर्थात् वैपरीत्य सिद्ध करने वाली स्त्री के लिए संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं बताया गया है, जिसे वह न कर सके। सुन्दरियाँ अनेक प्रकार की चेष्टायें करके रसिक जनों के हृदयों में प्रवेश कर जाती हैं। कभी तो वे पुरुषों को सम्मिलित करती हैं, कभी मदोन्मत्त। कभी तरह-तरह के हास-परिहास द्वारा उसे छलती हैं, कभी झिड़कियाँ देकर नचाती हैं, कभी उसके साथ रमण करती हैं और कभी उससे दूर रहकर उसे दुःख पहुँचाती हैं। विरहाकुलता में पुरुष स्त्री के प्रति और भी अधिक आसक्त एवं आग्रहशील हो जाता है।[3] पञ्चतन्त में भार्गव का कथन है कि जिस घर में स्त्री एवं बालक का शासन होता है वह घर निर्मूलता को प्राप्त होता है।[4]

---

1 स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः।
घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत।। - भागवतपुराण 9/14/37

2 न स्त्रीणामप्रियः कश्चित्प्रियो वापि न विद्यते।
गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम् ।। - हितोपदेश 1/117

3 संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति।
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति।। - शृंगारशतक, श्लोक 21

4 यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्र प्रशासिता।
राजान्निर्मूलतां याति तद्गृहं भार्गवोऽब्रवीत् ।। - पञ्चतन्त्र 5/61

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा वर्णित भावों की ही तरह अन्य कवियों ने भी स्त्री-स्वभाव की तीखी आलोचना की हैं। इससे एक तथ्य और स्पष्ट हो जाता है कि क्षेमेन्द्र वर्णित तथ्य कोई पक्षपातपूर्ण नहीं हैं तथा उनके द्वारा किया गया व्यङ्ग्य उनके निन्दा करने के स्वभाव को नहीं, बल्कि उनके समाज-सुधार एवं सर्जनात्मक भाव का द्योतक है।

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उनके लघुकाव्य सूक्त्यात्मक, उपदेशपरक एवं दैनिक जीवनोपयोगी विचारों से सम्बन्धित हैं। इनके लघुकाव्यों में समाज के दूषित पक्षों पर कटु व्यङ्ग्य एवं प्रशंसा के योग्य पक्षों की प्रशस्ति की गई हैं इसलिए ही इनके नीत्युपदेशपरक विचार अन्य कवियों केभावों से समता रखते हैं। इनके लघुकाव्यों में प्रयुक्त नीतियाँ एवं उपदेशपरक विचार हमें भर्तृहरि, विष्णु शर्मा, नारायणपण्डित, शार्ङ्गधर, भोज, अप्पयदीक्षित, शूद्रक एवं व्यास आदि में देखने को प्राप्त होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र का विषय-विस्तार अधिक समृद्ध था।

मोक्ष-विचार-साम्य

हिन्दू विचारधारा में मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार किया गया है जिसकी प्राप्ति सभी का परम साध्य है। संसार में दुःख है, इस तथ्य को स्वीकार करते हुए उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति को भारतीय दर्शन में मोक्ष कहा गया है, परन्तु मोक्ष की कल्पना भारतीय दर्शन और ज्ञान, कर्म तथा भक्ति के विविध साधन-मार्गें में भिन्न-भिन्न प्रकार से की गयी हैं। चार्वाक दर्शन के अतिरिक्त अन्य सभी विचारधायें इसे स्वीकार करती हैं। मोक्ष का अर्थ है पुनर्जन्म अथवा आवागमन चक्र से मुक्ति प्राप्त कर आत्मा का परमात्मा में विलीन हो जाना। आत्मा अजर, अमर एवं परमात्मा का ही अंश हैं। शरीर बंधन का कारण हैं। संसार माया जाल है। मनुष्य जब इस तथ्य को जान लेता है तो सांसारिक विषयों से अपना ध्यान हटाकर परमात्मा की ओर लगाता हैं

ज्ञान, भक्ति और कर्म मोक्ष प्रार्प्ति के साधन है। इनका समन्वय गीता में भी प्राप्त होता है।

जब मनुष्य में मोक्ष प्राप्त करने की प्रबल उत्कण्ठा हो। तत्पश्चात् उसे किसी योग्य गुरु से वेदान्त का उपदेश ग्रहण करना चाहिए। गुरु शिष्य को 'तुम ही ब्रह्मा हो' (तत् त्वम् असि) का बोध करता है। गुरु की इस उक्ति का स्मरण करते हुए तथा दृढ़ता पूर्वक उसका आचरण करते हुए व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार कर लेता है तथा इस अवस्था में उसे 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् 'मैं ही ब्रह्मा हूँ' की अनुभूति होती हैं यही पूर्ण ज्ञान है तथा इसी को मोक्ष कहा गया है। मोक्ष प्राप्ति के बाद जीवन के दुःखों का नाश हो जाता है तथा मनुष्य परमानन्द की प्राप्ति करता है।

जीवन के प्रति कविवर क्षेमेन्द्र का भी दृष्टिकोण आदर्शवादी दिखलाई पड़ता हैं। वे भोग को जीवन का लक्ष्य नहीं मानते थे। उनकी भी दृष्टि में मोक्ष परम पुरुषार्थ हैं अतः निवृत्तिमार्ग का अनुगमन करते हुए ही विषयों का भोग करना चाहिए। मोक्ष को जीवन का लक्ष्य मानते हुए भी उन्होंनें उसकी प्राप्ति के लिए विहित किसी विशेष धारणा या सम्प्रदाय के प्रति अपनी आस्था नहीं व्यक्त की है। उनका विश्वास है कि सदाचार अपने आप में एक विश्वजनीन मार्ग है, जिसका संयमपूर्वक पालन करने से व्यक्ति में विवेक जाग्रत होता है। वह विवेक ही उसे सन्मार्ग में नियोजित किये रहता हैं। इसीलिए कविवर ने 'दर्पदलन' नामक लघुकाव्य में विवेक की ही वन्दना करते हुए उसके लिए बार- बार नमस्कार किया हैं जिसके जाग्रत होते ही सारे विघ्न अपने आप शान्त हो जाते हैं। उन्होंने विवेक को ही अमृत का सच्चा निधान माना है, जिसके जाग्रत होने पर आत्मा का प्रकाश एवं विकास संभव होता है। यह विवेक उत्सेक अर्थात् उन्माद को दूर कर संचार भाव से विच्छिन्न करता हुआ व्यक्ति के चित्त को

शान्ति के अमृत से सींच देता है।[1] एक स्थल पर मोक्ष प्रशंसा करते हुए क्षेमेन्द्र ने विवेक को संशय रूपी वृक्ष के मोक्ष रूपी फल का सेचन रूप कहा है।[2] क्षेमेन्द्र मोक्ष सम्बंधी विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जीवन में सुख देने वाले तत्त्व संसार में अनेक हैं जैसे यौवन, प्रिया मिलन, धन एवं सुन्दरियाँ, पर उनसे प्राप्त होने वाला सुख अस्थायी होता है तथा देश, काल एवं पात्र की सीमाओं में बँधा हुआ है तथा सब अन्ततोगत्वा वियोगान्त हैं। स्वप्न के समान स्वल्पकाल स्थायी प्रियजनों का मिलन सुन्दर जीवन का जरावस्था के द्वारा निगला जाना तथा जीवन का निष्ठुर काल के गाल में समा जाना देखकर कौन ऐसा है जिसे वैराग्य उत्पन्न नहीं होगा।[3] इसी प्रकार के मोक्ष सम्बन्धी विचार भर्तृहरि कृत वैराग्यशतक एवं गीता आदि में भी देखे जा सकते हैं। क्षेमेन्द्र और भर्तृहरि के कुछ मिलते-जुलते भाव देखे जा सकते हैं। भर्तृहरि का कहना है कि भोग में रोग का भय, सुख बढ़ने में उसके क्षय का भय, अधिक धन होने में राजभय, मान होने में दीनता का भय, संग्राम जीतने में शस्त्रभय, रूप में वृद्धावस्था का भय, शास्त्र से मान बढ़ाने में अपमान का भय, सद्गुणों में दुर्जन का भय और शरीर में मृत्यु का भय, सर्वत्र भय के ही स्थान दीख पड़ते हैं केवल वैराग्य ही निर्भय स्थान है। ठीक इसी प्रकार के भाव कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्य चतुर्वर्गसंग्रह में भी व्यक्त किये हैं। दोनों कवियों के वैराग्य विषय का पद्य स्वल्प अन्तर के रहते हुए बिल्कुल एक से हैं। दोनों कवियों के

---

1 प्रशान्तशेषविघ्नाय दर्पसर्पापसर्पणात् सत्यामृतनिधानाय स्वप्रकाशविकासिने।
संसारव्यतिरेकाय हृतोत्सेकाय चेतसः प्रशमामृतसेकाय विवेकाय नमो नमः।।
- दर्पदलन 1/2

2 सेकं मोक्षफलस्य संशयतरोरेकं विवेकं नुमः।। - चतुर्वर्गसंग्रह 4/1

3 पुनः पुनर्जन्मसहस्रहेतुर्मलीमसः स्नेहसमोऽस्ति नान्यः।
पुंसः प्रदीपस्य च यः करोति सेवोन्मुखत्वं ग्रहसंविभागे।। - चतुर्वर्गसंग्रह 4/5

भाव-साम्य के उदाहरण निम्नलिखित द्रष्टव्य हैं।[1] इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने धन, धर्म आदि सबकी स्थान-स्थान पर महत्ता प्रतिपादित करते हुए भी वैराग्य को ही सर्वोपरि माना हैं। यह उनकी मोक्षवादी दार्शनिक मान्यता के सर्वथा अनुरूप ही हैं। अतएव चतुर्वर्गसंग्रह नामक अपनी उपदेशात्मक कृति में ही उन्होंने मोक्ष के सर्वोपरि होने का विधान करते हुए कहा है कि धर्मात्मा व्यक्तियों का परिभव कभी कल्याणकारी नहीं होता, आपदाओं से होने वाली पीड़ा से बचाव के लिए धन से बढ़कर और कोई वस्तु व्यावहारिक रूप में महत्त्वपूर्ण नहीं है, इस संसार में नारी के सुन्दर मुख से बढ़कर सुखद वस्तु और कोई नहीं है पर सब प्रकार के क्लेशों का विनाशक विरक्ति रूप मोक्ष से बढ़कर तो कुछ भी संभव नहीं है।[2] गीता में भी मोक्ष प्राप्ति विषयक विचार व्यक्त किये गये हैं "काम, क्रोध से रहित जीते हुए मन वाले ज्ञानी पुरुष परमात्मा की प्राप्ति करते हैं। इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि पर नियन्त्रण रखने वाले व्यक्ति को मोक्ष स्वयमेव प्राप्त हो जाता है।"[3]

---

[1] क. भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ।।
- वैराग्यशतक पद्य 31

ख. भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्तेऽग्निभूभृद्भयं
दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिद्भयम् ।
माने ग्लानिभयं जपे रिपुभयं काये कृतान्ताद्भयं,
सर्वं नाम भवेद् भयमहो वैराग्यमेवाभयम् ।। - चतुर्वर्गसंग्रह 4/7

[2] सर्वक्लेशविनाशनिर्वृतिरसः को नाम मोखात् परः ।। -चतुर्वर्गसंग्रह 4/28

[3] काम क्रोध वियुक्तानां यतीनां यत् चेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।। - गीता 5/28

इसी प्रकार के मोक्ष सम्बन्धी विचार अनेक नीतिकारों ने भी व्यकत किये हैं। उपनिषदों के मोक्ष सिद्धान्त में क्षेमेन्द्र की महती अवस्था है कि पुण्य कर्मों से सुखमय जीवन यापित कर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती हैं। पुण्य का अर्जन सत्कर्मों से ही होता है। शरीर को विकट कष्ट देकर किये जाने वाले तप के पक्ष में क्षेमेन्द्र नहीं है, वे तो दया, उदारता, सेवा आदि सदाचारों के पालन के पक्षपाती है। मेरे विनम्र विचार में पुरुषार्थ-चतुष्टय कविवर क्षेमेन्द्र की संस्कृत-साहित्य को महत्त्वपूर्ण देन हैं। उन्होंने अपनी चतुर्वर्गसंग्रह नामक कृति में चारों पुरुषार्थों के स्वरूप का प्रतिपादन उपदेशात्मक शैली में किया है। वस्तुतः पुरुषार्थ चतुष्ट्य का विवेचन तो अन्य कवियों ने भी किया है परन्तु क्षेमेन्द्र ने लघुकाव्य चतुर्वर्गसंग्रह में पुरुषार्थ-चतुष्टय को बड़े ही सटीक एवं सरलीकृत ढंग से समझया है, जो एक शीर्षक विशेष के अन्तर्गत विवेचित हैं ऐसा अन्यत्र दुर्लभ हैं उनका यह पुरुषार्थ-चतुष्टय का विवेचन न तो शास्त्रीय सैद्धान्तिक रूप में है और न काव्यगत प्रयोगात्मक रूप में है, अपितु इसका स्वरूप सूक्तिपरक एवं उपदेशपरक हैं। इसको कविवर क्षेमेन्द्र का विशिष्ट कार्य ही कहा जा सकता है जो सदैव अनुकरणीय रहेगा।

●●●

नवम अध्याय

क्षेमेन्द्र की मान्यतायें

(i) धार्मिक मान्यतायें

क्षेमेन्द्र एक धर्मपरायण व्यक्ति थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि ऐहलौकिक और पारलौकिक उभयविध सुख धर्म से ही मिल सकता है। अज्ञान के गहन अन्धकार से व्याप्त इस संसार में प्रकाश की किरणें धर्म रूपी सूर्य से ही फूटती हैं। धर्म दुर्बल की विवशता नहीं है, अपितु उसमें सभी प्रकार की विपत्तियों को दूर करने की क्षमता है। वह सत्पुरुषों की निधि तो है ही, बन्धुहीन का सच्चा बन्धु तथा सदा साथ देने वाला विश्वासपात्र मित्र भी हैं मरुस्थल के समान सभी प्रकार के अभावों से ग्रस्त इस संसार में यदि कोई तत्त्व ऐसा है जो कल्पवृक्ष के समान व्यक्तियों की हर प्रकार की अभिलाषाओं की पूर्ति कर सकता है, तो वह एक मात्र धर्म ही है।[1]

धर्म में आस्था क्षेमेन्द्र का आदर्श है। उनका कहना है जन्म लेना, पर मनुष्य न होना हेय है पर बुद्धिहीन मनुष्य तो पशुओं से भी गया बीता है। बुद्धि पाकर वैदुष्य संपादित न कर पाना भी एक बिडम्बना ही है, पर पांडित्यपूर्ण बुद्धिमान् मनुष्य यदि धर्महीन है तो उससे बढ़कर अभागा और कोई नहीं हो सकता।[2]

---

[1] धर्मः शर्म परत्र चेह च नृणां धर्मोऽन्धकारे रविः
सर्वापत्प्रशमक्षमः सुमनसां धर्माभिधानो निधिः।
धर्मो बन्धुरबान्धवे पृथुपथे धर्मः सुहृन् निश्चलः।
संसारोरुमरुस्थले सुरतरुर्नास्त्येव धर्मात् परः।। -चतुर्वर्गसंग्रह 1/

[2] निन्द्यं जन्म प्रमोहस्थिरतरतमसां यन् मनुष्यत्वहीनं
बुद्ध्या हीनो मनुष्यः शुभफलविकलस्तुल्यचेष्टः पशूनाम् ।
बुद्धिः पाण्डित्यहीना भ्रमति सदसतोस्तत्त्वचर्चाविचारे
पाण्डित्यं धर्महीनं शुकसदृशगिरां निष्फलक्लेशमेव।। - चतुर्वर्गसंग्रह 1/5

क्षेमेन्द्र की कल्पना है कि धर्म रूपी वृक्ष का मूल शील तथा तना सत्य हैं। सात्त्विकता ही उसके पल्लव हैं तथा कल्याणकारिणी बुद्धिलता के समान उससे लिपट रही हैं। इस वृक्ष का सिंचन जब करुणा रूपी पवित्र अमृत से होता है तो इसकी शान्ति रूपी छाया होती है और इस पर कुशलता रूपी फूल खिलते हैं तथा श्री (संपदा) रूपी फल लगते हैं।[1] मनुष्य को वह अपना दिन व्यर्थ मानना चाहिए जिस दिन उसने न किसी का हित किया हो या किसी की कुछ सहायता नहीं की अथवा विवश होकर उसे झूठ बोलना पड़ा हो।

मेरे विचार में धर्म से उनका तात्पर्य सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा आदि आत्मीय गुणों से ही हैं। इसमें भी क्षेमेन्द्र अहिंसा को सर्वोपरि मानते हैं। उनका कहना है कि संसार का प्रत्येक प्राणी अपने प्राणों की रक्षा के लिए निरन्तर सचेष्ट रहता हैं अपने प्राण ही उसे सबसे अधिक प्रिय होते हैं। अतः जो व्यक्ति पूर्ण करुणापरायण है और सबको प्राणों का अभयदान देता है वही वास्तविक रूप में पुण्यात्मा है। उसका यह व्रत ही अहिंसा है।[2]

मेरे विचार से क्षेमेन्द्र उस युग में हुए होंगे जब काश्मीर में शैव धर्म अपने चूडान्त उत्कर्ष पर था। पर शिव के प्रति भक्तिभाव होते हुए भी वे किसी सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं थे। न ही अपनी कृतियों में उन्होंने किसी धर्म विशेष का अनुसरण करने का आग्रह ही नहीं किया है। उनकी धर्मविषयक भावना सामान्य थी। उनका अपना जीवन धार्मिक था। अपनी कृतियों में भी उन्होंने लोगों को धर्मपरायण होने की सलाह दी है। धन को उन्होंने हेय नहीं माना

---

1 देशोपदेश 8/36

2 प्राणानां परिरक्षणाय सततं सर्वाः क्रियाः प्राणिनां
प्राणेभ्योऽप्यधिकं समस्तजगतां नास्त्येव किंचित् प्रियम् ।
पुण्यं तस्य न शक्यते गण यितुं यः पूर्णकारुण्यवान्
प्राणानामभयं ददाति सुकृती तेषामहिंसाव्रतः ।। - चतुर्वर्गसंग्रह 1/13

अपितु उसे ही धर्म, अर्थ एवं काम तीनों पुरुषार्थों का मूल कहा है। पर धनार्जन के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण यही होना चाहिए कि वह साधन है साध्य नहीं। धर्म ही धनार्जन का लक्ष्य होना चाहिए। धर्माचार विहीन लोगों के द्वारा धन के नाम पर मल का संचय किया जाता है।[1] धनाढ्य होने का लोभ वे अच्छा नहीं मानते। उनका कहना है कि मानव जीवन या सांसारिक जीवन का संचालन मुख्य रूप से दैव के हाथों में हैं। अतः धन के प्रति अधिक लोभ कष्टकर ही होगा। मेरे विचार में उनका तर्क है कि निर्धन व्यक्ति भी सुखी देखे जाते हैं तथा धनी भी सुख से पीड़ित होते ही हैं। अतः उस धन के लिए बहुत चिन्ता करना समुचित नहीं है जो मुख्यतः दैवाधीन है। अतः मनुष्य को कर्तव्यपरायण होना चाहिए। खुसी से जो धन प्राप्त हो जाय वही जीवन को सुखमय बनाने के लिए पर्याप्त होता है। मुग्धता अर्थात् भोलापन, प्रमाद अर्थात् अवहेलना, विश्वास, कुसंग तथा क्लेशभीरुता नामक पाँच दोषों से कमल रूपी 'श्री' संकुचित हो जाती है।[2] 'चारुचर्या' नामक कृति में उन्होंने आदर्श जीवन का ऐसा चित्रण किया है जो व्यवहार में अच्छी तरह उतारा जा सकता है। मेरे विचार में उनकी मान्यता है कि सदाचार ही संसार में सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। उससे व्यक्ति को धन का आगम सुलभ हो जाता है तथा उसका सत्य से अलगाव भी नहीं होता। सदाचार से पहले सहज में ही अभिलषित भागों की तथा अन्त में स्वर्ग एवं अपवर्ग की भी प्राप्ति हो जाती है।[3] संयत एवं मर्यादापूर्ण ढङ्ग से जीवन-यापन करना ही सदाचार है।

---

[1] सन्तः कुर्वन्ति यत्नेन धर्मस्यार्थे धनार्जनम् ।
धर्माचारविहीनानां द्रविणं मलसंचयः। - दर्पदलन 2/32

[2] मौग्ध्यं प्रमादोऽविश्वासः कुसङ्गः क्लेशभीरुता।
पञ्च संकोचदा दोषाः पद्मिन्या इव संपदः।। - चतुर्वर्गसंग्रह 2/17

[3] श्रीलाभसुभगः सत्यासक्तः स्वर्गापवर्गदः।
जयतात् त्रिजगत्पूज्यः सदाचार इवाच्युतः। - चारुचर्या, श्लोक 1

जहाँ तक मैं समझता हूँ क्षेमेन्द्र धर्मशील होते हुए भी कट्टरपन्थिता के सर्वथा विरोधी हैं। उनकी धार्मिकता उदारता और सदाशयता से परिपूर्ण हैं। 'दर्पदलन' नामक अपनी कृति में उन्होंने बताया है कि मनुष्य में घमण्ड का होना बहुत घातक हैं यह दर्प कुल, धन, ज्ञान, रूप, शौर्य, दान और तप इन सात बातों से होता है। कुल के विषय में उनका मत है कि उच्च कुल को लेकर लोगों को दर्प घेरे रहता हैं पर यदि कुल के मूल का अन्वेषण किया जाय तो कमल के मूल की तरह पङ्क से ही पाला पड़ेगा। इसलिए व्यक्ति को कुल का अभिमान छोड़ देना चाहिए। शरीर और कुल ढके हुए ही अच्छे प्रतीत होते हैं। सच्चा कुलीन वही है जिसकी माता अविवेक राशि नहीं है, पिता पुनर्जन्म रूपी संसार नहीं है तथा तृष्णा रूपी पत्नी में जो नितरां आसक्त नहीं है।[1] इस प्रकार कुलीनता का दंभ भी व्यर्थ ही है।

धन का मद भी कम अनर्थकारी नहीं होता। कविवर क्षेमेन्द्र की धारणा है कि जो लोग विद्या पाकर विवाद करते हैं धन पर घमण्ड करते हैं। अच्छी बुद्धि पाकर दूसरों को ठगते हैं और उन्नत पद पाकर दूसरों का तिरस्कार करते हैं। उनके लिए प्रकाश ही अन्धकार है।[2] इसलिए सज्जन लोग धर्म करने के लिए ही धन का अर्जन करते हैं। हजारों लोग धन की प्राप्ति के लिए प्रयत्न शील रहते हैं। पर उनमें से कुछ ही पर्याप्त धन कमा पाते हैं। शेष निर्धन ही रहते हैं। इससे यही ज्ञात होता है कि धन की प्राप्ति भाग्याधीन है, फिर उस पर गर्व किस तरह का। यही स्थिति श्रुत अर्थात् ज्ञान की है विद्या भी श्री के समान ही लोभ और द्वेष से निन्दित होती है। यह जब कुलांगना के समान लज्जा से नम्रता प्रदान करती है तभी सुशोभित होती है। सद् विद्या तो एक ही प्रकार की होती है पर असद् विद्यायें अनेक प्रकार की होती है, जैसे भार विद्या, क्षुद्रविद्या,

---

[1] दर्पदलन 2/75, 82

[2] दर्पदलन 2/9

धृष्टविद्या, शुकविद्या, शठविद्या, पण्यविद्या आदि। इन पर घमण्ड नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए वास्तविक विद्या वही है जिससे गुरु गर्व से, कवि द्वेष से, यति भोग से राजा पाप से तथा ब्राह्मण क्रोध से विरत होता है।[1] रूप का दर्प भी होता है पर रूप तो बहुत ही क्षणभङ्गुर होता है। मेरे विचार में शौर्य का दर्प भी हेय होता है क्योंकि वह तुलनात्मक होता हैं। अपने से बढ़कर शूर के सामने व्यक्ति भीगी बिल्ली बन जाता है। किसी का वध कर प्राण हर लेना वीरता नहीं, अपितु सच्ची वीरता किसी के प्राण बचाना है इसलिए प्राण हर्ता नहीं, अपितु प्राणप्रद व्यक्ति ही वास्तविक शूर है। दान का गर्व भी लोगों में देखा जाताहै। परन्तु वे नहीं जानते कि दान किसे कहते हैं जो लोग लोकप्रसिद्धि के लिए दान देते हैं वे धन और यश का क्रय-विक्रय करते हैं, दान नहीं देते।[2] तिरस्कार पूर्वक एवं श्रद्धारहित भाव से दिया गया दान ऊसर भूमि में बीज बोने के समान निष्फल होता है। सच्चा दान वही है जो किसी भी प्रकार की फल की कामना से न दिया गया हो तथा जितना अपेक्षित हो उतना दिया गया हो। जो धन व्यक्ति की ईमानदारी की कमाई हो और उसका सर्वस्व हो अर्थात् अतिरिक्त नहीं, जिसमें किसी और का हिस्सा मिला न हो तथा जिसे देकर व्यक्ति दुःख या पश्चात्ताप न करे। वही दान फलदायक होता है जो शुद्ध चित्त से दिया गया हो, चाहे वह कितना भी अल्प क्यों न हो तथा जो दान भोग का साधक न हो।[3]

तप की स्थिति तो और भी विलक्षण है। तप करने वाले का चित्त यदि विरक्त है तो तप करने की क्या आवश्यकता है? और यदि अनुरक्त है तो तप करने से लाभ ही क्या है? इसी तरह यदि चित्त स्वतः प्रसन्न है तो तप करने की आवश्यकता नहीं पर यदि चित्त में क्रोध आदि मनोविकार विद्यमान है तो तप हो

---

[1] दर्पदलन 3/49

[2] दर्पदलन 5/23

[3] दर्पदलन 6/52

ही नहीं सकेगा। इसलिए नाना प्रकार के कष्ट सहकर सम्पादित तप कर दर्प करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि बहुत अधिक राग, द्वेष और घमण्ड से किया हुआ तप क्षीण हो जाता है वास्तव में विचार कर देखा जाय तो सबसे बड़ा धन लोभ का न होना, सबसे बड़ा तप अहिंसा, सबसे बड़ी विद्या माया का अभाव अर्थात् छल-कटप का न होना है, वही श्लाघ्य है।[1] इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने अपने काव्यों में अपनी उत्कृष्ट नैतिक मान्यताओं को स्थान दिया है।

(ii) साहित्यिक मान्यतायें

संस्कृत के प्रसिद्ध कवि एवं समालोचक राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' नामक अपनी कृति में एक पद्य उद्धृत किया है जिसमें कहा गया है कि काव्य की रचना करने में सक्षम कोई एक होता है तो दूसरा उसे हृदयङ्गम कर उसके गुण-दोष का विचार करना जानता हैं। यह उसी प्रकार सिद्ध है जिस प्रकार एक तरह का पत्थर सुवर्ण पैदा करता है तथा दूसरी तरह का (कसौटी) उसकी उत्तमता की परीक्षा करने में समर्थ होता हैं पर एक ही व्यक्ति में दोनों प्रकार की क्षमताओं का होना अपने आप में विशेष महत्त्व रखता है।

क्षेमेन्द्र भी दण्डी, आनन्दवर्धन, राजशेखर एवं पण्डितराज जगन्नाथ आदि की भाँति कवि और भावक दोनों थे। कवि के रूप में इन्होंने विपुल साहित्य की रचना की और व्यासदास कहलाये तो भावक या समीक्षक के रूप में उन्होंने संस्कृत-साहित्य के शास्त्र को 'औचित्य' नामक सिद्धान्त दिया। साहित्यशास्त्र के क्षेत्र में उनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं- 'सुवृत्ततिलक,' 'औचित्यविचारचर्चा ' और 'कविकण्ठाभरण'। औचित्यविचारचर्चा के उपक्रम में उन्होंने 'कविकर्णिका' नामक अपनी पूर्व रचना का उल्लेख किया है। कविकर्णिका की कोई भी

---

[1] अलोभः परमं वित्तमहिंसा परमं तपः।
अमाया परमा विद्या निरवद्या मनीषिणाम् । - दर्पदलन 4/152

पाण्डुलिपि दुर्भाग्यवश उपलब्ध नहीं हो पायी हैं। सुवृत्ततिलक छन्दोविषयक रचना है तो 'कविकण्ठाभरण' एक प्रकार से कवि शिक्षा ही हैं। औचित्यविचारचर्चा ही इनमें प्रमुख है जिसमें औचित्य सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। क्षेमेन्द्र इस समय हुए थे जब काश्मीर साहित्य के शास्त्रीय विवेचन का केन्द्र बना हुआ था। भामह से लेकर अभिनवगुप्त के आचार्यों की महती परम्परा ने साहित्य की समीक्षा का एक इतिवृत्त निर्मित कर दिया था। समभवतः उसी से प्रेरित होकर कविवर क्षेमेन्द्र ने भी साहित्यिक समीक्षा पर लेखनी उठायी। क्षेमेन्द्र का कवि भाव अत्यन्त प्रौढ़ था, तथापि साहित्य की शास्त्रीय मीमांसामें उनकी प्रतिभा ने जो आविर्भाव किया वह सर्वथा मौलिक सिद्ध हुआ।

वस्तुतः कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी समीक्षा पद्धति में प्राचीन परम्परा को छोड़कर सर्वथा नवीन मार्ग अपनाया है। काव्य के प्रयोजन, हेतु, एवं लक्षण देते हुए उसके गुण, अलंकार एवं रस आदि तत्त्वों के लक्षणोदाहरण क्रम से निरूपण की प्रणाली का परित्याग आनन्दवर्धन ने ही कर दिया था क्षेमेन्द्र के समक्ष पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का खण्डन-मण्डनात्मक विवेचन विपुल मात्रा में उपस्थित था। आनन्दवर्धन ने अलंकार और रीति के काव्यात्म-विषयक सिद्धान्तों का निराकरण कर 'ध्वनि' नामक नये सिद्धान्त की उद्भावना की थी। जिसे काश्मीर विद्वान ही अभी पूर्णरूप से अङ्गीकार नहीं कर पाये थे। मुकुलभट्ट, भट्टनायक तथा महिमभट्ट ने ध्वनि सिद्धान्त के खण्डन में स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की थी। अभिनवगुप्त ने आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक पर 'लोचन' टीका लिखकर ध्वनि और व्यञ्जना का समर्थन किया था। पर अभिनवगुप्त के लिए भी सामान्य रूप से ध्वनि अर्थात् व्यञ्जनीयता को काव्य की आत्मा स्वीकार करना संभव न हो सका था। ऐसी स्थिति में क्षेमेन्द्र के समक्ष यह विकट प्रश्न था कि वे क्या करें। अभिनवगुप्त के चरणों में बैठकर उन्होंने साहित्य का पाठ सुना था। पर किस ग्रन्थ का अध्ययन उन्होंने वहाँ किया इसका कोई उल्लेख नहीं है। क्षेमेन्द्र ने अपनी प्रकृति के अनुसार किसी शास्त्रीय विवाद

में न पड़कर काव्यालोचन के प्रसंग में 'औचित्य' नामक तत्त्व की भूमिका की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया।

क्षेमेन्द्र से पहले आनन्दवर्धन ने रसनिष्पत्ति के नियामक तत्त्व के रूप में औचित्य की चर्चामात्र की थी। उनका कहना था कि रसभङ्ग का कारण औचित्य है तथा औचित्य का उपनिबन्धन ही रसनिष्पत्ति का उपनिषत् अर्थात् रहस्य है। क्षेमेन्द्र ने वहीं से औचित्य को पकड़ लिया और उसी के आधार पर न केवल रस को अपितु गुणों एवं अलंकारों की भी व्यवस्था प्रतिपादित की उचित का भाव ही औचित्य है।[1]

क्षेमेन्द्र के अनुसार न केवल काव्य के प्रसिद्ध तत्त्वों, अपितु पदवाक्य, क्रिया, कारक, लिङ्ग, वचन, भाषाविषयक एवं देशकाल, व्रत, सत्त्व स्वभाव आदि भाव विषयक तत्त्वों के उपनिबन्धन में भी औचित्य की भूमिका देखी जा सकती है।[2] इस प्रकार काव्य की रचना एवं उसकी मीमांसा दोनों का आधार औचित्य बन जाता है। इसी औचित्य को क्षेमेन्द्र ने काव्य का जीवित अर्थात् प्राण माना है जिसका अभिप्राय यह है कि काव्य में भाषा एवं भाव का उपनिबन्धन यदि औचित्य के आधार पर हुआ है तो वह रचना सजीव मानी जायेगी।

'कविकण्ठाभरण' में कवि ने कहा है कि चमत्कार रहित काव्य काव्य नहीं होता, न उसके रचयिता को वस्तुतः कवि कहा जाना चाहिए। "न हि चमत्कारविरहितस्य कवेः कवित्वं काव्यस्य वा काव्यत्वम्"।[3] इस प्रकार काव्य रचना में चमत्कार का आधान आवश्यक है। चमत्कार रहित कविता वैसा ही है

---

1 उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य तत् ।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।। -औचित्यविचारचर्चा 1/7

2 औचित्यविचारचर्चा 8/10

3 औचित्यविचार चर्चा 3/2

जैसी लावण्यहीन नारी जो कोई दोष न होने पर भी किसी के मन पर नहीं चढ़ती अर्थात् चित्त को अवर्जित नहीं करती।[1]

मेरे विचार में चमत्कार की दृष्टि से काव्य की समीक्षा का प्रकार क्षेमेन्द्र की अपनी सूझ है। काव्य में चमत्कार की बात तो अन्य आचार्य भी करते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि से चमत्कार के स्वरूप में कोई भेद नहीं होता। क्षेमेन्द्र के उत्तरवर्ती मम्मट प्रभृति आचार्यों ने चमत्कार के निरूपण के उक्त प्रकार को न अपना कर उसे वस्तु, अलङ्कार एवं रस तक ही सीमित माना। गुण और दोष के स्वरूप एवं भेद के विषय में भी क्षेमेन्द्र की विवेचना सर्वथा मौलिक है। वे बाह्य गुणों के तीन प्रकारों का विधान करते हैं- शब्द- वैमल्य, अर्थ - वैमल्य तथा रस - वैमल्य। इसी प्रकार शब्द- कालुष्य, अर्थ- कालुष्य एवं रस - कालुष्य के नाम से दोष भी तीन ही प्रकार के होते हैं। इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने काव्य के पाँच भेदों का निरूपण किया है- सगुण, निर्गुण, सदोष, निर्दोष एवं सगुण-दोष।

इन सबके उदाहरण देते हुए क्षेमेन्द्र ने अपनी प्रायः सभी कृतियों का उपयोग किया है तथा अपने पूर्ववर्ती वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति, श्रीहर्ष, बाणभट्ट तथा उत्पलराज आदि अनेक कवियों की रचनाओं में से पद्य उद्धृत किये हैं। इनकी समीक्षा सर्वथा व्यावहारिक है। जहाँ मात्र सिद्धान्त का प्रतिपादन न कर कवियों की रचनओं के माध्यम से अपनी बात का समर्थन किया गया है। यह सारी समीक्षा दार्शनिक उलझाव से सर्वथा रहित है।

आचार्य क्षेमेन्द्र की दृष्टि में औचित्य और चमत्कार ये ही दो तत्त्व ऐसे है जिनका महत्त्व काव्य के क्षेत्र में सर्वाधिक है। इनमें से औचित्य कविगत है तो चमत्कार सहृदयगत। कवि का औचित्य बोध जितना विशद होगा सहृदय को

---

[1] निर्दोषलेषमपि रोहति कस्य चित्ते।
लावण्यहीनमिव यौवनमङ्गानानाम् । -कविकण्ठाभरण 3/2

उसकी रचना में चमत्कार की अनुभूति उतनी ही प्रखर होगी। आनन्दवर्धन ने औचित्य को रस का ही उपनिषद् कहा है तथा रसभङ्ग का एकमात्र कारण अनौचित्य को बताया है।[1]

वैसे 'सुवृत्ततिलक' भी कविवर क्षेमेन्द्र की एक शास्त्रीय रचना है, जिसमें छन्दः शास्त्र का निरूपण करते हुए बताया है कि कौन सा छन्द किस विषय की रचना के लिए उपयुक्त होता है जिस प्रकार मुक्ता फल आभूषणों में समुचित स्थान पर गूँथकर ही शोभाधायक होते हैं उसी प्रकार काव्य-प्रबन्धों में विषयों का संग्रथन समुचित छन्दों के माध्यम से ही सौन्दर्य की सृष्टि करता है। क्षेमेन्द्र का कहना है कि सरस्वती अर्थात् विद्या का प्रसार चार प्रकार से हुआ है- 1.- शास्त्र के रूप में तथा 2. काव्य के रूप में 3. शास्त्र-काव्य के रूप में तथा 4. काव्यशास्त्र के रूप में। इनमें शास्त्र की रचना अनुष्टुप् छन्दों में ही उपयुक्त होती है जिससे सर्वसाधारण को अर्थबोध में सुविधा हो जाय। काव्य में रसों एवं वर्णों की अनुरूपता को ध्यान में रखते हुए सभी प्रकार के छन्दों का प्रयोग होना चाहिए। शास्त्र-काव्य में लम्बे छन्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा काव्यगत छन्द रस के आधीन प्रयुक्त होने चाहिए।[2]

क्षेमेन्द्र की उपदेशात्मक रचनाओं तथा स्मृति एवं पुराण आदि में अनुष्टुप् के प्रकारों का प्रयोग समुपयुक्त हुआ है। काव्य के आरम्भ में विस्तृत कथानक का संक्षेपतः निरूपण करने तथा शान्ति के उपदेश देने में भी अनुष्टुप् छन्द ही प्रशंसनीय है। शृङ्गार के आलम्बन रूप नायिका के मनोहारी के रूप में तथा बसन्त आदि उद्दीपन विभाव के निरूपण में उपजाति छन्द ही सबसे बढ़कर उपयुक्त होता है। कालिदास प्रभृति महाकवियों ने ऐसा ही किया है। चन्द्रोदय

---

[1] अनौचित्यदृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम् ।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।। -ध्वन्यालोक, द्वितीय उल्लास

[2] सुवृत्तातिलक, 3/5

आदि उद्दीपन विभावों का निरूपण रथोद्धता छन्द में किया जाना चाहिए। राजनीति का विवेचन वंशस्थ में ही प्रभावशाली होता है। वीर एवं रौद्र रसों के मिश्रण वर्णन के लिए वसन्ततिलका छन्द सम्यक् रूप से उपयुक्त है। सर्ग का समापन मालिनी वृत्त से करना चाहिए। शिखरिणी का प्रयोग अनुरूपता या विशिष्टता के निरूपण में तथा हरिणी का उदारता एवं रुचिर विचार की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त होता है। आक्षेप और धिक्कार पृथ्वी छन्द में होने चाहिए तथा वर्षा ऋतु, प्रवास एवं व्यसन के निरूपण में मन्दाक्रान्ता सबसे उपयुक्त छन्द है। राजाओं की वीरता का बखान शार्दूलविक्रीडित में तथा आँधी तूफान का वर्णन स्रग्धरा में चमत्कारी होता है। मुक्तक रचनाओं में दोधक, तोटक एवं नर्कुटक छन्दों का प्रयोग करना ही अधिक उपयुक्त होता है।[1]

क्षेमेन्द्र की मान्यता है कि कवि को छन्दों के प्रयोग में दरिद्रता नहीं करनी चाहिए। फिर भी प्रत्येक कवि का कोई विशेष प्रिय छन्द अवश्य होना चाहिए जिससे वह अपनी बात बहुत सफाई एवं प्रभावशाली ढंग से कह सके। अभिनन्द का अधिकार अनुष्टुप् छन्द पर असाधारण था तथा पाणिनी उपजाति के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। भारवि की कविता का चमत्कार वंशस्थ वृत्त में सर्वाधिक है तो चमत्कार की काव्य-कला वसन्ततिलका के माध्यम से जगमगाती है। भवभूति की शिखरिणी वर्षाकालीन नदी के समान है। उनके हाथों वह मेघ के गरजने पर मयूरों के समान नृत्य करती है। कालिदास का प्रियतम छन्द मन्दाक्रान्ता है, जो उत्तम कोटि के अश्व के सन्निधान से कम्बोज प्रदेश की घोड़ी के समान हिन हिनाता है तो राजशेखर शार्दूलविक्रीडित के प्रयोग में निष्णात् हैं।

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि छन्दों का लक्षण एवं उदाहरण देकर निरूपण तो अनेक आचार्यों ने किया है, परन्तु विषयानुरूप उनके प्रयोग की दृष्टि से कविवर क्षेमेन्द्र का विवेचन सर्वथा अभिनन्दनीय है। इस प्रकार क्षेमेन्द्र

---

1 सुवृत्ततिलक, 3/23

काव्यात्मक सिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्यों में से एक हैं तो दूसरी ओर कवि शिक्षा जैसे विषय पर भी लेखनी चलादी है और तीसरी ओर छन्दः शास्त्र के क्षेत्र में उनका मौलिक योगदान है।

(iii) दार्शनिक मान्यतायें

कविवर क्षेमेन्द्र की कृतियाँ यद्यपि सभी साहित्यिक हैं, दर्शनशास्त्र उनका विषय नहीं है, तथापि उनमें हुई अभिव्यक्तियों से उनकी दार्शनिक मान्यताओं पर यत्किंचित् प्रकाश पड़ता है। उन दिनों काश्मीर में शैव धर्म का प्रचार प्रबल था। शैव सम्प्रदाय के उच्चकोटि के आचार्य सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त क्षेमेन्द्र के पूर्व वर्ती थे। आचार्य अभिनवगुप्त के तो वे शिष्य भी रह चुके थे। अभिनवगुप्त के नेतृत्व में शैव धर्म और दर्शन उन दिनों अपने चूडान्त उत्कर्ष पर था। तत्कालीन शायद ही कोई विद्वान् या राजा ऐसा हुआ हो जिसने शैव सम्प्रदाय के प्रचार एवं प्रसार में योग न दिया हो। क्षेमेन्द्र के उल्लेखों के अनुसार उनके पिता प्रकाशेन्द्र शिव के भक्त थे, जिनका सम्पूर्ण जीवन शिव की अर्चना और उपासना में ही व्यतीत हुआ था। क्षेमेन्द्र उससे अप्रभावित हो ऐसा कैसे हो सकता है? 'चारुचर्या' नामक उपदेशपरक अपनी रचना में क्षेमेन्द्र ने कहा है कि शिव की अर्चना किये बिना किसी कार्य का आरम्भ नहीं करना चाहिए।[1] 'कविकण्ठाभरण' एवं 'सुवृत्ततिलक' प्रभृति कई कृतियों का मंगल श्लोक शिव की स्तुतिपरक है। पर इसके साथ ही उन्होंने विष्णु, गणेश, सरस्वती आदि की भी मंगलश्लोकों में स्तुतियाँ की हैं। क्षेमेन्द्र धर्म एवं दर्शन विषयक मान्यताओं में उदार हैं। कहीं भी उनकी किसी उक्ति से उनका हठ या दुराग्रह प्रकट नहीं होता। वे शास्त्र के अनुयायी हैं। शास्त्रीय परम्परा एवं विधान के प्रति उनकी महती आस्था बताती है कि वे सामान्य रूप से वर्णाश्रम धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने शास्त्रोक्त विधि से जप, होम, अचर्ना एवं श्राद्ध आदि करने

---

[1] न कुर्वीत क्रियां कांचिदनभ्यर्च्य महेश्वरम्। - चारूचर्या, पद्य 4

का उपदेश अपनी कृतियों में दिया है, पर वे कट्टरता के विरोधी थे। भारतीय दर्शन की सभी परम्पराओं कर उत्तमता के प्रति उनकी आस्था विशाल थी। उनके लिए शैव, वैष्णव एवं बौद्ध परम्पराओं में कोई भेद नहीं था। सद्गुणों के ग्रहण के प्रति उदारता का ही उपदेश उन्होंने दिया है।

मेरी दृष्टि में कविवर का जीवन के प्रति दृष्टिकोण उदार था। वे भोग को जीवन का लक्ष्य नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में मोक्ष ही परम पुरुषार्थ हैं अतः निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करते हुए ही विषयों का उपभोग करना चाहिए। मोक्ष को जीवन का लक्ष्य मानते हुए भी उन्होंने उसकी प्राप्ति के लिए विहित किसी विशेष धारणा या सम्प्रदाय के प्रति अपनी आस्था नहीं व्यक्त की हैं। उनका विश्वास है कि सदाचार अपने आप में एक विश्वजनीन मार्ग है जिसका संयमपूर्वक पालन करने से व्यक्ति में विवेक जाग्रत होता है वह विवेक ही उसे सन्मार्ग में नियोजित किये रहता है। अतः दर्पदलन नामक अपनी एक रचना में उन्होंने विवेक की ही बन्दना करते हुए कहा कि उस विवेक को ही बार-बार नमस्कार है जिसके जाग्रत होने पर साधक के सारे विघ्न अपने- आप शान्त हो जाते हैं क्योंकि उनका प्रेरक दर्प रूपी सर्प ही सरक कर पता नहीं कहाँ गायब हो जाता हैं। विवेक ही अृत का सच्चा निधान है, जिसके जाग्रत होने पर ही आत्मा का प्रकाश एवं विकास संभव होता हैं वह विवेक उत्सेक को दूर कर संसार भाव से विच्छिन्न करता हुआ व्यक्ति के चित्त को शान्ति के अमृत से सींच देता है।[1]

क्षेमेन्द्र की मान्यता है कि जीवन में सुख देने वाले तत्त्व संसार में अनेक हैं जैसे यौवन, प्रियामिलन, धन एवं सुन्दरियाँ, पर उनसे प्राप्त होने वाला सुख अस्थायी है तथा देश, काल एवं पात्र की सीमाओं से बँधा हुआ है तथा सब अन्ततोगत्वा वियोगान्त हैं। स्वप्न के समान स्वल्पकाल स्थायी, प्रियजनों का

---

[1] दर्पदलन 1/2

मिलन, सुन्दर जीवन का जरावस्था के द्वारा निगल जाया जाना तथा जीवन का निष्ठुर काल के गाल में समा जाना देखकर कौन ऐसा है जिसे वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है।[1]

भर्तृहरि के ही पद्य को कुछ और विकसित कर उन्हीं की पद्धति पर क्षेमेन्द्र ने भी कहा है कि रूप आदि विषयों का भोग सब को अच्छा लगता है पर उससे नाना प्रकार के रोगों के होने का भय निरन्तर बना रहता है, सुख के क्षय होने का, अधिक धन होने पर आग और राजा का नौकरी में मालिक का गुण होने पर दुष्ट लोगों का, खान-दान के नामी होने पर किसी नारी के भ्रष्ट होने का, मान होने पर अपमान का, विजय होने पर शत्रु का, शरीर के सुन्दर और सुगठित होने पर मृत्यु का भय सदा लगा रहता है। इस प्रकार संसार में वैभव कही जाने वाली कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिससे भय न हो केवल वैराग्य ही ऐसा है जहाँ निर्भयता है।[2] इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने धन, धर्म आदि सब की स्थान-स्थान पर महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भी वैराग्य को सर्वोपरि माना हैं। यह उनकी मोक्षवादी दार्शनिक मान्यता के सर्वथा अनुरूप ही है। अतएव 'चतुर्वर्गसंग्रह' नामक अपनी उपदेशात्मक कृति में उन्होंने मोक्ष के सर्वोपरि होने का विधान करते हुए कहा है कि धर्मात्मा व्यक्तियों का परिभव कभी कल्याणकारी नहीं होता, आपदाओं से होने वाली पीड़ा से बचव के लिए धन से बढ़कर और कोई वस्तु व्यावहारिक रूप में महत्त्वपूर्ण नहीं है, इस संसार में नारी के मुख से बढ़कर सुखद वस्तु और कोई नहीं है पर सब प्रकार के क्लेशों का विनाशक विरक्ति रूप मोक्ष से बढ़कर तो कुछ भी संम्भव नहीं है।[3]

---

[1] चतुर्वर्गसंग्रह 4/5

[2] चतुर्वर्गसंग्रह 4/7

[3] नास्ति स्वस्तिकरः परः परिभवो धर्मात्मना प्राणिना-
मापन्नापशमक्षमं धनसमं नान्यत् क्रियाजीवितम्।

उपनिषदों के इस सिद्धान्त में क्षेमेन्द्र की महती आस्था है कि पुण्यकर्मों से सुखमय जीवन यापित कर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती हैं पुण्य का अर्जन सत्कर्मों से ही होता है। शरीर को विकट कष्ट देकर किये जाने वाले तप के पक्ष में क्षेमेन्द्र नहीं हैं। वे तो दया, उदारता, सेवा आदि सदाचारों के पालन से पुण्यार्जन के पक्षपाती हैं। तन्त्र-मन्त्र की विद्या को भी क्षेमेन्द्र परवंचना ही मानते हैं। उनकी धारणा है कि समाज में पाखण्डी तत्त्व ही इनका आश्रयण कर साधु लोगों को ठगते फिरते हैं। अतः लोगों को इन असामाजिक तत्त्वों से सावधान रहने के लिए ही उन्होंने नर्ममाला, दर्पदलन एवं देशोपदेशआदि रचनाएँ की हैं। मेरे विचार में क्षेमेन्द्र जीवन की सरलता एवं सहजता में रुचि रखते हुए प्रतीत होते हैं, जटिलता एवं गोपनीयता में नहीं। उनकी जीवन दृष्टि बहुत स्पष्ट है उनका कहना है कि व्यक्ति का जीवन पारदर्शी होना चाहिए। बहुत अधिक दुराव छिपाव करके जो जीवन यापन करता है वह वंचक है। उससे लोगों को सावधान रहना चाहिए।

इस प्रकार संक्षेपतः कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर क्षेमेन्द्र की दार्शनिक मान्यता यही है कि वे निवृत्तिमार्ग में विश्वास करते हैं। उनकी दृष्टि में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों ही पुरुषार्थ हैं और मानव जीवन के लक्ष्य हैं, पर धर्म, अर्थ और काम साधनत्रय हैं, साध्य तो केवल मोक्ष ही है। अतः वही परम पुरुषार्थ हैं। प्रत्येक व्यक्ति को मोक्षप्राप्ति को ही ध्यान में रखकर जीवनयापन करना चाहिए। समाज में इसी से सुख और शान्ति संभव है।

●●●

संसारे परमस्ति नोऽत्र सुखदं रम्यं न रामाननोत्
सर्वक्लेशविनाशनिर्वृतिरसः को नाम मोक्षात् परः।। चतुर्वर्गसंग्रह 4/28

दशम अध्याय

उपसंहार

कविवर क्षेमेन्द्र के वैविध्यपूर्ण विशाल वाङ्मय-पारावार का अवगाहन करना दुःसाध्य कार्य है। अनुसन्धान कार्य के लिए समग्र वाङ्मय का ग्रहण किया जाना एक जटिल प्रक्रिया ही होती। अतः उनके केवल आठ लघुकाव्यों का परिशीलन ही इस प्रबन्ध का सीमा क्षेत्र है। परिशीलन साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उभयविध दृष्टि से अथवा कवि के कवित्व रूप एवं उपदेशकत्व रूप दोनों रूपों का समीक्षण किया गया है। क्षेमेन्द्र का आलोचन चाहे जिस दृष्टि से करें, उनके काव्य में अन्तर्निहित व्यङ्ग्यकार सबसे पहले और सबसे अधिक तीव्रता के साथ उभर कर सामने आता है। क्षेमेन्द्र समाज के एक ऐसे चौराहे पर खड़े हैं, जहाँ समाज के विभिन्न वर्गों की राहें आकर मिलती हैं। वे एक युगद्रष्टा के रूप में सबको देखते हैं, उन पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं, समाज के दूषित पक्षों पर आक्षेप-अधिक्षेप करते हैं और साहित्य को समाज के लिए समाज सुधार के शस्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं। उनका लेखनी रूपी बाण जिधर भी घूम जाजा है, अति कठिन लक्ष्यों का भेदन कर डालता है। यही कारण है कि क्षेमेन्द्र जिस विषयवस्तु पर लेखनी को उठाते हैं, बहुविध वर्णनों से तद्विषयक भावों को स्पष्ट कर उनकी पुष्टि भी करते हैं।

क्षमेन्द्र वस्तुतः विदग्धों के कवि न होकर साधारण जनता के कवि हैं। वे सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। गुणग्राही स्वभाव के होने के कारण वे 'सर्वमनीषिशिष्य' होना स्वीकार करते हैं तथा सभी धर्मों के प्रति उदाहरता एवं आदर भाव रखते हुए भगवान् विष्णु के प्रति अटूट श्रद्धासम्पन्न हैं। इन विशेषताओं के साथ ही कवि काव्यानुकूल विषय का चिन्तन एवं मनन कर शब्दों एवं कल्पनाओं के पश्चात् काव्यसर्जना करता है। इसे क्षमेन्द्र ने स्वतः स्वीकार करते हुए कहा है कि विविध रसों के आस्वादन में निमग्न और भिन्न-

भिन्न गुणों से आकृष्ट कवि का मन विवेक के सेचन के द्वारा परिपक्व होकर उछलता है तथा भीतर पक्वाङ्कुर के सदृश कवित्व का निर्माण करता है।

कविवर क्षेमेन्द्र हमारे सामने एक सफल आलोचक के रूप में प्रस्तुत होते हैं। वे कालिदास आदि महाकवियों के दोषों का विवेचन करने में भी नहीं चूकते हैं। वे आलोचना निष्पक्ष भाव से करते हैं। वे इस कार्य में भी साहस, न्याय एवं निष्पक्षता का परिचय देते हैं। वे अपने भी काव्यों के दोषों का विवेचन निःसंकोच करते हैं। उनमें आलोचना की प्रवृत्ति अधिक होने के कारण ही उन्होंने नीत्युपदेशपरक काव्यों को भी समाज की आलोचना के रूप में प्रस्तुत किया है।सम्भवतः उनकी आलोचना प्रवृत्ति इतनी तीव्र रही है कि कवित्व चेतना की कोमल तन्त्रियों को अधिक पनपने का अवसर नहीं मिला। काव्यालोचक वही हो सकता है जो स्वयं उच्चकोटि का कवि हो। आचार्यों का यह कथन सत्य ही है- 'कविर्भावयति भावकश्च कविः' अर्थात् कवि ही भावना करता है और भावक ही काव्य सृष्टि करता है। भावक (आलोचक) कवि की स्थिति कभी शोचनीय नहीं होती। उसकी प्रतिष्ठा सर्वत्र तथा सार्वकालिक होती हैं। कारयित्री एवं भावयित्री दोनों तरह की प्रतिभाओं का संगम असम्भव नहीं तो दुर्लभ है। क्षेमेन्द्र की अपेक्षा अन्य कवि ऐसे हैं जो आलोचक नहीं है। वे काव्य-रचना करने में सक्षम होते हुए भी आलोचना नहीं कर सकते हैं। वे अपनी ही रचना की आलोचना नहीं कर सकते हैं। इसीलिए आलोचक कभी-कभी ऐसे भावों को काव्य में खोज निकालता है, जिसका पता स्वयं कवि को भी नहीं होता। क्षेमेन्द्र विशुद्ध आलोचक होने के नाते अपनी साहित्यिक रचना की आत्मा पर प्रकाश डालते हैं, जिससे पाठक को भी उनके भावों को समझने में व्यर्थ प्रयास नहीं करना पड़ता है।

कश्मीर अनेक कवियों के उत्पन्न होने का पुण्य प्रदेश है, जहाँ की प्राकृतिक सुषमा से आकृष्ट होकर अनेक कवियों ने सरस एवं कोमल काव्यों की

सर्जना की, किन्तु कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने लघुकाव्यों में काश्मीर की तत्कालीन शोचनीय अवस्था से प्रभावित होकर समाज में प्रसृत बुराइयों एवं उनमें लिप्त वर्गों को ही काव्य का प्रतिपाद्य विषय बनाया है। वे अपने युग के भ्रष्ट एवं अशान्त वातावरण से इतने असन्तुष्ट थे कि उन्होंने उसे सुधारने के लिए दुष्टता के स्थान पर शिष्टता एवं कुविचारों के स्थान पर सद्विचारों की स्थापना के निमित्त भ्रष्ट लोगों पर प्रहार हेतु अपदेशप्रधान तथा सत्पुरुषों के मानसानन्द हेतु उपदेशप्रधान काव्यों की रचना की है। इस प्रकार इन्होंने तत्कालीन समाज को काव्य-दर्पण में प्रतिबिम्बित करते हुए समाज सुधार की दिशा में भी अप्रतिम योगदान किया है।

कविवर क्षेमेन्द्र रचना के क्षेत्र में धनी हैं। उन्होंने संस्कृत-साहित्य कोष के संवर्धन में भी प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया है। उनकी रचनायें संख्या में अधिक होने के साथ ही गुण बहुल भी हैं तथा विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित भी हैं। वे आचार्य एवं कवि दोनों रूपों में हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। आचार्य के रूप में उनके तीन ग्रन्थ 'औचित्यविचारचर्चा', सुवृत्ततिलक' एवं 'कविकण्ठाभरण' हैं, जब कि कवि के रूप में इनके अनेक काव्य हैं- 'चारुचर्या' 'चतुर्वर्गसंग्रह', 'कलाविलास', 'दर्पदलन', 'समयमातृका', 'नर्ममाला', 'देशोपदेश' एवं 'सेव्यसेवकोपदेश' ये आठ लघुकाव्य प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रतिपाद्य विषय हैं। 'रामायणमञ्जरी', 'भारतमञ्जरी' व 'बृहत्कथामञ्जरी' ये 'मञ्जरीत्रय क्रमशः रामायण, महाभारत एवं गुणाढ्यकृत बृहत्कथा पर आधारित हैं। इसके अतिरिक्त भी अनेक काव्य ग्रन्थ हैं। इनकी अधिक संख्या में काव्य-रचना करने के बाद भी क्षेमेन्द्र तीन ही शास्त्रीय ग्रन्थों के कारण आचार्य के रूप में अधिक ख्यातिलब्ध हैं। विभिन्न संस्कृत-काव्यालोचकों के ग्रन्थों में भी क्षेमेन्द्र को आचार्य के रूप में ही स्थान मिला है। वे अपने 'औचित्यसिद्धान्त' के कारण प्रायः सभी काव्यालोचकों के ग्रन्थों में उद्धृत हैं, जबकि कवि के रूप में बहुत ही कम आलोचनकों ने उनको अपना विषय बनाया है। यह भी कहा जा सकता

है कि क्षेमेन्द्र 'औचित्यसिद्धान्त' के कारण इतना प्रसिद्ध हुए कि उस प्रसिद्धि में उनकी कवित्व विशेषता अभिभूत सी हो गयी। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि उन्होंने समाज के सभी वर्गों के दूषित पक्षों पर व्यङ्ग्य किया है। समाज के उच्चवर्ग ब्राह्मण, वैद्य, ज्योतिषी, गुरु, व्यवसायी, छात्र एवं कायस्थ आदि उनके व्यङ्ग्य के कटु एवं तीखे प्रहार के विषय बने हैं। अतः उनका काव्य सरस काव्यों की श्रेणी में परिगणित न होकर एक ऐसी शुष्क एवं यथार्थ भूमि पर खड़ा हैं, जहाँ से पाठक को अधिक्षेपरूप गर्म हवा के थपेड़े झेलने पड़ते हैं, जहाँ उपदेशपरक सुभाषित वचनों की शीतलता तो है, पर मन संविद्विश्रान्ति की अवस्था तक नहीं पहुँच पाता, जहाँ कवि हर दूषण पक्ष के आगे अपनी लेखनी रूपी कृपाणधारा को लेकर प्रहार करने को तैयार है। अतः क्षेमेन्द्र ने काव्य की रसवादी अवधारणा को समग्र रूप से आत्मसात् न कर काव्यानुभूति के ऐसे परुष पक्षों का उद्घाटन किया है, जहाँ आकर काव्य समीक्षक को प्रचलित काव्यशास्त्रीय मान्यताओं से परे हटकर भी स्वयं विचार हेतु तत्पर होना पड़ता है। अतः 'मुरारेस्तृतीयः पन्थाः' कथन के आलोक में क्षेमेन्द्र का मार्ग सर्वजनक्षुण्ण मार्ग नहीं है, अपितु वह उनका आत्मरचित, आत्मातोचित एवं अक्षुण्ण मार्ग है। वे पथदर्शी हैं, पथानुगामी नहीं। इस दृष्टि से वे नवीन चिन्तन दृष्टि से आलोच्य हैं।

कविवर क्षेमेन्द्र की रचनायें व्यङ्ग्यप्रधान व अधिक्षेपपूर्ण ही नहीं, अपितु नीतिपरक एवं उपदेशप्रधान भी हैं। उनके काव्यों की रचना का प्रमुख उद्देश्य सुधीजनों को आनन्द प्रदान करना है जो उत्तम उद्देश्य है। वे शिष्यों के उपदेश एवं लोकसुधार में सुधीजनों की प्रमुख भूमिका को ध्यान में रखते हुए उनके ही निमित्त नीतिपरक तथ्यों को अपने काव्य में स्थान देते हैं। 'चारुचर्या', 'चतुर्वर्गसंग्रह' एवं 'दर्पदलन' आदि काव्य शुद्धोपदेश एवं नीतियों से युक्त हैं। इनके उपदेशप्रधान काव्यों की भाषा प्रसादगुणपूर्ण हैं इनके इस कोटि के काव्य नीतिग्रन्थों एवं मनुस्मृति आदि के सदृश भावपूर्ण एवं उपदेशमय हैं। उनका सौ

पद्यों का लघु काव्य 'चारुचर्या' तो पूर्णतः उपदेशप्रधान है। इसमें क्षेमेन्द्र युक्तायुक्त कार्यों का बोध कराते हुए युक्त कर्मों को करने का तथा अयुक्त कर्मों को न करने का उपदेश करते हैं तथा साथ ही विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों रामायण, महाभारत आदि के कथानकों से स्वकथन को पुष्ट भी करते हैं। 'चतुर्वर्गसंग्रह' में कवि ने पुरुषार्थ-चतुष्टय का बहुत विशद विवेचन किया है। भारतीय दर्शन के मूलभूत पुरुषार्थ-चतुष्टय के विवेचन में कवि ने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों पुरुषार्थों का पृथक्-पृथक् स्वरूप विवेचन किया है, जिसमें मूल दर्शन की अवधारणाएँ सन्निहित है। 'दर्पदलन' में उन्होंने मद के सात हेतुओं कुल, वित्त, विद्या, रूप, शौर्य, दान एवं तप सम्बन्धी गुण-दोष का विवेचन किया हैं वस्तुतः ये सभी तब तक गुणयुक्त आभासित होते हैं जब तक इससे युक्त व्यक्ति निरभिमान रहता हैं। मद से सभी गुण दोषयुक्त एवं प्रभाव रहित हो जाया करते हैं।

वस्तुतः उनके काव्य उपदेशपरक एवं अपदेशपरक या व्यङ्ग्यप्रधान ही हैं। जिस प्रकार वे आचार्य के रूप में काव्य-समीक्षा करते हुए औचित्य एवं अनौचित्य दोनों के उदाहरण देते हैं, उसी प्रकार वे उपदेशपरक रचनाओं के माध्यम से समाज के सत्पक्षों का प्रकाशन करते हैं तथा व्यङ्ग्यपरक रचनाओं से समाज के दूषित पक्षों की कटु आलोचना करते हैं। इनकी काव्य-सर्जना में कश्मीर की तत्कालीन परिस्थिति की प्रमुख भूमिका है। उनके लघुकाव्यों में तत्कालीन समाज शोषकों एवं दूषित कार्यों में लिप्त वर्गों पर व्यङ्ग्य एवं उनके दोषपूर्ण कार्यों का विवेचन प्राप्त होता है। इस प्रकार की रचनाओं में कविवर क्षेमेन्द्र की समाज-सुधार, सद्वृत्ति, कवित्वशक्ति, अदम्यसाहस एवं साहित्यिक सार्थकता का परिचय प्राप्त होता है। दूषित समाज शोषकों पर तीखा व्यङ्ग्य करते हुए कविवर कहीं-कहीं तो इतने भावावेश में आ जाते हैं कि उनके द्वारा किया गया व्यङ्ग्य अपनी चरमसीमा को लाँघने का प्रयास करता हुआ आभासित होता है। क्षेमेन्द्र द्वारा किये गये कहीं-कहीं अश्लील व्यङ्ग्य से स्पष्ट होताहै कि वे

तात्कालिक काश्मीर के दूषित वर्गों के दुष्कार्यों से बहुत ही खिन्न हृदय थे और वे उनके परिष्कार एवं दुष्प्रवृत्तियों के विनाश हेतु कटिबद्ध थे। यही कारण है कि उन्होंने अधिकांश काव्यों में कोमल पक्ष की परवाह न करते हुए व्यङ्ग्यात्मक प्रसङ्गों के कठोर पक्ष का उल्लेख किया है। इनकी समाज सुधार की प्रवृत्ति के प्राबल्य के कारण ही समाज में प्रसृत बुराइयों एवं भ्रष्टाचारों का सही रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कोमल पक्षों के अभाव के ही कारण भारतीय रसवादी आलोचकों ने बहुत ही कम स्थानों पर इन्हें कवि के रूप में उल्लिखित किया है। काव्य के कोमल पक्ष के रूप में इनके काव्य उपदेशपरक ही हैं, जिनमें इनकी उपदेशप्रियता ही स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। क्षेमेन्द्र वस्तुतः एक विद्रोही कवि हैं। काव्य के प्रयोजनों में उन्होंने समाज के सुधार को प्रमुखता दी हैं काव्य काव्य के लिए, समाज के लिए या जीवन के लिए आदि उद्देश्यों से युक्त होता है, किन्तु उन्होंने समाज में फैली हुई बुराइयों एवं दोषों पर कटाक्ष करते हुए सुधीजनों के लिए सदुपदेश एवं नीतिपरक काव्यों की रचना की। समाज पर किये गये कटाक्ष वस्तुतः बहुत ही तीखे शब्दों में वर्णित हैं, जो तत्कालीन समाज में प्रसृत भ्रष्टाचार से युक्त लोगों के लिए उचित ही है। एक विचारक के रूप में क्षेमेन्द्र ने जीवन के विविध गुणों-अवगुणों के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं, जो सुभाषित-साहित्य के क्षेत्र में पुष्कल सामग्री प्रदान करते हैं।

क्षेमेन्द्र कवित्व की अपेक्षा कथासङ्ग्रह को प्राथमिकता देते हैं। क्षमेन्द्र जो भी बात कहते हैं उसकी पुष्टि में या तो प्रामाण्य ग्रन्थों के कथन या कथानकों को उदाहृत करते हैं या फिर स्वयं कथा गढ़ते हैं, जो स्वाभाविक एवं मौलिक लगते हैं। उनके कथासङ्ग्रहों में कहीं भी शिथिलता एवं कृत्रिमता नहीं आभाषित होती हैं। काव्य की सुकुमारता से वंचित होते हुए भी इनके व्यङ्ग्यप्रधान काव्य हास्य की सर्जना करने में सफल दिखलाई पड़ते हैं। इनके व्यङ्ग्य-प्रधान चित्रण पाठकों के हृदय में गुदगुदी उत्पन्न किये बिना नहीं रह सकते हैं। इनके लघुकाव्यों में

हास्य व्यङ्ग्य की सर्जना तो होती है किन्तु विस्फोटक नहीं, अपितु यह समाज व लोक-सुधार की भावना से अनुप्रमाणित दिखलाई पड़ती है।

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्य काव्यगत वैशिष्टयों से युक्त हैं। इन्होंने अलंकार, रस, छन्द एवं गुण इन काव्य-समीक्षा के मानदण्डों का अपने साहित्य में प्रयोग किया है। उन्होंने कवियों के लिए उपादेय शिक्षाओं का तो स्वतः विवेचन किया है जो काव्यशास्त्र की भाँति सम्पूर्ण विद्वत्समाज में प्रतिष्ठित हैं। इनके लघुकाव्यों में विशेषकर अनुष्टुप् छन्द का बाहुल्य सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। इसी तरह उपमा अलंकार का अधिकता से प्रयोग किया है। इनके काव्य रस प्रधान न होते हुए भी आह्लादक है। इनकी रचनाओं में स्वाभाविकता एवं मौलिकता के दर्शन होते हैं, क्योंकि उनके काव्यों में कृत्रिमता के माध्यम से चमत्कार उत्पन्न करने का व्यर्थ प्रयास नहीं किया गया है। उनकी सर्वुगुणग्राह्यता के कारण उनकी निरभिमानिता का भी संकेत प्राप्त होता है, जिसके कारण काव्यों में यथार्थ चित्रण का बाहुल्य है। क्षेमेन्द्र ने अपनी काव्य-कला को एक ऐसे अस्त्र के रूप में प्रयोग किया है जिसमें लक्ष्य-भेदन की असीम क्षमता है। मानव-चरित्र की गर्हणा का उनका प्रकार बहुत ही रोचक है। किसी वर्ग के चरित्र में उपलभ्यमान दोषों को वे अपने व्यङ्ग्यों से ऐसा प्रकाशित कर देते हैं कि उसे पढ़कर पाठक अपनी हँसी नहीं रोक पाता है।

कविवर क्षेमेन्द्र का संस्कृत-साहित्य के प्रति जो योगदान है,वह उत्कृष्ट कोटि का है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि क्षेमेन्द्र के अतिरिक्त कोई दूसरा कवि मुक्तक-काव्य का इतना बड़ा प्रणेता नहीं हुआ है। ज्ञान की बहुज्ञता एवं विविधता ने इनकी शैली में लौकिकता ला दी हैं। इनकी मौलिकता के दर्शन उन बड़ी-बड़ी रचनाओं में दिखलाई नहीं पड़ते, जिनमें कविवर ने कठोर प्रयत्न किया है, बल्कि छोटी-छोटी सहज रूप में लिखी गयी कृतियों में कविता का श्रेष्ठ रूप व्यक्त हुआ है। कवि प्रकृत्या लोक-भूमि पर अवस्थित है, लोक को

काव्य में उतारने की प्रज्ञा के उसमें दर्शन होते हैं। इन्होंने संस्कृत-साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी लेखनी चलाकर उसे समृद्धि प्रदान की है।

कविवर क्षेमेन्द्र के लघुकाव्य सांस्कृतिक मूल्यांकन की दृष्टि से अनुकरण करने के योग्य हैं। उनकी रचनाओं में सांस्कृतिक सामग्री के पर्याप्त दर्शन होते हैं। उनके लघुकाव्य 'चारुचर्या' में सन्निहित भारतीय संस्कृति के आदर्शों पर प्रकाश डालने का जो उपक्रम किया गया है, वह भारतीय समाज के लिए ग्रहणीय है। एक ओर उनके लघुकाय ग्रन्थ भारतीय संस्कृति के मुख्य आधार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्ट्य से ओत-प्रोत हैं, वहीं दूसरी ओर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास इन चारों आश्रमों में क्रमानुसार प्रवेश के उपदेश से परिपूर्ण हैं। अतएव इनके काव्य सांस्कृतिक मूल्यांकन की दृष्टि से उत्तम हैं।

कविवर क्षमेन्द्र का रचना-क्षेत्र विस्तृत होने के कारण इनके काव्यों का परवर्ती साहित्य पर प्रभाव परिलक्षित होना स्वाभाविक है। अतः उनकी अद्वितीय प्रतिभा से अनेकानेक कवि प्रभावित हुए हैं। उनकी यह प्रतिभा सदैव सराहनीय रहेगी। वस्तुतः सूक्त्यात्मक साहित्य अर्थात् नये-नये सुभाषित देने के कारण क्षेमेन्द्र एक ऐसे कवि हो गये हैं कि जिनके सुभाषितयुक्त वचनों का अनुसरण कवि एवं पाठक दोनों करते हैं। एक ओर उन्होंने उत्तरवर्ती कवियों के लिए सूक्त्यात्मक काव्य के मार्ग को प्रशस्त किया है, तो दूसरी ओर पाठकों के लिए जीवनोपयोगी सामग्री प्रदान की है। क्षेमेन्द्र ने अपने उत्तरवर्ती कवियों के काव्यों पर अमिट प्रभाव छोड़ा है। अतः उनके काव्य विविध विधामयी शैली से युक्त होने के कारण वे संस्कृत-साहित्य-गगन के समुज्ज्वल नक्षत्र कहे जा सकते हैं।

संस्कृत साहित्याकाश में क्षेमेन्द्र एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने कवि होने के साथ-साथ एक उपदेशक आचार्य के धर्म का भी पालन किया है। उनके कवित्व में उपदेशात्मकता के दर्शन होते हैं। वे जीवन के विविध पक्षों पर अपने मौलिक

विचारों को रखते हैं। यह एक संयोगमात्र ही कहा जा सकता है कि उनके विचार अनेकानेक संस्कृत-सुभाषित ग्रन्थों एवं नीतिपरक काव्यों से भाव साम्य रखते हैं। अनेकशः ऐसे भावसाम्य के दर्शन होते हैं। उन्होंने दैनिक जीवनोपयोगी एवं उपदेशपरक नीतियों का जो प्रतिपादन किया है, उनमें निहित विचार अनेक सूक्ति-संग्रहात्मक ग्रन्थों में मिलते हैं। उनके उपदेशात्मक एवं सूक्तिपरक विचार भर्तृहरि, विष्णु शर्मा, नारायण पण्डित, चाणक्य, भोज, सार्ङ्गधर, शूदक एवं व्यासआदि कवियों के विचारों से साम्य रखते हैं।

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने साहित्य में समाज के निर्मल दर्पण के रूप में तात्कालिक समाज का प्रतिबिम्बन किया है। जो प्रतिबिम्बन किया है, वह आधुनिक युग तक के समाज को प्रभावित करता है। समग्र रूप से समाज के लिए समर्पित क्षेमेन्द्र का साहित्य निश्चित रूप से शोध-सापेक्ष एवं समालोचनीय हैं। इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र एक कुशल कवि, आचार्य, उपदेशक, व्यङ्ग्यकार, कथाकार एवं युगद्रष्टा भी हैं, जिनकी रचनाओं का उद्देश्य आनन्द प्रदान करनेके साथ-साथ जनता का नैतिक उत्थान एवं चरित्र-निर्माण है और वे अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णतः सफल भी हुए हैं। बहुमुखी कर्तृत्वशक्ति से सम्पन्न इस कवि का अवदान संस्कृत-साहित्य में सदा स्मरणीय, प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय रहेगा।

●●●

परिशिष्ट

क्षेमेन्द्र के लघुकाव्यों में प्रयुक्त सुभाषित

1. पाण्डित्यं धर्महीनं शुकसदृशगिरां निष्फलक्लेशमेव।[1]

2. पाण्डित्यं यन्मदान्धानां परोत्कर्षविनाशनम् ।
मात्सर्यपांसुपूरेण मातङ्गस्नानमेव तत् ।।[2]

3. तत्प्राज्ञत्वं हरति विमलं येन शीलं न काम-
तद् धीरत्वं प्रशमवशतां यान्ति येनेन्द्रियाणि।
तद् वैदग्ध्यं भुवनजयिनी वञ्च्यते येन माया
तत् पाण्डित्यं भवपरिभवः शान्तिमायाति येन।।[3]

4. अन्धः स एव श्रुतवर्जितो यः शठः स एवार्थिनिरर्थको यः।
मृतः स एवास्ति यशो न यस्य धर्मे न धीर्यस्य स एव शोच्यः।।[4]

5. परद्रविणनिःस्पृहः परकलत्रनिष्कौतुकः
परप्रणयवत्सलः परनिकारबद्धक्षमः।
परस्तुतिविशारदः परगुणापवादोज्झितः
परार्तिहरणोद्यतो भवति भूरिपुण्यैर्नरः।।[5]

6. हितं न किंचिद् विहितं परस्य दत्तं न वित्तं न च सत्यमुक्तम् ।
यस्मिन् दिने निष्फलतां प्रयातमायुः स कालः परिदेवनस्य।।[6]

---

1 चतुर्वर्गसंग्रह 1/5
2 चतुर्वर्गसंग्रह 1/6
3 चतुर्वर्गसंग्रह 1/7
4 चतुर्वर्गसंग्रह 1/8
5 चतुर्वर्गसंग्रह 1/17
6 चतुर्वर्गसंग्रह 1/9

7. पद्मानामिव सा सतां सगुणता या संश्रयार्हा श्रियः
सा श्रीर्भद्रगजेन्द्रमूर्तिरिव या दानेन विभ्राजते।
तद् दानं नवचन्द्रवद् यदनिशं मानेन संपूर्यते
मानोऽसौ तृणवन् न यः परिचयम्लानः शनैः शुष्यति।।[1]

8. सतामदैन्यं वदनस्य शोभा निर्लोभतान्तर्वचसामयाच्ञा।
कायस्य सत्येव्यमसेवकत्वं पाणेरनुत्तानतलत्वमेव।।[2]

9. पूजा धनेनैव न सत्कुलेन कीर्तिर्धनेनैव न विक्रमेण।
रूपं धनेनैव न यौवनेन क्रिया धनेनैव न जीवितेन।।[3]

10. मौग्ध्यं प्रमादोऽविश्वासः कुसङ्गः क्लेशभीरुता।
पञ्च संकोचदा दोषाः पद्मिन्या इव संपदः।।[4]

11. क्रतुं धनानां फलमग्न्यमाहुः फलं क्रतूनामविवादि पुण्यम् ।
पुण्यस्य पूर्णं फलमिन्द्रलोको द्विरष्टवर्षाः स्त्रिय एव नाकः।।[5]

12. भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्तेऽग्निभूभृद्भयं
दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिद्भयम् ।
माने ग्लानिभयं जये रिपुभयं काले कृतान्ताद् भयं
सर्वं नाम भवे भवेद् भयमहो वैराग्यमेवाभयम् ।।[6]

---

1 चतुर्वर्गसंग्रह 1/18
2 चतुर्वर्गसंग्रह 1/25
3 चतुर्वर्गसंग्रह 2/4
4 चतुर्वर्गसंग्रह 2/17
5 चतुर्वर्गसंग्रह 3/3
6 चतुर्वर्गसंग्रह 4/7

13. कुलं वित्तं श्रुतं रूपं शौर्यं दानं तपस्तथा।
प्राधान्येन मनुष्याणां सप्तैते मदहेतवः।।[1]

14. कुलाभिमानाभरणस्य माता पितामही वा प्रपितामही वा।
योषित् स्वभावेन यदि प्रदुष्टा तदेष दोषः कुलमूलघातः।।[2]

15. अस्थिरः कुलसम्बन्धः सदा विद्याविवादिनी।
मदो मोहाय मिथ्यैव मुहूर्तनिधनं धनम् ।।[3]

16. वैरायते सुहृद्भावः प्रदानं हरणायते।
दर्पभूताभिभूतस्य विद्या मौर्ख्यशतायते।।[4]

17. गुणिनां मत्सरः शत्रुर्लुब्धानामतियाचकः
सर्व एव सदर्पाणां न कश्चित् प्रियवादिनाम् ।।[5]

18. रौद्रः शूद्रेण जातोऽयं ब्राह्मण्यां ब्रह्मवर्जितः।।[6]

19. अपि कुञ्जरकर्णाग्रादपि पिप्पलपल्लवात् ।
अपि विद्युद्विलासिताद् विलोलं ललनामनः।।[7]

---

1 दर्पदलन 1/4
2 दर्पदलन 1/16
3 दर्पदलन 1/28
4 दर्पदलन 1/34
5 दर्पदलन 1/35
6 दर्पदलन 1/54
7 दर्पदलन 1/63

20. धनयौवनसंजातदर्पकालुष्यविप्लवाः।
केनोन्नतपरिभ्रष्टा वार्यन्ते निम्नगाः स्त्रियः।।[1]

21. संवृतान्येव शोभन्ते शरीराणि कुलानि च।[2]

22. विच्छाययोर्निर्व्यययोः कष्टक्लिष्टकलत्रयोः।
विशेषः क्लेषदोषस्य कः कदर्यदरिद्रयोः।।[3]

23. स्त्रियो यत्र प्रगल्भन्ते भर्तुराच्छाद्य कर्तृताम् ।
गृहं भवत्यवश्यं तदास्पदं परमापदाम् ।।[4]

24. पण्डिताः कवयः शूराः कलावन्तस्तपस्विनः।
वैद्यस्येव सवित्तस्य वीक्षन्ते मुखमातुराः।।[5]

25. सन्तः कुर्वन्ति यत्नेन धर्मस्यार्थे धनार्जनम् ।
धर्माचारविहीनानां द्रविणं मलसंचयः।।[6]

26. निर्धनाः सुखिनो दृष्टाः साधनाश्चातिदुःखिताः।
सुखदुःखोदये जन्तोर्दैवाधीने धनेन किम् ।।[7]

---

[1] दर्पदलन 1/65
[2] दर्पदलन 1/75
[3] दर्पदलन 2/4
[4] दर्पदलन 2/23
[5] दर्पदलन 2/30
[6] दर्पदलन 2/32
[7] दर्पदलन 2/57

27. आर्तिमेवं विधामस्य हृदयक्लेदिनीमिवाम् ।
विलोक्य कुर्यात् कः पापं पापं हि पदमापदाम् ।।[1]

28. विद्यां प्राप्य कृतं येन विद्वेषकलुषं मनः।
तेनात्मा हन्त मूर्खेण स्नात्वा पांसूत्करैर्वृतः।।[2]

29. गुरुर्गर्वात् कविर्द्वेषाद् यतिर्भोगपरिग्रहात् ।
नृपः पापाद् द्विजः क्रोधात् सा विद्या वार्यते यया।।[3]

30. स्पृशति मतिं न हि तेषां द्वेषविषः कलिसर्पः।
यदि शमविमलमतीनां स्वमनसि भवति न दर्पः।।[4]

31. तीर्थाप्तिः साधुसम्पर्कः पूज्यपूजामहोत्सवः।
अस्मिन् विरसनिः सारे संसारे सारसंग्रहः।।[5]

32. अलोभः परमं वित्तमहिंसा परमं तपः।
अमाया परमा विद्या निरवद्या मनीषिणाम् ।।[6]

33. महतामपि पूर्वेषामेवंरूपा मदक्षिति।
सामान्यविक्रमोद्दामश्लाघा केनाभिनन्द्यते।।[7]

---

1 दर्पदलन 2/92
2 दर्पदलन 3/5
3 दर्पदलन 3/48
4 दर्पदलन 4/154
5 दर्पदलन 4/51
6 दर्पदलन 4/152
7 दर्पदलन 5/20

34. एतदेव परं शौर्यं यत्परप्राणरक्षणम् ।
न हि प्राणहरः शूरः शूरः प्राणप्रदोऽर्थिनाम् ।।[1]

35. तस्मात् सुवर्णाम्बररत्नभूमिदानैर्न दर्पः पुरुषेण कार्यः।
भवत्युदारं करुणार्द्रसत्त्वं दानं सदा कस्यचिदेव पुण्यैः।।[2]

36. द्वेषावृत्ताक्ष्णामविवेकिजन्मा मोहः प्रमादे गुरुतामुपैति।।[3]

37. यद्यत् प्राप्नोति पुरुषः कर्मयोगात् समीहितम् ।
तत्तत् संपूरणायैव याति चिन्ताविधेयताम् ।।[4]

38. चित्तं विरक्तं यदि किं तपोभिश्चित्तं सरागं यदि किं तपोभिः।
चित्तं प्रसन्नं यदि किं तपोभिश्चित्तं सकोपं यदि किं तपोभिः।।[5]

39. तपो विशेषैर्निशित-प्रयत्नैस्तस्मान्न कार्यः प्रथुमोहदर्पः।
द्वेषेण रागेण महोदयेन तपः क्षयं याति सह स्मयेन।।[6]

40. शुचिदम्भः शमदम्भः स्नातकदम्भः समाधिदम्भश्च।
निस्पृहदम्भस्य तुलां यान्ति तु नैते शतांशेन।।[7]

---

1 दर्पदलन 5/23
2 दर्पदलन 6/54
3 दर्पदलन 7/65
4 दर्पदलन 6/49
5 दर्पदलन 7/3
6 दर्पदलन 7/22
7 कलाविलास 1/59

41. लोभः पितातिवृद्धो जननी माया सहोदरः कूटः।
कुटिलाकृतिश्च गृहिणी पुत्रो दम्भस्य हुंकारः।।[1]

42. धनरहितं त्यजति जनो जनरहितं परिभवाः समायान्ति।
परिभूतस्य शरीरे व्यसनविकारो महाभारः।।[2]

43. मित्रद्रोहे प्रसरति न हि नाम जनः कृतघ्नोऽपि।।[3]

44. वित्तं जीवितमग्न्यं जीवितहानिर्धनत्यागः।।[4]

45. जातः स एव लोके बहुजनदृष्टा विलासकुटिलाङ्गी।
धैर्यध्वंसपताका यस्य न पत्नी प्रभुर्गेहे।।[5]

46. व्यसनपरितप्तहृदयस्तिष्ठति सर्वः सदाचारे।
विभवमदमोहितानां कर्मस्मरणे कथा कैव।।[6]

47. स्वार्थार्थिनः प्रयत्ताः प्राप्तार्थाः सेवकाः सदा विकलाः।
न हि नाम जगति कश्चित् कृतकार्यः सेवको भवति।।[7]

48. शौर्यमदो भुजदर्शी रूपमदो दर्पणादिदर्शी।
काममदः स्त्रीदर्शी विभवमदश्चैव जात्यन्धः।।[1]

---

1 कलाविलास 1/64

2 कलाविलास 2/54

3 कलाविलास 2/60

4 कलाविलास 2/79

5 कलाविलास 3/10

6 कलाविलास 5/33

7 कलाविलास 5/35

49. प्रत्यक्षेऽपि परोक्षे कृतमकृत्यं कथितमप्यनुक्तं च।
यः कुरुते निर्विकृतिः स परं पुंसां भयस्थानम् ।।[2]

50. मात्सर्यस्य त्यागः प्रियवादित्वं सधैर्यमक्रोधः।
वैराग्यं च परार्थे सुखस्य सिद्धाः कलाः पञ्च।।[3]

51. विभवेषु संविभागः सत्सुरतिर्मन्त्रसंशयेप्रज्ञा।
निन्द्येषु पराङ्मुखता भेषजमेतत्कलादशकम् ।।[4]

52. खलो वक्त्येव सर्वस्य दोषं वक्ति खलस्य कः।
दोषोमलिनवस्त्रस्य कदा केन विचार्यते।।[5]

53. कदर्यः कुशलप्रश्नं न करोति शृणोति वा।
अभ्यागतस्य सायं पश्चाद् भोजनशङ्कया।।[6]

54. नापेक्षते परिचयं नोपकारं स्मरत्यपि।
सर्वदेव विरागान्ता खलमैत्रीव कुट्टनी।।[7]

55. न सिद्ध्यति धिया भक्त्या शक्त्या युक्त्या गुणेन वा।
कुलटा खलसेवेव मानम्लानिकरी परम् ।।[1]

---

1 कलाविलास 6/6
2 कलाविलास 9/50
3 कलाविलास 10/7
4 कलाविलास 10/13
5 देशोपदेश 1/15
6 देशोपदेश 2/19
7 देशोपदेश 4/7

56. न ब्रह्मचारी न गृही न वानस्थो न वा यतिः।
पञ्चमः पञ्चभद्राख्यश्छात्राणामयमाश्रमः।।[2]

57. क्व कियत् किं तवास्तीति कण्ठप्राप्तार्धजीवितम् ।
वृद्धे चौरमिवाभ्येत्य धनं पृच्छति गेहिनी।।[3]

58. खला इवातिचपला कृतालिङ्गनसंगमाः।
न गताः पुनरायान्ति बाले यौवनवासराः।।[4]

59. न कुलेन, न शीलेन, न रूपेण न विद्यया।
जीविताभ्यधिकं बुद्धिलभ्यं धनमवाप्यते।।[5]

60. दानेन नश्यति वणिङ्नश्यति सत्येन सर्वथा वेश्या।
नश्यति विनयेन गुरुर्नश्यति कृपया च कायस्थः।।[6]

61. संभोगसुखसंपत्तिः पराधीनैव कामिनाम् ।
आललम्बे धनेशाशामितीवाकलयन्रविः।।[7]

62. अशेव शून्येषु विवर्तमाना तृष्णेव सन्तोषपराङ्मुखीयम् ।
दिवानिशं कर्षणदीर्घरज्जुः सेवा सुराणामपि दैन्यभूमिः।।[1]

[1] देशोपदेश 3/7
[2] देशोपदेश 6/32
[3] देशोपदेश 8/30
[4] समयमातृका 1/47
[5] समयमातृका 4/19
[6] समयमातृका 4/70
[7] समयमातृका 7/2

63. वृत्त्या जीवति लोकः सेवावृत्तिर्निजैव केषांचित् ।
अस्थाने तीव्रतरा निन्द्या तु तदर्थिनां सेवा।।[2]

64. न त्यजेद् धर्ममर्यादामपि क्लेशदशां श्रितः।
हरिश्चन्द्रो हि धमार्थी सेहे चण्डालदासताम् ।।[3]

65. कुर्वीत संगतं सद्भिर्नासद्भिर्गुणवर्जितैः।
प्राप राघवसंगत्या प्राज्यं राज्यं विभीषणः।।[4]

66. गुणेष्वेवादरं कुर्यान्न जातौ जातु तत्त्ववित् ।
द्रौणी द्विजोऽभवच्छूद्रः शूद्रश्च विदुरः क्षमी।।[5]

67. क्षिपेद् वाक्यशरांस्तीक्ष्णान्न पारुष्यव्युपप्लुतान् ।
वाक्यपारुष्यरुषा चक्रे भीमः कुरुकुलक्षयम् ।।[6]

68. गुणस्तवेन कुर्वीत महतां मानवर्धनम् ।
हनूमानभवत् स्तुत्या रामकार्यभरक्षमः।।[7]

69. न जातूल्लंघनं कुर्यात् सतां मर्मविदारणम् ।
चिच्छेद् वदनं शम्भुर्ब्रह्मणो वेदवादिनः।।[1]

---

[1] सेव्यसेवकोपदेश, पद्य 28

[2] सेव्यसेवकोपदेश, पद्य 60

[3] चारुचर्या, पद्य 13

[4] चारुचर्या, पद्य 15

[5] चारुचर्या, पद्य 36

[6] चारुचर्या, पद्य 28

[7] चारुचर्या, पद्य 33

70. नोपदेशेऽप्यभव्यानां मिथ्या कुर्यात् प्रवादिताम् ।
शुक्रषाड्गुण्यगुप्तापि प्रक्षीणा दैत्यसंततिः।।[2]

71. नष्टशीलां त्यजेन्नारीं रागवृद्धिविधायिनीम् ।
चन्द्रोच्छिष्टाधिकप्रीत्यै पत्नी निन्द्याप्यभूद् गुरोः।।[3]

72. स्वकुलान्न्यूनतां नेच्छेत्तुल्यं स्यादथवाधिकः।
सोत्कर्षेऽपि रघोर्वंशे रामोऽभूत्स्वकुलाधिकः।।[4]

73. दम्भारम्भोद्धतं धर्मं नाचरेदन्तनिष्फलम् ।
ब्राह्मण्यदम्भलब्धास्त्रविद्या कर्णस्य निष्फला।।[5]

74. स्त्रीजितो न भवेद् धीमान् गाढरागवशीकृतः।
पुत्रशोकाद् दशरथो जीवं जायातितोऽत्यजत् ।।[6]

75. अविस्मृतोपकारः स्यान्न कुर्वीत कृतघ्नताम् ।
न कुर्यात्परदारेच्छां विश्वासः स्त्रीषु वर्जयेत् ।।[7]

76. अत्युन्नतपदारूढः पूज्यान्नैवावमानयेत् ।
नहुषः शक्रतामेत्य च्युतोऽगस्त्यावमाननात् ।।[1]

---

1 चारुचर्या, पद्य 41

2 चारुचर्या, पद्य 64

3 चारुचर्या, पद्य 75

4 चारुचर्या, पद्य 70

5 चारुचर्या, पद्य 11

6 चारुचर्या, पद्य 26

7 चारुचर्या, पद्य 25

78. ब्राह्मणान्नावमन्येत ब्रह्मशापो हि दुःसहः।
तक्षकाग्नौ ब्रह्मशापात् परीक्षिदगमत् क्षयम् ।।[2]

79. मातरं पितरं भक्त्या तोषयेन्न प्रकोपयेत् ।
मातृशापेन नागानां सर्पसत्रेऽभवत् क्षयः।।[3]

●●●

---

[1] चारुचर्या, पद्य 57

[2] चारुचर्या, पद्य 20

[3] चारुचर्या, पद्य 16

सहायक-ग्रन्थ-सूची

सहायक-ग्रन्थ-सूची

क्रम	ग्रन्थ का नाम	लेखक/प्रकाशक/संस्करण/वर्ष
■	क्षेमेन्द्रकृत लघुकाव्य	
1.	कलाविलास	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला-1, निणर्यसागर प्रेस, बम्बई, प्र. सं. 1886,
2.	चतुर्वर्गसंग्रह	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला-3, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1935,
3.	चारुचर्या	-क्षेमेन्द्र/चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1963,
4.	दर्पदलन	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला सीरिज़, नि. सा. प्रेस, बम्बई, 1886,
5.	देशोपदेश	-क्षेमेन्द्र/मधुसूदन कौल सम्पादित, काश्मीर सीरिज़ -40, श्रीनगर, 1923,
6.	नर्ममाला	-क्षेमेन्द्र/मधुसूदन कौल सम्पादित, काश्मीर सीरिज़-40, श्रीनगर, 1923,
7.	सेव्यसेवकोपदेश	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला-2, नि.सा. प्रेस, बम्बई, 1986,
8.	समयमातृका	-क्षेमेन्द्र/चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1967,
■	क्षेमेन्द्रकृत अन्य ग्रन्थ	
9.	अवदानकल्पलता	-क्षेमेन्द्र/मिथिला इन्स्टीट्यूट, दरभंगा, 1959,
10.	औचित्यविचारचर्चा	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला-1, बम्बई, 1886,

क्रम	ग्रन्थ का नाम	लेखक/प्रकाशक/संस्करण/वर्ष
11.	कविकण्ठाभरण	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला-4, नि.सा. प्रेस, बम्बई, 1937,
12.	दशावतारचरित	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला-16, नि.सा. प्रेस, बम्बई, 1891,
13.	नीतिकल्पतरु	-क्षेमेन्द्र/भाण्डाकर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, पूना, 1956,
14.	बृहत्कथामञ्जरी	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला-69, नि.सा. प्रेस, बम्बई 1901,
15.	भारतमञ्जरी	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला-64, नि.सा. प्रेस, बम्बई 1903,
16.	रामायणमञ्जरी	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला-8, बम्बई, 1903,
17.	लोकप्रकाश	-क्षेमेन्द्र/काश्मीर सीरिज़-75, श्रीनगर, 1947,
18.	सुवृत्ततिलक	-क्षेमेन्द्र/काव्यमाला-2, नि.सा. प्रेस, बम्बई, 1886,
19.	क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रह	-सं. प्रो. आर्येन्द्र शर्मा/संस्कृत परिषद् सीरिज़-7, हैदराबाद, 1961,
20.	क्षेमेन्द्र	-वज्रमोहन चतुर्वेदी/स्वतन्त्र भारत प्रेस, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण, 1983,

■ शोधसहायक अन्य ग्रन्थ

21.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	-महाकवि कालिदास/रामनारायण विजयकुमार, इलाहाबाद, 1998 संस्करण

क्रम	ग्रन्थ का नाम	लेखक/प्रकाशक/संस्करण/वर्ष
22.	अग्निपुराण	संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब वेदनगर बरेली, प्र.सं. 1968,
23.	आचार्य क्षेमेन्द्र	-मनोहर लाल गौड़/ भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़
24.	आमुख-देशोपदेश व नर्ममाला	-मधुसूदन कौल/ काश्मीर सीरिज़-40, श्रीनगर, 1923,
25.	ईशावस्योपनिषद्	-गीता प्रेस गोरखपुर,
26.	उत्तररामचरितम्	-भवभूति/चौखम्बा संस्कृत सीरिज़, बनारस, 1953,
27.	ऋग्वेद	-सम्पादक श्रीराम शर्मा आचार्य/ गायत्री प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि मथुरा, प्र.सं. 1960,
28.	कठोपनिषद्	-अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय सं. 1985,
29.	काव्यादर्श	-दण्डी/परिमल पब्लिकेशन्स शक्तिनगर, दिल्ली, प्र.सं. 1988,
30.	काव्यप्रकाश	-मम्मट/ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, षष्टम् संस्करण, संवत 2042 वि0
31.	काव्यालङ्कार	भामह/बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना 1963,
32.	काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति	-वामन/आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1954,
33.	काव्यमीमांसा	राजशेखर/राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, द्वि.सं., 1965,

क्रम	ग्रन्थ का नाम	लेखक/प्रकाशक/संस्करण/वर्ष
34.	कादम्बरी कथामुखम्	-बाणभट्ट/रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद-2, तृतीय संस्करण, 1978,
35.	कुमारसम्भव	-महाकवि कालिदास/ काशी संस्कृत ग्रन्थमाला द्वितीय संस्करण 1987,
36.	कूर्मपुराण	-इण्डोलॉजीकल बुक हाउस, वाराणसी, 1967,
37.	कुवलयानन्द	-अप्पय दीक्षित/चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1963,
38.	चाणक्यनीतिदर्पण	-चाणक्य/लुड्विक स्टर्नबॉक होशियारपुर विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान, 1963,
39.	छान्दोग्योपनिषद्	-गीताप्रेस, गोरखपुर
40.	ध्वन्यालोक	-आनन्दवर्धन/ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 1985,
41.	नलचम्पू	त्रिविक्रमभट्ट/रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद-2 प्रथम संस्करण, 1978,
42.	नाट्यशास्त्र	-भरतमुनि/चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1983,
43.	नीतिशतक	-भर्तृहरि/श्री वंकटेश्वर स्टीम प्रेस, खेतवाड़ी बम्बई, 1978,
44.	पञ्चतन्त्र	-विष्णुशर्मा/ चौखम्बा संस्कृत सीरिज़, बनारस, 1953,
45.	बौद्धावदानकल्पलता	-क्षेमेन्द्र/एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 1887,

क्रम	ग्रन्थ का नाम	लेखक/प्रकाशक/संस्करण/वर्ष
46.	बृहदारण्यकोपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर
47.	मनुस्मृति	-मनु/काशी संस्कृत ग्रन्थमाला 114, 1992,
48.	महाभारत	-व्यास/गीता प्रेस, गोरखपुर
49.	मेघदूतम्	-महाकवि कालिदास/रामनारायणलाल विजयकुमार इलाहाबाद-2, प्रथम संस्करण, 1987,
50.	योगदर्शन	-पतञ्जलि/चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
51.	रघुवंश	-महाकवि कालिदास/चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1979,
52.	राजतरङ्गिणी	-कल्हण/विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-शोध संस्थान होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1963,
53.	वक्रोक्तिजीवित	-कुन्तक/चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1967,
54.	वैराग्यशतक	-भर्तृहरि/श्रीवकंटेश्वर स्टीम प्रेस खेतवाड़ी, मुम्बई, 1978,
55.	विक्रमोर्वशीयम्	-कालिदास/चौखम्बा संस्कृत सीरिज़, 1953,
56.	वेदान्तदर्शन	-शङ्कराचार्य/चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी

क्रम	ग्रन्थ का नाम	लेखक/प्रकाशक/संस्करण/वर्ष
57.	शार्ङ्गधरपद्धति	-शार्ङ्गधर/काव्यमाला सीरिज़, बम्बई, 1886,
58.	साहित्यदर्पण	-विश्वनाथ/चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1957,
59.	साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद	-विश्वनाथ/कलकत्ता संस्करण, 1950,
60.	सुभाषितरत्नभाण्डागार	-निर्णयसागर प्रेस, बम्बई-2
61.	सांख्यदर्शन	-कपिलमुनि/चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, द्वि.सं., 1987,
62.	श्रृंगारशतक	-भर्तृहरि/श्री वंकटेश्वर स्टीम प्रेस, खेतवाड़ी, मुम्बई, 1978,
63.	श्रीमदभगवद्गीता	-गीताप्रेस गोरखपुर, 160 वाँ संस्करण, सं. 2051,
64.	हितोपदेश	-नारायण पण्डित/चौखम्बा सीरिज़ पुनर्मुद्रण, 1999,
65.	हिन्दी व्यङ्ग्य-साहित्य	-चन्द्रशेखर रेड्डी/शबरी संस्थान, दिल्ली, प्र.सं. 1989,
66.	हिन्दी दर्पदलन	-ब्रह्ममित्र अवस्थी (अनु.)/मुंशीराम मनोहर लाल दिल्ली, 1972,
67.	हिन्दी-साहित्य-कोष I	-सं. धीरेन्द्र वर्मा/ ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी

English Reference Books

1. A History of sanskrit Literature : A.B. Keith, oxford London, 1953.

2. Cultural Heritage of Kashmir : Suresh Chandra Benerjee

3. Catalogue Catagorum : Afravt ; - Lipzig, 1891

4. History of Sanskrit Literature : Dr. S.N. Dasgupta, Calcutta, 1962.

5 History of Sanskrit Poetics : P.V Kane, Motilal Banarsidas, Delhi, 1961.

6. History of Sanskrit Poetics : S.K. De, Calcutta, 1960

7. History of Kashmir : Bamjai, P A.N.K. Delhi, 1962

8. Kshemendra Studies . Dr. Suryakant, oriental Book Agency, Pune, 1954.

9. Kashmir Report - Dr Whuler, 1877.

10. Sanskrit - English Dictiondry- Vaman Shivram Apte.

11. Journal of the Bombay Branch of Royal Asiatic society.

12. J. schonberg and wien, 1884.

13. WZKM, XVIII, 1914 - R. Schmidt.

14. ZDMG, IXIX, 1915 - R. Schmidt.

●●●